॥ श्रीः ॥

हरिदास-संस्कृत-ग्रन्थमाला

१७३

सरल-व्यवहारायुर्वेद और विषविज्ञान

लेखकः—

युगलकिशोर गुप्त

THE

HARIDAS SANSKRIT SERIES

173.

MEDICAL JURISPRUDENCE

AND

TOXICOLOGY

IN

HINDI

BY

YUGAL KISHORE GUPTA,

'Philosopher'

D. I. M. S. (FINAL)., M. H. A. (CALCUTTA).,

M. D. H. (GOLD MEDALIST)

Kanyakubja Ayurvedic College, Lucknow

WITH A FOREWORD

BY

KAVIRAJ JÑANENDRA NATH SEN

B. A., 'Kaviratna',

Retired Principal,

Rishikul Ayurvedic College, Hardwar.

1946.

॥ श्रीः ॥

हरिदास—संस्कृत—ग्रन्थमाला

१७३

सरल—
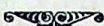
व्यवहारायुर्वेद और विषविज्ञान

लेखकः—

युगलकिशोर गुप्त,

'फिलास्फर'

डी० आई० एम० एस० (फाइनल).,

एम० डी० एच० (गोल्ड मेडलिस्ट).,

एम० एच० ए० (कलकत्ता)

कान्यकुब्ज आयुर्वेदिक कालेज, लखनऊ

प्रकाशकः—

जयकृष्ण दास हरिदास गुप्त

चौखम्बा संस्कृत सीरिज़ आफिस

बनारस सिटी।

प्रथम संस्करण] १९४६ [मूल्य ४)

समर्पण

माता,

आपकी पवित्रात्मा स्वर्गलोक में यह जानकर अवश्य प्रसन्न होगी कि आपके संस्कृत–ज्ञान का जो संस्कार मुझ में उदय हुआ, उसी के फल–स्वरूप आपका यह अबोध पुत्र इस पुस्तक को लिखने में समर्थ हो सका है अतएव यह पुष्पाञ्जलि जिसमें आप ही की लगाई हुई वाटिका के पुष्प हैं, आपके चरण–कमलों में सादर सप्रेम समर्पित है।

आपका परम स्नेही पुत्र
'युगल'

FOREWORD

I have been requested to write out a foreword for the book "Saral Vyavaharayurveda and Vishavijnana" by Mr. Yugal Kishore Gupta. I am very glad to go through the book and I am really proud to see that Mr. Yugal Kishore who was for some time a student and a promising student of the Rishikul Ayurvedic college, Hardwar, has been able to write out a book of such merit in so short a time during his studentship.

A young man as Yugal Kishore, he has got a good brain and the presentation of this book clearly shows his high ability, scholarship and grasp of the subject. In my opinion the whole subject has been very ably put and explained as succinctly as possible and I hope the book, especially the charts and more especially the comparison of the Eastern and Western methods will be a very good helpmate to the students of the subject.

I pray to God for a long and healthy life of Yugal Kishore and hope, he may be able to help the students by writing such other books on other subjects.

JÑANENDRA NATH SEN

भूमिका

आधुनिक वैज्ञानिक संघर्षमय वातावरण में जब कि अणु परिमाणु ही नहीं, विद्युत-अणु भी अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने के अविरल प्रयास में अहर्निश अविशान्त रूप से प्रयत्नशील है, चारों ओर निखिल दिशाओं में उन्नति उन्नति की प्रतिक्रियात्मक ध्वनि कर्ण पटों को वेधे डालती है, दीर्घजीवी एवम् आध्यात्मिक शान्त मानस वृद्ध आयुर्वेद के मुझ विद्यार्थी को भी एतदर्थ इसका तत्त्व ग्रहण करने की जिज्ञासा का होना स्वाभाविक ही है। आयुर्वेद के इस उथल-पुथल के युग में, जब कि आयुर्वेद की पुनरोन्नति के लिये नाना प्रकार के विचार, विभिन्न प्रकार के यत्न और कई प्रकार के परिवर्तन नित्य प्रति हो रहे हैं, मेरे मस्तिष्क में भी एक अजीब किस्म की क्रान्ति हो रही है और उसी क्रान्ति का यह प्रथम परिणाम है कि "सरल-व्यवहारायुर्वेद और विष-विज्ञान" नाम की पुस्तक आयुर्वेद-जगत की सेवा में उपस्थित कर रहा हूँ।

बोर्ड आफ इन्डियन मेडिसिन यू० पी० गवर्नमेन्ट के आयुर्वेदिक कालेजों के तृतीय वर्ष के पाठ्यक्रम में यह विषय रक्खा गया है। किन्तु इस विषय पर इधर कुछ वर्षों से पुस्तकों का अभाव दिखलाई पड़ रहा है। विद्यार्थियों को इस विषय पर कोई भी पुस्तक ढूँढने पर भी नहीं मिलती। परिणाम स्वरूप विद्यार्थी गण इस विषय को परीक्षा एवम् ज्ञानवृद्धि की दृष्टि से करीब करीब छोड़ सा देते हैं और इस प्रकार की कठिनाई का मुझे भी सामना करना पड़ा था। उसी समय मैंने यह निर्णय किया था कि यदि इस विषय की कोई पुस्तक शीघ्र ही सामने नहीं आ जाती है तो मैं स्वयं अपनी लेखनी उठाऊँगा और प्रतीक्षा करने के बाद भी जब कोई भी पुस्तक नज़र न आयी तो मुझे अपनी बुद्धि को इस ओर केन्द्रित करके यह पुस्तक जो कि आपके हाथ में है, लिखने का साहस हुआ।

इस पुस्तक को बोर्ड ग्राफ इन्डियन मेडिसिन यू० पी० गवर्नमेन्ट के सिलेबस के आधार पर लिखा है। इसके अतिरिक्त सिलेबस में जो बातें किसी कारण वश छूट गयी हैं और वह छूट इस विषय का आवश्यक अंश समझा जाता है, उसे भी पुस्तक में स्थान दिया है ताकि इस विषय पर पुस्तक में किसी प्रकार की कमी न रह जाये। पुस्तक को बहुत ही संक्षिप्त रूप में लिखने का भी सम्पूर्ण यत्न किया है ताकि विद्यार्थियों को यह पुस्तक बोझ की तरह न मालूम हो, किन्तु फिर भी किसी भी आवश्यक बात को छोड़ा नहीं गया है। यह विषय कुछ ऐसा है कि सरलतापूर्वक और शीघ्र समझ में नहीं आता है जिससे आयुर्वेद के विद्यार्थी इस विषय को पढ़ते पढ़ते परेशान से हो जाते हैं इसलिये पुस्तक को बहुत सरल बनाकर लिखने का यत्न किया है ताकि समझने और याद करने में किसी भी प्रकार की कठिनाई न हो। स्थान स्थान पर तालिका बनाकर विषय को संक्षिप्त करने वा सरल एवम् स्पष्ट कर देने का भी बहुत प्रयत्न किया है। इन तालिकाओं से विद्यार्थियों को विशेष लाभ होगा यह मेरा दृढ़ विश्वास है। पाश्चात्य एवम् आयुर्वेदिक मतों को भी तालिका के रूप में ही लिखा है ताकि विद्यार्थी दोनों मतों का ज्ञान भी प्राप्त कर सकें। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद के विभिन्न ऋषियों का जिस किसी बात पर मतभेद है, उसे भी तालिका के रूप में ही दिया है ताकि विद्यार्थी सरलतापूर्वक प्रत्येक के मत को समझ सकें। चुँकि इस समय पाश्चात्य और आयुर्वेदिक प्रणालियों का तुलनात्मक रूप में प्रत्येक कालेज में अध्ययन कराया जा रहा है, अतएव प्रत्येक विषय पर तुलनात्मक रूप में अधिक से अधिक वर्णन करने का सम्पूर्ण यत्न किया है।

यह विषय एलोपैथी का एक प्रधान अंग है और इसके अन्दर अंगरेजी के जिन शब्दों का नित्य प्रति प्रयोग होता है, उनकी हिन्दी भी शब्दकोषों में नहीं

मिलती है किन्तु फिर भी डा० गणनाथ सेन, डा० घाणेकर, डा० त्रिलोकीनाथ, डा० मुकुन्द स्वरूप वर्मा आदि ने इस प्रकार के अंगरेजी के शब्दों के यथा सम्भव हिन्दी में नाम दिये हैं। अतएव इस पुस्तक में उन्हीं के शब्दों को अधिक प्रयोग किया गया है। जिन अंगरेजी के शब्दों का अनुवाद अभी तक हिन्दी में किसी ने भी नहीं किया है, उन शब्दों को या तो वैसे का वैसा ही पुस्तक में रख दिया है या फिर उसके निकटतम अर्थ वाले हिन्दी के शब्दों का प्रयोग किया है और इस प्रकार के अंगरेजी के शब्दों को लिखकर कोष्ठ के अन्दर हिन्दी के शब्द दिये हैं ताकि शब्दों के सम्बन्ध में पाठकों को किसी प्रकार का भ्रम न उत्पन्न हो।

इस पुस्तक के लिखने में मैंने अनेकों ग्रन्थों से सहायता ली है, जिनके नाम नीचे दिये जाते हैं:—

(1) Medical Jurisprudence And Toxicology, By Dr. Modi.
(2) ,, ,, ,, ,, Dr. Das.
(3) ,, ,, ,, ,, Dr. Bakshi
(4) Medical Jurisprudence ,, Dr. Lyon.
(5) ,, ,, ,, ,, Dr. Ray
(6) ,, ,, ,, ,, Dr. Kamath
(7) Materia Medica ,, Ghosh
(8) Physiology ,, Halliburton
(9) Anatomy ,, Gray
(10) Mustaffi's Anatomy
(11) Midwifery ,, Ten Teachers
(12) Organic chemistry ,, Cohen
(13) Botany ,, Dutt

(१४) विष विज्ञान ,, डा० मुकुन्दस्वरूप वर्मा
(१५) न्यायवैद्यक ,, कविराज अत्रिदेव गुप्त
(१६) व्यवहारायुर्वेद ,, पं० किशोरीदत्त शास्त्री
(१७) प्रत्यक्ष शारीर ,, डा० गणनाथ सेन
(१८) सुश्रुत शारीर ,, डा० घाणेकर
(१९) हमारे शरीर की रचना ,, डा० त्रिलोकीनाथ
(२०) औषधि ज्ञान संग्रह ,, ,, डा० राधावल्लभ पाठक
(२१) रस रत्न समुच्चय ,, ,, प्रो० कुलकर्णी
(२२) प्रारम्भिक रसायन ,, ,, फूलदेव सहाय वर्मा
(२३) व्याधि विज्ञान ,, ,, डा० आशानंद पञ्चनद
(२४) औपसर्गिक रोग ,, ,, डा० घाणेकर
(२५) भावप्रकाश निघण्टु ,, पं० विश्वनाथ द्विवेदी
(२६) वैज्ञानिक विचारणा ,,
(२७) रस तरंगिणी
(२८) चरक संहिता
(२९) सुश्रुत संहिता
(३०) अष्टाँग संग्रह
(३१) भैषज्य रत्नावली
(३२) चक्रदत्त
(३३) माधव निदान
(३४) शार्ङ्गधर, इत्यादि।

उपरोक्त समस्त ग्रन्थों के लेखकों का मैं हृदय से आभारी हूँ और उन्हें सहर्ष धन्यवाद भी देता हूँ। इसके अतिरिक्त मुझे गुरुवर डा० एस० एस०

वर्मा, प्रोफेसर, एल॰ एच॰ आयुर्वेदिक कालेज, पीलीभीत के लेक्चरों से भी पुस्तक के प्रारम्भिक भाग में काफी सहायता मिली है, अतएव उनका भी आभारी हूँ। कुँवर गोपाल कृष्ण सिंह D. I. M. S. (Final), L. H. Ayurvedic college, Pilibhit से भी पुस्तक के लिखने में सहायता मिली है, अतएव आप भी धन्यवाद के पात्र हैं।

मैं अपने वयोवृद्ध गुरुवर श्री कविराज ज्ञानेन्द्र नाथ जी सेन बी॰ए॰ कवि-रत्न, रिटायर्ड प्रिन्सिपल, ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज, हरिद्वार का अतिशय ऋणी हूँ जिन्होने कि हमारी प्रार्थना को स्वीकार कर पुस्तक पर प्राक्कथन लिखने की कृपा की है। साथ ही साथ पुस्तक में जिन गुरुजनों वा महानुभावों की सम्मतियाँ प्रकाशित की गयी हैं, उन सबको भी मैं धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने कि ठीक समय से अपनी अपनी सम्मति प्रदान की है।

इसके अतिरिक्त मैं इस पुस्तक के प्रकाशक बाबू जयकृष्णदास जी गुप्त महोदय, प्रेस के समस्त कर्मचारियों वा पं॰ रामचन्द्र जी झा को भी सहर्ष धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने कि आशा से अधिक परिश्रम करके पुस्तक को केवल २० दिन के अंदर प्रकाशित किया है।

अन्त में मैं पाठकों से भी क्षमा चाहता हूँ क्योंकि इतनी शीघ्रता पूर्वक पुस्तक को प्रकाशित करने में कई एक त्रुटियाँ रह ही गयी होंगी जिसे पाठक गण सुधार कर पढ़ें।

फिलास्फर्स टेम्पिल,
गाँधीनगर, कानपुर
२६-६-४६

युगलकिशोर गुप्त
'फिज्ञास्फर'

OPINIONS

M. K. MUKHERJEE

President, All India-Ayurvedic Congress.

"I commend the effort of the young writer who is attempting the treatment of some important Anga of Ayurveda. Ayurvedic literature has to be written in an ample measure to meet the exigencies of the times, and Ayurveda has a definite message to deliver to the medical world and ailing humanity"

SHARDA CHARAN SHUKLA
A. M. S. (B. H. U.)
Ayurvedic Inspector,
Indigenous Medical Inspectorate,
Governmeut. of United Provinces, Lucknow.

"I have gone through the book 'Saral Vyavahar-Ayurveda aur Visha-Vigyan', written by Mr Yugal Kishore Gupta who was my student when I was the principal of the Kanya Kubja Ayurvedic college, Lucknow. Mr Gupta has consulted me from time to time from the very idea of this book and I feel satisfied that he has done well to make the book upto-date and full with the requirements of the subject as prescribed in the Ayurvedic syllabus for colleges of the U. P. Government, I can safely say that this book is best of all the existing books on the subject in Hindi. As a teacher I am of the opinion that for teaching purposes this book should serve as a text book in the U. P. colleges. I congratulate Mr. Gupta for the enormous labour he has taken in writing this book. Now, by this book the students of the affiliated Ayurvedic colleges of the U. P. Govt. will be relieved of their difficulties that they have been put so far. I very strongly recommend to the Heads of the Ayurvedic colleges to adopt this book as a text book on the subject and encourage this young writer in bringing out new edition of this book with more details and illustrations in very near future."

JÑANENDRA NATH SHUKLA

A. M. S. (B. H. U)

Principal, Kanya Kubja Ayurvedic College, Lucknow.

"Mr. Yugal Kishore Gupta is well known to me for a pretty long time, and has been my student too. I have gone through his work 'Saral Vyavaharayurveda Aur Visha Vigyan' and very well appreciate his labour which he took in bringing out this work before the Hindi knowing public.

Having been in constant contact with this subject while teaching to the students, I badly felt the absence of an upto date book in Hindi on this subject. By now the books which are available on this subject could not be claimed as complete and exhaustive as they are written by those who have no or very little knowledge of the subject and they could not play their part suitably and properly.

The subject under review holds an important and unique position in medical science now-a-days Its importance lies in fact that this subject is taught to the students in medical colleges when they are fully conversant with all other allied medical subjects i. e. Anatomy, Physiology, Pathology etc.

This book contains one unique feature as it also contains so appropriate quotations from the Ayurvedic texts which would prove an additional usefulness of the subject. I appeal the public to take due interest and thus give the author good encouragement.

I wish him success."

सम्मतियाँ

डाक्टर गङ्गाप्रसाद बी. एस. सी., एम. बी., बी. एस.

मेम्बर आफ दी इन्डियन मेडिकल एसोसियेशन, कानपुर

'व्यवहारायुर्वेद और विष विज्ञान'—यह विषय चिकित्सा विज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। आँगल भाषा में इस विषय पर कई एक पुस्तकें लिखी जा चुकी है किन्तु हिन्दी भाषा में इस विषय पर उच्चकोटि के ग्रन्थों का अभाव है। श्री युगलकिशोर गुप्त ने बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसन यू० पी० गवर्नमेन्ट के सिलेबस में आयुर्वेदिक कालिजों के लिये तृतीय वर्ष के पाठ्य क्रम में निर्धारित 'व्यवहारायुर्वेद और विषविज्ञान' विषय पर यह 'सरल व्यवहारायुर्वेद और विष-विज्ञान' नामक उच्चकोटि की पुस्तक लिखकर अत्यन्त सराहनीय कार्य किया है, पुस्तक लिखने का ढंग उत्तम है। लेखक ने विषय को बहुत सरल बना दिया है। जिससे आयुर्वेद के विद्यार्थियों को समझने और याद करने में किसी भी प्रकार की कठिनाई नहीं होगी। इतना ही नहीं, वैद्य समुदाय के लिये भी यह पुस्तक अत्युपयोगी और उपादेय है। इस पुस्तक का सम्यकतया अध्ययन करने के पश्चात् अंगरेजी में लिखी हुई इस विषय की पुस्तकों को देखने की कोई आवश्यकता न रह जायेगी।

सुशीलचन्द्र गुप्त-(वकील)

M. A., B. Com., L. L. B. कानपुर

हिन्दी में श्री युगलकिशोर गुप्त द्वारा लिखी हुई 'सरल व्यवहारायुर्वेद और विषविज्ञान' नाम की पुस्तक को मैंने देखा। हिन्दी साहित्य का यह एक समुज्ज्वल रत्न है। इस विषय पर हिन्दी भाषा में केवल दो-तीन पुस्तकें ही अभी तक लिखी गई हैं, किन्तु यह मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि श्री युगलकिशोर गुप्त द्वारा लिखी हुई इस पुस्तक के टक्कर में कोई भी नहीं रक्खी जा सकती। इसके लेखक ने पुस्तक को बोर्ड आफ इन्डियन मेडिसन यू० पी० गवर्नमेन्ट के सिलेबस में निर्धारित पाठ्य-क्रम के अनुसार ही लिखा है। अतएव उक्त बोर्ड से स्वीकृत सभी कालिजों के विद्यार्थियों के लिये यह पुस्तक विशेष रूप से लाभप्रद है। लेखन शैली अति उत्तम है। लेखक स्वयं विद्यार्थी अवस्था में होने के कारण विद्यार्थियों की कठिनाइयों को भली प्रकार समझता है। अतएव लेखक ने ऐसे ढंग से लिखने का यत्न किया है कि विद्यार्थी समुदाय इस विषय को ठीक से समझ सकें और सरलता पूर्वक याद भी कर सकें। आयुर्वेद के प्रत्येक छात्र को इस पुस्तक की एक प्रति अपने पास अवश्य रखनी चाहिये।

व्यवहारायुर्वेद

विषयानुक्रमणिका

विष-विज्ञान

विषयानुक्रमणिका

शुद्धाशुद्धिपत्र

व्यवहारायुर्वेद

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१८	का	के
३	६	प्रका रं	प्रकार
५	४	धटना	घटना
८	५	वे	वे
१३	६	दिंये पिंछले	दिये गये पिछले
१४	६	आंघात	आघात
१५	१२	मेंप हुँच	में पहुँच
१५	२२	चाहिने	चाहिये
२०	१०	कपोलास्यियाँ	कपोलास्थियाँ
२८	४	रहते	रहते हैं।
३०	२४	Mola...	Molars First
४१	१६	पदार्य	पदार्थ
४६	१७	जित	रंजित
४६	१८	टेट	टस्ट
५२	३	रक्त तरलांश	रक्त के तरलाँश
५४	२२	शोथ[1]	शोथ[3]
५४	२७	Cerebrel	Cerebral
६३	१५	परिवर्तनन हीं	परिवर्तन नहीं
६४	१६	निकलने	निकलने
६५	५	बबती	बढ़ती
६६	१५	हो	ही
६६	२१	औ	और
६६	७,२०	आभ्यान्तरिक	आभ्यन्तरिक
७२	२०	,,	,,
७५	२०	,,	,,
७८	५	,,	,,

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७४	१८	जाथेगी	जायेगी
८३	१०	मृत्तु	मृत्यु
८४	२५	प्रवेश	प्रदेश
८६	२४	हृदय अकस्मात	हृदय का कार्य अकस्मात
९३	३	Apoplexv	Apoplexy
९४	१३	व्यवहारायुवेद	व्यवहारायुर्वेद

विष विज्ञान

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	१६	सार्वाङ्गक	सार्वाङ्गिक
२१	१०	Hcl	HCl
४६	२२	अमानिया	अमोनिया
६६	८	अप्र	अग्र
६७	२१	प्रोक्ता	प्रोक्तो
६८	२३	।जक	जिंक
६८	२३	Cl^2	Cl_2
७६	४	।तक	घातक
९०	३	....	धतूरा
९२	३	अंगुलों	अंगुलियों
९४	३	धतूरा	×
९५	२	विश्लषण	विश्लेषण
९८	२३	दढ़मा	दढ़ता
११६	१२	काक्साइड	आक्साइड
१२१	१६	धीर	धीरे
१३३	६	दं	दंश
१३३	११	Rabries	Rabies
१३३	२४	मत कुक्कुर	मत से कुक्कर
१३३	२६	देगा	देना
१३३	२६	चहिंये	चाहिये
१३४	२	(२)	(२)
१३५	२०	Onema	[illegible]ma
१३६	६	Nensalver[illegible]	[illegible]san

सरल—
व्यवहारायुर्वेद और विषविज्ञान

पहला अध्याय

व्यवहारायुर्वेद की परिभाषा:—

जो चिकित्सा विज्ञान के किसी अथवा सभी विभागों का, जब कभी और जहाँ कहीं आवश्यकता पड़े—प्रयोग करके दीवानी (Civil) अथवा फौज़दारी (Criminal) कानून सम्बन्धी मामलों के निर्णय करने के लिये व्यवहृत होता है, उस विज्ञान को व्यवहारायुर्वेद (Medical Jurisprudence) कहते हैं।

फौजदारी न्यायालय—ये चार प्रकार के होते हैं:—

(१) उच्च न्यायालय (High Courts)
(२) सैसन के न्यायालय (Courts of Session)
(३) मैजिस्ट्रेट के न्यायालय (Courts of Magistrates):—
  (क) प्रेसीडेन्सी मैजिस्ट्रेट (Presidency Magistrate)
  (ख) प्रथम श्रेणी के मैजिस्ट्रेट (First class ,,)
  (ग) द्वितीय श्रेणी के मैजि[illegible] [illegible]ond class ,,)
  (घ) तृतीय श्रेणी के [illegible] class ,,)
(४) कारोनर [illegible])

[illegible] के नीचे [illegible] में

(१) उच्च न्याय[illegible] होते हैं जो [illegible]

इस श्रे[illegible] एक वर्ग (Species [illegible]रीर पर फैल जाता [illegible] करने और

(२) सैसन के न्यायालयः—

इस प्रकार के न्यायालयों को उच्च न्यायालयों की भाँति सब प्रकार के अपराधों पर विचार करने और सब प्रकार के दण्ड दे सकने का अधिकार होता है, किन्तु यदि इस श्रेणी का कोई न्यायालय किसी बड़े अपराध के लिये प्राण-दण्ड की व्यवस्था करता है तो अपराधी उच्च न्यायालय में 'विचार करने और स्वीकृत दण्ड के विरुद्ध अपील (Appeal)' कर सकता है और जब तक उच्च न्यायालय उस दण्ड को स्वीकृत न कर दे, तब तक अपराधी को दण्डित नहीं किया जा सकता है ।

जूरी और एसेसर (Jury and Assessor):—

उच्च न्यायालयों और सेसन के न्यायालयों में न्यायाधीश (Judge) को किसी अपराध के सम्बन्ध में विचार करने में सहयोग देने के लिये एक जूरी (Jury) होती है और कहीं कहीं पर एसेसर (Assessor) भी होते हैं ।

(३) मैजिस्ट्रेट के न्यायालयः—

(क-ख) प्रेसीडेन्सी और प्रथम श्रेणी के मैजिस्ट्रेटः—

ये नरहत्या, बलात्कार, गर्भपात इत्यादि बड़े अपराधों को छोड़कर शेष सभी प्रकार के छोटे छोटे मामलों की सुनवाई कर सकते हैं और किसी एक अपराध के लिये दो वर्ष तक का कारावास और एक हज़ार रुपये तक का अर्थ-दण्ड दे सकते हैं ।

(ग) द्वितीय श्रेणी के मैजिस्ट्रेटः—

ये लघु अपराधों पर विचार एवम् दण्ड व्यवस्था कर सकते हैं और किसी एक अपराध के लिये छै मास [illegible] का कारावास और दो सौ रुपये तक का अर्थ-दण्ड दे सकते हैं ।

(घ) त[illegible]

ये किसी एक[illegible]वास और पचास रुपये तक[illegible]

(४) का[illegible]

आकस्मि[illegible]

भाविक मृत्यु के कारणों का पता लगाने के लिये एक न्यायालय होता है जिसे 'कारोनर का न्यायालय' कहते हैं ।

पुलिस की प्रारम्भिक जाँच (Police Inquest):—

प्रत्येक नगर में एक पुलिस सबइन्सपेक्टर की श्रेणी का अफ़सर होता है जो किसी भी प्रकार की संदिग्ध मृत्यु, आघात तथा अन्य अस्वाभाविक घटनाओं की सूचना पाकर शीघ्रातिशीघ्र घटना स्थल पर जाता है और निकटतम स्थितमैजि-स्ट्रेट को इसकी सूचना देता है । घटना स्थल पर जाकर वह पड़ोस के दो या दो से अधिक स्थानीय सभ्य व्यक्तियों के समक्ष शव अथवा मामले की जाँच करता है और मृत्यु के कारण वा घायल व्यक्ति के शरीर पर व्रण अथवा अन्य आघात के चिह्नों का वर्णन करते हुये रिपोर्ट लिखता है और उसमें यह भी लिखता है कि सम्भवतः किस प्रकार के शस्त्र से अघात किया गया है । तत्पश्चात् पुलिस अफ़सर तथा अन्य सभ्य पुरुषों के हस्ताक्षर होते हैं ।

संदिग्ध शवों के सम्बन्ध में पुलिस अफ़सर सिविल सार्जन अथवा अन्य अधिकृत चिकित्सक के पास शव को शवच्छेदन के लिये भेजता है और अपनी जाँच द्वारा पाये हुए समस्त विषयों को लिखकर भेज देता है । सिविल सार्जन मृत्यूत्तर परीक्षा करने के बाद पुलिस के फार्म नम्बर २८६ पर अपनी रिपोर्ट लिखकर शव के साथ आये हुये कानस्टेबिल के द्वारा पुलिस अफ़सर को भेज देता है । और पुलिस के फार्म नम्बर ३३ पर बाद को शव का पूरा विवरण लिखकर पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट के पास भेज देता है । तत्पश्चात पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट उस रिपोर्ट को सम्बन्धित सबडिविज़नल अफ़सर अथवा मैजिस्ट्रेट के पास भेज देता है । शव का किसी स्थान [illegible]विल सार्जन के पास अथवा अन्य किसी स्थान को शवच्छेदन के लिये भेज[illegible] स्थान की दूरी तथा अन्य बातें ध्यान में रखनी चाहियें ।

बलात्कार त[illegible] पुलिस सबइन्सपेक्टर व्यक्ति को [illegible] भेज देता [illegible] इस [illegible] पुलिस अफ़सर [illegible] या घायल व्यक्ति

मैजिस्ट्रेट के न्यायालय में प्रार्थनापत्र देकर मैजिस्ट्रेट से एक पत्र प्राप्त करके सिविल सार्जन के पास परीक्षा करा सकता है।

अभियोगी की खोज में कठिनाईयाँ (Difficulties in the detection of crime)

कभी कभी व्यवहारायुर्वेद सम्बन्धी चिकित्सक को किसी व्यक्ति के परीक्षण तथा उसके मृत्यु के कारण का निर्णय करने में कठिनाईयाँ होती हैं। इसके कारण निम्नलिखित हैं:—

(१) खोजने वाले पुलिस अफ़सर का घटना स्थल पर विलम्ब से पहुँचना- इसका कारण पुलिस अफ़सर का आलस्य करना या उसका किसी अन्य आवश्यक कार्य में लगा रहना हो सकता है।

(२) पुलिस अफ़सर का स्वयं अपने हाथों से शव को न छूना, पक्षपात करना या जाति आदि शंका के कारण आघात के चिह्नों को न तलाश करना अपितु अन्य ग्रामीण व्यक्तियों से निरीक्षण करा कर रिपोर्ट लिखना।

(३) पुलिस द्वारा अपर्याप्त सूचना का मिलना—पुलिस की रिपोर्ट बहुत थोड़ी लिखी हो जिसके कारण व्यवहारायुर्वेद किसी ठीक निर्णय पर न पहुँच सके।

(४) असत्य एवम् षडयंत्र रचित साक्षी देना—ग्रामीण व्यक्तियों, मृत व्यक्ति के सम्बन्धियों एवम् उसके पड़ोसियों के भय अथवा किसी अन्य कारण से ठीक ठीक बातों का न बताना। बहुत से ग्रामीण न्यायालय में आने से डरते हैं और जानते हुये भी विषय को गुप्त रखने का यत्न करते हैं।

(५) मृत शरीर को [illegible] या उसको नष्ट करने की सुगमतायें— हिन्दुस्थान में चिकित्सक [illegible] लिये बिना ही मृत्यु के बाद शव का दाह-संस्कार अथवा दफ़न [illegible] कर दी जाती है। इसके अतिरिक्त शव को कि[illegible] अथवा उसे नदी, नहर, ताला[illegible] भूमि में गाड़ दिया [illegible]

(६) शव [illegible]

शवें शीघ्रता से सड़ने लगती हैं। विलम्ब के कारण और उसके परिणाम स्वरूप सड़न का शीघ्र प्रारम्भ होनाः—

(क) घटनास्थल से पुलिस के थाने का दूरी पर होना।

(ख) घटनास्थल से चिकित्सक का बहुत दूरी पर होना।

(ग) पुलिस अफ़सर का आलस्य करना अथवा उसका किसी अन्य आवश्यक कार्य में लगा रहना।

(घ) एक स्थान से दूसरे स्थान-पर शव को ले जाने के लिये उचित प्रबन्ध का न होना।

(ङ) सड़न को रोकने के लिये किसी प्रकार का साधन न होना।

(७) कभी कभी कुछ लोग अपने शत्रुओं से प्रतिकार के हेतु स्वयं अपने किसी निकट सम्बन्धी (प्रायः शिशुओं अथवा वृद्ध पुरुषों) का बध करके शत्रु के द्वार पर डाल देते हैं जिस से मृत्यु का ठीक ठीक कारण नहीं मालूम हो पाता और अपराधी की खोज में कठिनाई उपस्थित हो जाती है।

सफीना (Subpoena or Summon)

सरकारी न्यायालयों की ओर से गवाहों को एक लिखित पत्र भेजा जाता है जिसे सफीना कहते हैं, इसे न्यायालय का चपरासी गवाहों के पास ले जाता है। गवाहों को इस पर हस्ताक्षर करना होता है और नियुक्त तिथि पर साक्षी देने के लिये उसे न्यायालय में उपस्थित होना पड़ता है।

चुंकि न्यायालय में अपराधी की [illegible] की मौखिक साक्षी लिये बिना प्रायः चिकित्सक [illegible] [illegible]त करने के योग्य नहीं होते, अतएव [illegible] मामलों में सम्बन्धित [illegible] [illegible]श्चित तिथि [illegible]

शपथ (Oath)

जिस समय गवाह गवाही देने के कटघरे (Witness box) में खड़ा होता है तो साधारणतया गवाही देने से पूर्व उसको शपथ खानी पड़ती है । गजटेड मेडिकल अफ़सरों और सिविल सार्जनों को कटघरे में नहीं खड़ा होना पड़ता अपितु उनको न्यायाधीश की मचान पर एक ओर कुर्सी दे दी जाती है ।

शपथ तीन प्रकार की होती है:—

(१) प्रथम प्रकार की शपथ में ईसाई धर्म के अनुयायियों को गवाही देने से पूर्व इंजील को मस्तक पर लगाकर चूमना पड़ता है परन्तु यह स्वास्थ्य-रक्षा के नियम के विरुद्ध होने के कारण अब 'स्काच विधान' के अनुसार शपथ खानी होती है और गवाह अपना दाहिना हाथ उठाकर गम्भीर एवम् दीर्घ-स्वर में निम्नलिखित वाक्य कहता है:—

"I swear by Almighty God, as I shall answer to God at the Great Day of Judgement that I will tell the truth, the whole truth and nothing but the truth."

अर्थात् "मैं सर्वशक्तिमान ईश्वर की शपथ खाता हूं—क्योंकि न्याय के उस महान दिवस पर मुझे ईश्वर को उत्तर देना होगा, कि मैं सत्य कहूँगा, सर्वथा सत्य कहूँगा और सत्य से अतिरिक्त कुछ नहीं कहूँगा ।"

(२) द्वितीय प्रकार की [illegible] में अन्य मतावलम्बियों को खड़े होकर निम्न-लिखित वाक्य कहना पड़ता [illegible]

"The evide[illegible] court shall be the truth [illegible] so help [illegible]

अर्थात् [illegible] और सत्य [illegible]

(३) तृतीय प्रकार की शपथ गम्भीर शपथ कहलाती है। इसमें खड़े होकर निम्नलिखित वाक्य कहना पड़ता है:—

"I solemnly affirm that the evidence which I shall give to the court shall be the truth, the whole truth and nothing but the truth."

अर्थात् "मैं गम्भीरता के साथ प्रतिज्ञा करता हूँ कि साक्षी जो कि मैं न्यायालय को दूँगा-सत्य होगी, सर्वथा सत्य होगी और सत्य से अतिरिक्त कुछ नहीं होगी।"

किसी भी तरह से गवाही दी जाय, यदि न्यायालय की ओर से वह झूठी गवाही सिद्ध हो जाय तो इस प्रकार की गवाही देने वाले व्यक्ति पर इण्यिन पेनल कोड (Indian Penal code) की धारा १९३ के अनुसार झूठी गवाही देने का मुकद्दमा चलाया जाता है।

साक्षी का प्रमाण (Recording of evidence)

(१) मुख्य परीक्षण (Examination in chief):—गवाह का यह प्रथम परीक्षण है। इसमें जो पक्ष उसको बुलाता है—वही उसकी परीक्षा करता है। सरकारी मुकद्दमों में सरकारी न्यायालय का इन्सपेक्टर अथवा सरकारी बैरिस्टर और निजी मुकदमों में मुकद्दमा चलाने वाले व्यक्ति का वकील उससे और उसके पक्ष के गवाहों से प्रश्न करता है। और इस प्रकार से मुकद्दमें से सम्बन्धित मुख्य मुख्य बातें ग्रहण कर ली जाती हैं। इसमें ऐसे प्रश्न नहीं किये जा सकते जो उत्तर देने में सहायक हों।

(२) प्रश्नोत्तर परीक्षण (Cross-exa[illegible]ination):—इसमें अपराधी (accused) का वकील मुकद्दमा चला[illegible] के प्रथम परीक्षण के कथन के ऊपर वाद विवाद और प्रश्न करत[illegible] पक्ष (accused) को विजयी [illegible] है। इस में एकदम [illegible] होते, अतएव [illegible] सावधानी एवम् [illegible] न जाये, [illegible] करने का [illegible] है।

(३) पुनः परीक्षण (Re-examination):—इसमें मुकद्दमा चलाने वाले व्यक्ति या उसके पक्ष के गवाहों की उत्तर दी हुई बातों पर मुख्य परीक्षण करने वाला वकील या इन्सपेक्टर उनसे पुनः इसलिये प्रश्न करता है कि यदि प्रश्नोत्तर परीक्षण के समय उनसे किसी प्रकार की विरुद्धता की बात हो गई हो तो वे उसे स्पष्ट कर दें।

(४) न्यायाधीश का परीक्षण (Judge's examination):—इसमें न्यायाधीश अपनी पंचायत (Jurors or Assesors) के सहित उनकी सहायता लेकर प्रश्न करता है। यदि कोई बात उसकी समझ में नहीं आये, तो इस प्रकार के प्रश्न वह पूर्वोक्त तीन प्रकार के परीक्षण के बीच में भी कर सकता है।

चिकित्सक की साक्ष्य (Medical Evidence)

चिकित्सक की साक्षी दो प्रकार की होती हैः—(१) मौखिक (Oral) और (२) लिखित (Documentary)

(१) मौखिक साक्षी-सभी परिस्थितियों में मौखिक साक्षी या तो वह स्वयं आँखों द्वारा देखी हुई होनी चाहिये या फिर वह घटना से सम्बन्धित होनी चाहिये।

(क) दृष्ट साक्षी (Eye-witness):—यदि यह वास्तविकता का निर्देश करता है तो साक्षी उस व्यक्ति की होनी चाहिये जिसने स्वयँ देखा हो, सुना हो या उस वास्तविकता को जानता हो। लिखित की अपेक्षा मौखिक साक्षी का अधिक महत्व है क्योंकि इसमें प्रश्नो[illegible] होता है।

(ख) घटना से सम्बन्[illegible] [illegible]rcumstantial evidence):—
इसमें सहायक घटनायें [illegible] में अपराधी
घटना से पूर्व पड़ोस[illegible] उसे लेकर
जाते हुये दे[illegible] भूमि में
से सम्बन्धि[illegible]

(२ [illegible]

१. स्वास्थ्य में विकृति, मृत्यु, उन्माद, आयु, कुष्ठ, बलात्कार आदि के प्रमाण-पत्र।

२. चिकित्सक की रिपोर्टें:—

(क) आघात सम्बन्धी।

(ख) मृत्यूत्तर रिपोर्ट।

३. मृत्यु के समय का बयान।

४. पुस्तकों से दक्ष (ऐक्सपर्ट) की सम्मति।

५. गवाह द्वारा (न्यायालय में) दिये गये पिछले बयान।

६. सिविल सार्जन या अन्य किसी चिकित्सक की गवाही जो कि किसी न्यायालय में अपराधी के सम्मुख पिछले बार दी जा चुकी हो, और मैजिस्ट्रेट द्वारा प्रमाणित हो चुकी हो।

७. रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट।

(१) चिकित्सक के प्रमाण-पत्र[1]

चिकित्सक के प्रमाण-पत्र चिकित्सक के वे लिखित प्रमाण-पत्र हैं जिनमें कि चिकित्सक किसी व्यक्ति की व्याधि, मस्तिष्कजन्य विकार, आयु, बलात्कार, मृत्यु, कुष्ठ आदि के सम्बन्ध में लिखता है।

समस्त प्रकार के प्रमाण-पत्रों को असावधानी के साथ नहीं लिखना चाहिये अपितु उन्हे बहुत सम्भाल कर सतर्कता एवम् सावधानी के साथ लिखना चाहिये और अन्त में सम्बन्धित मेडिकल अफ़सर द्वारा [illegible] ित समय में हस्ताक्षर किये जाने चाहियें। इस प्रकार के प्रमाण-पत्रों [illegible] त्यु के स [illegible] तिथि, समय और परीक्षा करने का स्थान [illegible] आवश्यक [illegible] त्सक के अतिरिक्त अन्य चिकित्सकों [illegible] के सा [illegible] होते।

[illegible] होते, अतएव [illegible] करते। समय [illegible] के नीचे [illegible]

[illegible] मुंजाक्ता [illegible] होते हैं जो [illegible]

इस [illegible] एक वर्ग (Species [illegible] रीर पर फैल जाता है [illegible]

रोगी की मृत्यु हो जाय तो सम्बन्धित चिकित्सक को सरकारी नियम के अनुकूल मृत्यु के कारण के सम्बन्ध में प्रमाण-पत्र देना पड़ता है। इस प्रकार के प्रमाण-पत्रों में चिकित्सक को अपने अधिक से अधिक ज्ञान एवम् विश्वास के आधार पर मृत्यु का कारण लिखना चाहिये और प्रमाण-पत्र लिखने में किंचित भी विलम्ब नहीं करना चाहिये चाहे उसे रोगी के जीवन-काल की फीस न भी मिली हो। प्रमाण पत्र देने के बाद यदि चिकित्सक अपनी फीस लेना ही चाहता है तो वह मृत व्यक्ति के उत्तराधिकारी पर नालिश करके अपनी फीस प्राप्त कर सकता है।

यदि रोगी की मृत्यु चिकित्सक के सम्मुख न हुई हो अथवा चिकित्सक को उस रोगी की मृत्यु पर सन्देह हो तो वह प्रमाण-पत्र देने से इनकार भी कर सकता है किन्तु इस अवस्था में शव की अन्तिम क्रिया किये जाने से पूर्व ही उसे पुलिस को सूचित कर देना चाहिये। जब तक रोगी की पूर्णतय मृत्यु न हो जाय तब तक प्रमाण-पत्र पर हस्ताक्षर नहीं करना चाहिये।

(ख) उन्माद का प्रमाण-पत्र[1]

यदि किसी अपराधी का मस्तिष्क विकृत हो जाये तो उसकी न्यायालय में पेशी तब तक के लिये स्थगित कर देनी चाहिये जब तक कि सिविल सार्जन अथवा स्थानीय सरकार (Local government) द्वारा अधिकृत मेडिकल अफ़सर का मस्तिष्क ठीक हो जाने का प्रमाण-पत्र न मिल जाये।

(२) चिकित्सक की रिपोर्ट[2]

आघात सम्बन्धी अथ[illegible] रिपोर्टें (Injury report or Post-mortem reports) [illegible] और क्षतों (Injuries) का वर्णन फार्म में छपे हुये शीर्ष[illegible] [illegible] में अपराधी करने वाले अफ[illegible] [illegible] उसे लेकर अन्य जांच [illegible] [illegible] भूमि में

1. [illegible]

2. [illegible]

(क) जीवित अवस्था में क्षत सम्बन्धी रिपोर्ट में क्षतों का पूर्ण रूप से वर्णन होना चाहिये अर्थात:—

(१) क्षत की संख्या-एक, दो या इससे अधिक।

(२) क्षतों के भेद—पिच्चन (contusion), भेदन (punctured), खुरेच्चन (abrasion) या बन्दूक की गोली के व्रण (gun-shot wounds)।

(३) प्रत्येक क्षत का आकार:—लम्बाई, चौड़ाई और गहराई।

(४) क्षत की स्थिति:—प्रत्येक व्रण शरीर के किस भाग में पाया गया है।

(५) क्षत की प्रकृति:—साधारण, तीव्र अथवा भयङ्कर।

(६) प्रयुक्त शस्त्र के भेद: —नुकीला, तेज़ आदि।

(७) विशेष विवरण:—यदि कोई हो।

(ख) मृत शरीर के मामले में रिपोर्ट में बाह्य और आभ्यन्तरिक क्षतों एवम् मृत्यूत्तर रूपों का पूर्णरूपेण वर्णन होना चाहिये और उसमें निम्नलिखित बातें भी सम्मिलित होनी चाहियेः —

(१) मृत्यु का कारण।

(२) सहायक कारण:—यदि कोई हो।

(३) शस्त्र की प्रकृति:—जिसके द्वारा क्षत प्राप्त हुआ।

(४) क्षत:—स्वकृत, परकृत अथवा आकस्मिक थे।

चिकित्सक की रिपोर्टों का साक्षी रूपमें मान्य:—

चिकित्सक की ये क्षत सम्बन्धी एवम् [illegible] रिपोर्टें तब तक साक्षी नहीं मानी जातीं जब तक कि रिपोर्ट करने [illegible] अफ़सर अपराधी की उपस्थिति में [illegible] यु के स[illegible] ते हुये अपनी लिखित [illegible] खित लिखित साक्षियाँ चिकित्सकों [illegible] होते, अतएव [illegible] के नीचे [illegible] में [illegible] पेक्षि [illegible] र्गुजाक्षा [illegible] होता है जो [illegible] इस [illegible] एक वर्ग (Species [illegible] रीर पर फैल जाता [illegible]

(३) मृत्यु के समय का बयान[1]

यह किसी व्यक्ति द्वारा लिखित या मौखिक वह वर्णन है जिसे सद्यः मुमूर्ष व्यक्ति अपनी मृत्यु से पूर्व यह समझ कर लिखता है कि अब वह जीवित नहीं बच सकता अथवा उसकी स्थिति इतनी भयंकर हो कि उससे उस व्यक्ति की मृत्यु हो जाय। जब उस व्यक्ति की मृत्यु के कारण की जाँच की जा रही हो-तब यह बयान साक्षी मानी जाती है। मृत्यु के समय का बयान किसी मैजिस्ट्रेट के सामने और उसकी अनुपस्थिति में सुयोग्य मेडिकल अफ़सर के सामने लिया जाना चाहिये। पुलिस अफ़सर को यह बयान लेने का अधिकार नहीं है।

मेडिकल अफ़सर का यह कर्तव्य है कि क्षत-प्राप्त व्यक्ति के बयान लेने के लिये वह पुलिस या सबडिवीज़नल अफ़सर को सूचित कर दे किन्तु यदि वह मैजिस्ट्रेट के आने से पूर्व व्यक्ति को मृत्यु के सन्निकट अथवा मूर्छाऽवस्था प्राप्त होने के निकट समझे तो मेडिकल अफ़सर को स्वयं उसके बयान लेलेना चाहिये।

यदि सम्भव हो सके तो बयान देने वाले व्यक्ति को ही बयान लिखने देना चाहिये किन्तु यदि यह असम्भव हो तो बयान देने वाले व्यक्ति के ही शब्दों में बयान लिख लेना चाहिये। बयान देने वाले व्यक्ति से निर्देशक प्रश्न नहीं करना चाहिये और बयान दे चुकने के बाद उसे पढ़कर सुना देना चाहिये और जब कभी सम्भव हो, उससे हस्ताक्षर करा लेना चाहिये। अन्य गवाह यदि उपस्थित हों तो उनके भी हस्ताक्षर ले लेना चाहिये।

मृत्यु के समय के बयान का महत्व:—

यदि बयान देने वाला [illegible] के कारण मृत्यु को प्राप्त हो जाय तो वह बयान न्यायालय में मान्[illegible] स्वस्थ हो जाय तो उस बयान का कोई महत्व नहीं स[illegible]

[illegible]

पुस्त[illegible]

1. [illegible]
2. [illegible]

साक्षी रूप में तभी मान्य हैं जबकि उसके लेखक की मृत्यु हो चुकी हो अथवा साक्षी देने के लिये अयोग्य हो अथवा उसका ठीक पता मालूम न हो । इस प्रकार की सम्मति न्यायालय में उस समय भी मानी जा सकती है जब कि उस निपुण व्यक्ति के स्वयं आने में अनावश्यक विलम्ब एवम् अत्यधिक धन का व्यय करना पड़े।

(५) गवाह द्वारा न्यायालय में दिये पिछले बयान[1]

निम्नलिखित अवस्थाओं में इस प्रकार की साक्षी मान्य होती है:—

(क) यदि व्यक्ति की मृत्यु हो गई हो अथवा साक्षी देने में किसी कारण वश असमर्थ हो अथवा उसका ठीक पता न मालूम हो ।

(ख) यदि प्रतिपक्षी उसकी आवश्यकता न समझता हो ।

(ग) यदि उसकी उपस्थिति अत्यधिक विलम्ब अथवा अत्यधिक व्यय किये बिना न प्राप्त हो सके जिसे कि न्यायालय अनौचित्य समझती हो ।

(६) सिविलसार्जन अथवा किसी अन्य चिकित्सक की साक्षी[2]

यदि किसी छोटे न्यायालय में सिविल सार्जन अथवा किसी अन्य चिकित्सक की साक्षी अपराधी के सम्मुख दी गयी हो, जिसे कि प्रश्नोत्तर परीक्षण का अवसर प्राप्त हो चुका हो और वह मैजिस्ट्रेट द्वारा प्रमाणित हो चुकी हो तो वह उच्चश्रेणी के न्यायालयों एवम् सेसन के न्यायालयों (Session courts) में साक्षी के रूप में मान्य होती है

(७) रासाय[illegible] रिपोर्ट[3]

शरीर के अ[illegible] [illegible] [illegible]यु के स[illegible] के रासायनिक परीक्षक द्वारा जो रिपोर्टें [illegible] परीक्षक की मौखिक साक्षी लिये [illegible]

होते, अतएव [illegible] के नीचे [illegible]

[illegible] g.

[illegible] ness.

इस अ[illegible] एक वर्ग (Species [illegible] रीर पर फैल जाता [illegible]

साक्षी देते समय ध्यान में रखने वाली बातें

(१) धीरे धीरे, स्पष्ट एवम् ऊँचा बोलना चाहिये ताकि मैजिस्ट्रेट, न्यायाधीश आदि उसे अच्छी तरह सुन सकें।

(२) सरल एवम् साधारण भाषा का प्रयोग करना चाहिये। चिकित्सा शास्त्र से सम्बन्धित पारिभाषिक एवम् गूढ़ शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

(३) अतिशयोक्ति एवम् विशेषणों का प्रयोग कदापि न करना चाहिये, जैसे-भयंकर आघात, असाधारण खुरेचन आदि।

(४) यथार्थ कहना चाहिये—ठीक समय, प्रत्येक क्षत की ठीक ठीक माप और ठोस पदार्थों का ठीक भार बतलाना चाहिये।

(५) प्रश्नों का उत्तर संक्षिप्त होना चाहिये। यदि सम्भव हो तो उत्तर हाँ अथवा ना में देना चाहियेः। जिन शब्दों की परमावश्यकता न हो, उन का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

(६) केवल वास्तविकता को ही कहना चाहिये और जब तक पूछा न जाय तब तक किसी विषय पर अपनी सम्मति नहीं देनी चाहिये।

(७) अपने चित्त को शान्त रखना चाहियेः—प्रश्न चाहे कितना ही उत्तेजित अथवा अपमानित [illegible] न हो, प्रश्नोत्तर परीक्षण के समय क्रोध नहीं करना चाहिये [illegible]

(८) सतर्क रह[illegible] पढ़ा जाय तो चिकित्सक को चा[illegible] करने के लिये उसे अ[illegible] तत्सम्बन्धित [illegible] भाग [illegible] उद्धरण [illegible] हिक रूप में पाय [illegible] तब उत्त[illegible] कभी अधिक समय भी ल[illegible]

साक्षी देने के नियमः—

न्यायालय दो प्रकार के होते हैं।

(१) दीवानी और (२) फौजदारी

(१) दीवानी (Civil court):—

(क) यदि कोई व्यक्ति इस न्यायालय में सफीना लेने के बाद नियुक्त तिथि पर साक्षी देने के लिये न्यायालय में न पहुँचे तो उसकी अनुपस्थिति के कारण जो क्षति हुई है, उस क्षति की पूर्ति उस व्यक्ति को करनी पड़ सकती है।

(ख) व्यवहारायुर्वेद सम्बन्धी गवाह अर्थात् चिकित्सक सफीना लेने से पूर्व अपनी फीस माँग सकता है, इस प्रकार की फीस को 'काण्डण्ट मनी' (Conduct money) कहते हैं और उसकी फीस न मिलने पर वह सफीना लेने से इनकार कर सकता है अथवा सफीना लेकर न्यायालय मेंप हुँच कर साक्षी देने से पूर्व शपथ खाते समय अपनी फीस माँग सकता है और तत्सम्बन्धित न्यायधीश उसे फीस दिलाने का यत्न करता है।

(२) फौजदारी (Criminal court):—

यदि इस प्रकार के न्यायालय में गवाह सफीना लेने से इनकार करे अथवा साक्षी देने से इनकार करे तो उस व्यक्ति को दण्ड अथवा कारागार तक हो सकता है। सफीना लेते समय चिकित्सक अपनी फीस का प्रश्न उठाकर किसी प्रकार की बाधा नहीं डाल सकता किन्तु स्वतन्त्र चिकित्सक न्यायालय में पहुँच कर शपथ खाने से पू[illegible] सकता है। फिर भी यदि न्यायालय उतने ध[illegible] मांगता है तो उसको हठ नहीं [illegible]लय का अपमान करने (Conte[illegible] ता है।

[illegible]

नियुक्त कर देता है । इस नियुक्त फीस के दिये जाने पर भी यदि कोई चिकित्सक गवाही न दे तो मैजिस्ट्रेट उसको बलपूर्वक गवाही देने के लिये बाध्य कर सकता है ।

भारतीय दण्ड विधान[1] की धारा ५४४ के अनुसार सिविल सार्जन को १६ रुपये और ऐसिस्टैण्ट सिविलसार्जन अथवा मेडिकल अफ़सर को १०) रुपये की फीस प्रदान की जाती है । यदि गिरफ्तारी के मुकद्दमों में अपराधी किसी चिकित्सक को न्यायालय में बुलाये तो उसको क्रिमिनल प्रोसीड्योर कोड (Criminal procedure code) की धारा २५७ के अनुसार उपरोक्त फीस देनी होगी, एतदर्थ यदि सरकारी चिकित्सक को साक्षी देने के लिये बुलाया जाता है तो उसको साक्षी देने की कोई फीस नहीं मिलती अपितु दो रुपये भत्ता मिलता है ।

यदि एक ही तिथि में एक ही समय पर दीवानी और फौजदारी दोनों प्रकार के न्यायालयों में साक्षी देने के लिये बुलाया जाये तो चिकित्सक को पहले फौजदारी वाले न्यायालय में जाना चाहिये और फिर समय मिलने पर दीवानी वाले न्यायालय में जाना चाहिंये । और यदि एक ही समय पर एक ही प्रकार के दो न्यायालयों में बुलाया जाय तो गवाह को पहले उच्च श्रेणी के न्यायालय में जाना चाहिये और यदि ये न्यायालय भी समान श्रेणी के हो तो जिस न्यायालय का बुलावा पहले प्राप्त हुआ हो, वहां जाना चाहिये ।

चिकित्सकों के लिये गोपनीय विषय सम्बन्धी कर्त्तव्य[2]

गवाह के रूप में एक चिकित्सक किसी भी प्रकार के गोपनीय विषय को जिसे कि वह जानता है, न्या[illegible] करने के लिये बाध्य है । यदि न्यायालय उस भेद को [illegible] नहीं बतलाना चाहिये किन्तु जब न्यायालय उस[illegible] उसे बतला देना चाहिये अन्यथा [illegible] चलाया जा सकता है । [illegible]

1- In[illegible]

2. P[illegible]

दूसरा अध्याय

व्यक्ति की पहचानः—

परिभाषाः—

किसी जीवित अथवा मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व को ठीक ठीक निर्णय करने को 'व्यक्ति की पहचान' कहते हैं।

यह २ प्रकार की होती हैः—

(१) समस्त शरीर की पहचान।
(२) अपूर्ण शरीर की पहचान।

(१) समस्त शरीर की पहचानः—इससे किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का ठीक ठीक निर्णय किया जाता है।

(२) अपूर्ण शरीर की पहचानः—इससे शरीर की पहचान के सम्बन्ध में केवल कुछ बातों का ही निर्णय किया जा सकता है, उदाहरणार्थ किसी अपूर्ण शरीर का निरीक्षण करके यह ज्ञात हुआ कि यह किसी हिन्दू नवविवाहिता स्त्री का शरीर है किन्तु अन्य बातें—उसका नाम, गृह, जाति, पता आदि के विषय में पता नहीं लगाया जा सका।

जीवितावस्था में व्यक्तित्व निर्णयः—

यह कार्य पुलिस द्वारा सम्पादित होता है [illegible] जब चिकित्सा सम्बन्धी ज्ञान की भी आवश्यकता पड़[illegible] से भी सहायता ले सकती है।

[illegible]

व्यक्तित्व [illegible] में पड़ती हैः—

(I [illegible]

[illegible] होते, अतएव [illegible] के नीचे [illegible]

[illegible] भुंजाका [illegible] होता है जो [illegible]

इस [illegible] एक वर्ग (Species [illegible] शरीर पर फैल जाता है [illegible]

(IV) अपराध युक्त गर्भपात (criminal abortion)

(V) भ्रमात्मक लिङ्ग (disputed sex)

(VI) बहुरूपयापन (false personification)

मृतावस्था में व्यक्तित्व निर्णयः—

चिकित्सक विशेषरूप से मृत शरीरके व्यक्तित्व निर्णय से सम्बन्धित है क्योंकि स्वाभाविक[1] एवम् अस्वाभाविक विशेषतायें[2] जो कि कभी कभी मृत्यूत्तर परीक्षण करने पर ही ज्ञात हो सकती है और विशेषतया उस समय जब कि शरीर अत्यधिक सड़ चुका हो, उदाहरणार्थः—शारीरिक विकृतियाँ, व्रणों के चिन्ह, गुदना आदि के चिह्न—मृत शरीर के व्यक्तित्व निर्णय करने में विशेष भाग लेते हैं।

मृत शरीर का व्यक्तित्व निर्णय शरीर की निम्नलिखित अवस्थाओं में करना पड़ता हैः—

(क) समस्त शरीर

(ख) अपूर्ण शरीर एवम् अस्थियाँ

(क) समस्त शरीरः—एक चिकित्सक के लिये मृत शरीर के व्यक्तित्व निर्णय में—ऐसी अवस्था में, चाहे शरीर सड़ ही क्यों न गया हो—कोई विशेष कठिनाई नहीं होती।

(ख) अपूर्णशरीर एवम् [illegible] इस अवस्था में चिकित्सक की सहायता लेना परमावश्यक है। [illegible] प्रश्न का उत्तर देने में समर्थ होगा कि वे अस्थि[illegible] हैं अथवा किसी पशु आदि के। शरीर [illegible] परीक्षण एवम् निरीक्षण करने प[illegible] केवल मृत शरीर की ज[illegible] निर्ण[illegible] किया ज[illegible]

---

1. य [illegible]

व्यक्ति की पहचान का व्यवहारायुर्वेद सम्बन्धी महत्वः—

निम्नलिखित परिस्थितियों में मृत व्यक्ति की पहचान करना आवश्यक हैः—

(१) अस्वाभाविक मृत्युः—

(क) आग लग जाने से।

(ख) कोई बारूद की वस्तु के फट जाने से।

(ग) रेलगाड़ी से कट जाने से।

(घ) नदी आदि में डूब जाने से।

(ङ) अन्य धोखे के मामलों से।

(२) बहुरूपधारन।

व्यक्ति की पहचान निम्नलिखित बातों से की जाती हैः—

(१) जाति
(२) धर्म
(३) लिङ्ग
(४) आयु
(५) सामाजिक अवस्था
(६) आकृति
(७) चलने का ढङ्ग
(८) स्वभाव और आदतें
(९) केश
(१०) गुदना
(११) पद [illegible]
(१६) वस्त्र और आभूषण
(१७) व्याख्यान और स्वर सम्बन्धी विशेषतायें
(१८) बुद्धि, स्मृति एवम् शिक्षा सम्बन्धी ज्ञान

[illegible] अथवा पूर्व-सन्तानोत्पत्ति [illegible]

होते, अतएव [illegible] के नीचे [illegible] में [illegible] भुंजाना [illegible] के होते हैं जो [illegible] के [illegible] लिये इस [illegible] एक वर्ग (Species [illegible] शरीर पर फैल [illegible]

(१) जाति[1]

अस्थि पंजर का अवलोकन करके जाति का निर्णय किया जा सकता है, एतदर्थ निम्नलिखित तालिका से सहायता मिलती है:—

विवरण	काकेशियन	मंगोलियन	नीग्रो
(१) कपाल (खोपड़ी)	गोलाकार	समचतुर्भुजाकार	संकुचित एवम् लम्बाकार
(२) ललाट	उठा हुआ	ढालू	छोटा और दबा हुआ
(३) मुख	छोटा और कपोलास्थियाँ यथोचित	बड़ा और चपटा तथा कपोलास्थियाँ उठी हुई	कपोलास्थियाँ और जबड़े उभरे हुये तथा दांत तिरछे लगे हुये
(४) ऊर्ध्वशाखा	साधारण	छोटी	लम्बी, और प्रकोष्ठास्थि प्रगंडास्थि की अपेक्षा बड़ी तथा हाथ छोटे
(५) अधोशाखा	साधारण	छोटी	जंघाप्रदेश-उरःप्रदेश की अपेक्षा बड़ा, पैर चौड़े और चपटे तथा एँड़ी की अस्थि- [illegible] पीछे की ओर बढ़ी हुई
(६) कैफ्लिक-इन्डेक्स	७० [illegible]	[illegible]	[illegible] तक

Cep[illegible] २ [illegible]

२० [illegible]

कोरि [illegible]

1. य [illegible]

(२) धर्म[1]

जब कभी कोई शव कुवां, गली, सड़क, तालाब, नहर, भील आदि के समीप में पड़ी हुई मिलती है तो उस समय जाति के अतिरिक्त उसके धर्म का भी प्रश्न उठता है। हिन्दुस्थान में विशेषतया हिन्दू और मुसलमान धर्म के लोग रहते हैं, अतएव उनमें पाये जानेवाली विशेषतायें भी ज्ञात होनी चाहिये। निम्नलिखित तालिका में इन दोनों धर्मावलम्बियों के विशेष रूपों का वर्णन किया गया है जिससे उनका परस्पर भेद सरलता से समझ में आ सकता है। पुरुष और स्त्री—दोनों का पृथक पृथक वर्णन किया गया हैं:—

पुरुष	मुसलमान	हिन्दू
(१) शिश्न	खतना—प्राय: १०-११ वर्ष की आयु तक हो जाता है।	खतना—नहीं होता।
(२) कान	कानों में छेद नहीं होते—यदि हुआ तो एक ही कान में।	प्राय: दोनों कानों में छेद होता है।
(३) चोटी	सिर पर चोटी नहीं होती।	सिर पर चोटी होती है।
(४) ढट्टे	नमाज पढ़ने के कारण माथे और घुटनों पर ढट्टे पड़ जाते हैं।	ढट्टे नहीं होते।
(५) हाथ	हथेली और छुगुनियों के नखों पर मेंहदी लगाते हैं।	मेंहदी नहीं लगाते या कम [illegible]ते हैं।
(६) जनेऊ	नहीं पह[illegible]	[illegible]धे पर द्विज लोग पहनते हैं।
(७) वस्त्र	[illegible]	[illegible] कोट, साफा, टोपी [illegible]

होते, अतएव [illegible] के नीचे [illegible]

[illegible] [illegible]भुंजाक्ता [illegible] होते है जो [illegible]

इस [illegible] एक वर्ग (Species [illegible]रीर पर फैल [illegible]

स्त्री	मुसलमान	हिन्दू
(१) गुदना	नहीं गुदातीं-केवल रंडियाँ गुदाती हैं ।	भ्रकुटी के मध्य में, वक्ष पर और कुहनी के नीचे अन्दर की ओर नीच कौमों में गुदना गुदाती हैं—(देवताओं की तस्वीर, राम, आदि)
(२) कान	बाली पहनने के लिये बहुत से छिद्र होते हैं ।	थोड़े से छिद्र होते हैं ।
(३) सिर	माँग में सिन्दूर के चिह्न नहीं होते ।	माँग से सिंदूर या उसके चिह्न होंगे । और सिर पर गहने होंगे ।
(४) नाक	बाली पहनने के लिये नाक के बीच के पर्दे (Septum) में प्रायः छिद्र होते हैं ।	बाली पहनने के लिये बायें नथुने और बीच के पर्दे में छिद्र होते हैं ।
(५) हाथ	विवाहित स्त्रियाँ काँच की चूड़ियाँ या लोहे के छल्ले नहीं पहनतीं ।	विवाहित बंगाली स्त्रियां लोहे का छल्ला, यू. पी. में दोनों हाथों में काँच, लाख, सोना [illegible] की चूड़ियाँ पहनती हैं ।
(६) वस्त्र	सुथनी [illegible] ज्याद[illegible]	[illegible] और धोती [illegible] हैं ।
(७) विधव[illegible]	[illegible]	[illegible]

(I) स्त्री सदृश पुरुषः—जिसके पुरुषीय अङ्ग स्त्री के से मिलते जुलते हों ।

(II) पुरुष सदृश स्त्रीः—जिसके स्त्रीय अङ्ग पुरुष के से मिलते जुलते हों ।

(२) युवावस्था में लिङ्ग निर्णयः—

(I) क-पुरुषः—जिस व्यक्ति में कम से कम एक वृषण[1]—जो शुक्राणु युक्त तरल को स्रवित करता हो—पाया जाय तो वह पुरुष समझा जाता है ।

ख—स्त्रीः—जिस व्यक्ति में कम से कम एक बीज-कोष[2] हो और जननेन्द्रिय के समीप कहीं पर एक छिद्र हो, जिसमें से सामयिक आर्तव स्राव होता हो तो वह स्त्री समझी जाती है ।

(II) शरीर की आकृति एवम् वृद्धि भी देखी जानी चाहियेः—

(क) पुरुषों में कटि प्रदेश[3] की अपेक्षा स्कन्ध प्रदेश[4] प्रायः चौड़े होते हैं, स्त्रियों में इसके विपरीत होता है ।

(ख) स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा स्तन अधिक बढ़े हुये होते हैं ।

(ग) पुरुषों में मुख और भगास्थि प्रदेश[5] पर अधिकता से बाल निकलते हैं ।

(घ) पुरुष का स्वर स्त्री की अपेक्षा गम्भीर होता है ।

(ङ) श्वेत रेखायें[6]—स्त्रियों में प्रथम गर्भावस्था के बाद स्थायी रूप से उदर तथा जंघा पर श्वेत रेखायें बन जाती हैं किन्तु पुरुषों में केवल अति स्थूल अथवा पहलवानों के होती हैं ।

(३) मृत्यूत्तर लिङ्ग निर्णयः—

(I) पूर्ण शरीरः—इसके द्वारा लिङ्ग निर्णय में कठिनाई नहीं होती ।

(II) अंगभंग शरीरः—[illegible] के [illegible]पादक अंग गायब होते हैं, उनमें प्रायः कठिनाई होती है । [illegible] हीं किया जा सकता, वहाँ पर निम्न विधि से स[illegible]

(क) पुरुषों में पे[illegible] हढ़ होगीं । स्त्रियों में अंग प्रत्य[illegible]

(ख) स्त्रि[illegible] है, पुरुषों में ऐ[illegible]

1. Te[illegible]
4. Sh[illegible]

(ग) यदि शरीर में दाढ़ी, मूँछ और हाथ, पैर तथा वक्ष पर अत्यधिक बाल हों तो वह पुरुष का शरीर होगा। केवल कक्षा[1] और विटप[2] प्रदेशों पर बाल होने की अवस्था में शरीर किसी स्त्री का होगा।

(घ) स्त्रियों में अस्थियाँ—(I) छोटी, पतली और हल्की होती हैं। (II) श्रोणिचक्र[3]–छिछला और चौड़ा होता है। (III) जघनकपाल[4] फैला हुआ होता है। (II) श्रोणिचक्र के पूर्व की सन्धि[5] छोटी और (V) त्रिकास्थि[6]—कुछ कम वक्र होती है।

(ङ) स्त्रियों में पर्शुकायें अधिक वक्र और तिरछी तथा वक्षास्थि[7] (उरःफलक) छोटी होती है।

(च) स्त्रियों में सिर और मुख की अस्थियाँ भी छोटी होती हैं।

(४) आयु

निम्नलिखित अवस्थाओं में आयु के ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है:—

(क) व्यक्ति की पहचान (ख) नौकरी (ग) व्याह (घ) धन सम्बन्धी मामले (ङ) अपराध के मामले (च) बालिग़पन[8]

(क) व्यक्ति की पहचानः—

मृत और जीवित दोनों अवस्थाओं में व्यक्ति की पहचान करने के लिये आयु का ज्ञान होना परमावश्यक है। जीवितावस्था में–जब कोई व्यक्ति कई वर्ष के बाद सहसा सामने आता है और धन आदि के सम्बन्ध में अपने को किसी का उत्तराधिकारी व[illegible]का परीक्षण किया जाना चाहिये। मृतावस्था [illegible]द कोई शत्रु किसी मृत शरीर को लाक[illegible] ऐसा……ऐसा किया था तो उस [illegible] करने में सहायता [illegible] ी या मृत

[illegible] ity

शरीर की आयु खोये हुये व्यक्ति के से नहीं मिलती है तो इसका स्पष्टतया यही मतलब है कि न तो सहसा सामने आने वाला व्यक्ति ही और न मृत शरीर ही-खोया हुआ वही व्यक्ति है ।

(ख) नौकरीः—भिन्न भिन्न विभागों में नौकरी के लिये आयु की एक निश्चित सीमा निर्धारित होती है, उदाहरणार्थः—

(I) १२ वर्ष की आयु से कम के बालक कारखानों में काम नहीं कर सकते ।

(II) १२ से १४ वर्ष तक की आयु के बालक किसी विशेष शर्त पर नौकर रक्खे जा सकते हैं ।

(III) सरकारी नौकरियों के लिये २५ वर्ष की आयु से ऊपर के व्यक्ति ही चुने जाते हैं ।

(ग) अपराध सम्बन्धी मामलेः—अपराध सम्बन्धी निम्न अवस्थाओं में आयु के ज्ञान की आवश्यकता पड़ती हैः—

(I) बलात्कार
(II) शिशु हत्या
(III) भगा ले जाना (Kidnapping)
(IV) दण्ड (Judicial punishment)
(V) अपराध युक्त गर्भपात (Criminal abortion)
(VI) बालकों के दो[illegible]

(घ) धन सम्बन[illegible]ों में निम्निलिखित अवस्थाओं में इसकी आ[illegible]

(I) वसीयत [illegible] इच्छा से अपने धन को मरते स[illegible]

स्वेच्छ[illegible]

([illegible]

([illegible]

(3) उसे उसके इस कृत्य की प्रकृति एवम् इसके परिणाम भली प्रकार मालूम हों।

(4) कम से कम दो व्यक्तियों के सामने वह उस पर हस्ताक्षर करे और ये गवाह भी उस पर हस्ताक्षर कर दें।

(II) सम्पत्ति का प्रबन्धः—जब कोई नाबालिग़ अपने पैतृक सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होता है तो बालिग़ होने की अवस्था तक उसकी सम्पत्ति की देख-रेख किसी संरक्षक के द्वारा होती है जो कि ज़िले के न्यायाधीश के द्वारा नियुक्त किया जाता है

(ङ) ब्याहः—सरकारी नियमानुसार जो बालक १८ वर्ष की आयु से कम हो अथवा जो बालिका १४ वर्ष की आयु से कम हो—उनका परस्पर ब्याह-सम्बन्ध नहीं स्थापित किया जा सकता किन्तु जो व्यक्ति इस प्रकार का ब्याह सम्पन्न करते हैं या उसमें सहायता प्रदान करते हैं, उन्हे दण्ड दिया जा सकता है।

(च) बालिग़पनः—साधारणतया हिन्दुस्थान में १८ वर्ष की आयु पूर्ण करने के बाद बालिग़ समझा जाता है

आयु निर्णय करने के लिये जीवन काल की भिन्न भिन्न अवस्थायें

(१) भ्रूण[1]. (२) शिशु[2] (३) बालक[3] (४) युवा[4]

(१) भ्रूण की आयु

जीवित या मृत दोनों अवस्थाओं में भ्रूणहत्या एवम् अपराधयुक्त गर्भ-पात के मामलों में भ्रूण की [illegible] की आवश्यकता पड़ती है।

छठवें महीने के [illegible]

(I) [illegible] के स[illegible]होती है।

(II) [illegible]

[illegible]

होते, अतएव [illegible]

[illegible] के नीचे [illegible]

[illegible] मुंजाका [illegible] होता है जो [illegible]

इस [illegible] एक वर्ग (Species [illegible] शरीर पर फैल [illegible]

(VI) भ्रू और पक्ष्मः—बनने लगते हैं।

(VII) वृषणः—वृक्क के समीप स्थित होता है।

(VIII) बृहत मस्तिष्क के गोलार्धः—अनुमस्तिष्क को ढके रहते

सातवें महीनें के अन्त में:—

(I) लम्बाईः—१५ इञ्च तक हो जाती है।

(II) भारः—४ पौंड होता है।

(III) त्वचाः—में सलवटें कम पड़ जाती हैं।

(IV) आँखेः—खुली हुई होती हैं और उसके ऊपर की झिल्ली नष्ट होने लगती है।

(V) नखः—अच्छी तरह निकल आते हैं लेकिन अङ्गुलियों के सिरे तक नहीं पहुँच पाते।*

(VI) वृषणः—नीचे उदरगुहा में खसकने लगते हैं।

आठवें महीने के अन्त में:—

(I) लम्बाईः—१६ से १७ इञ्च तक होती है।

(II) भारः—लगभग ५ पौंड होता है।

(III) नखः—अङ्गुलियों के सिरे तक करीब करीब पहुँच जाते हैं

(IV) वृषणः—वंक्षण सुरंगा[1] में पहुँच जाता है।

पूर्ण विकसित भ्रूणः—

(I) लम्बाईः—२१ से २२ इञ्च तक होती है।

(II) भारः—५½ से [illegible]

(III) कपालः—के [illegible]

(IV) नखः—अङ्गु [illegible]

(V) वृषणः—वृ [illegible]

व्यवहार [illegible]

तक—उसे [illegible]

1. In [illegible]

आयु का निश्चय किया जाता है:—

प्रथम दिवस में—नाभि नाड़ी का अवशेष संकुचित एवम् शुष्क होने लगता है और यह परिवर्तन ४ या ५ दिन तक होता रहता है।

पाँचवें या छठे दिन—नाभि के साथ सम्बन्धित नाड़ी का हिस्सा नाभि से पृथक हो जाता है और नाभि की सतह व्रण युक्त हो जाती है।

दसवें से बारहवें दिन तक—व्रणित सतह का रोपण होकर त्वक का सामान्य वर्ण हो जाता है।

हिन्दुस्थान में उत्पत्ति के समय शिशु का भार प्रायः ५½ पौंड होता है और प्रथम सप्ताह में उसका भार कुछ कम हो जाता है, तदनन्तर प्रति सप्ताह दो छटाँक भार बढ़ता जाता है और छठे महीने तक ऐसा ही होता रहता है।

(३) बालक की आयु

व्यवहारायुर्वेद की दृष्टि से उत्पत्ति के सोलहवें दिन से लेकर युवा होने तक के बीच के समय में उसे बालक कहते हैं। इस सम्बन्ध में अपनी ठीक सम्मति देने के लिये निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है:—

(क) दंत विवरण
(ख) ऊँचाई और भार
(ग) अस्थि विकास केन्द्र[1]
(घ) अन्य चिह्न

दाँतों द्वारा आय [illegible] केवल २४ या २५ वर्ष की अवस्था त[illegible] स्‍यु के स[illegible]न प्रमाण के द्वारा ही इसका निर्णय [illegible] परीक्ष [illegible]
[illegible] य के सा[illegible] [illegible]कार [illegible]
होते, अतएव [illegible]

[illegible] के नीचे [illegible] में
पेकि क[illegible] (मुंजाक्षा [illegible] के होता है जो [illegible]) के [illegible]
इस [illegible] एक वर्ग (Species [illegible] रीर पर फैल [illegible] ता है।

(१) अस्थायी दाँतः—इन्हें दूध के दाँत भी कहते हैं । बालकों में प्रायः ६–७ मास के बीच में पहला दूध का दाँत निकलता है । साधारणतया २ वर्ष के बालक में २० अस्थायी दाँत होते हैं ।

यदि बालक दुर्बल हो और उसे अस्थियों के रोग जैसे अस्थिवक्रता आदि हों तो प्रायः दाँत देर में निकलते हैं । सहज उपदंश (Congenital syphilis) से पीड़ित बालकों में या तो दाँत समय से पूर्व ही निकल आते हैं या फिर उत्पत्ति के समय से ही उनके दाँत होते हैं ।

स्थायी और अस्थायी दाँतों में भेद

स्थायी	अस्थायी
(१) आकार में बड़े और लम्बे होते हैं ।	(१) आकार में छोटे होते हैं ।
(२) प्रायः आगे के दाँत कुछ न कुछ आगे की ओर झुके होते हैं ।	(२) आगे के दाँत लम्ब रूप में होते हैं ।
(३) दंत शिखरों (Crowns) का वर्ण हाथी के दाँत की तरह श्वेत (Ivory-white) होता है ।	(३) दंत शिखरों का वर्ण चीनी मिट्टी के बर्तन की तरह श्वेत (China-white) होता है ।
(४) दंत शिखर [illegible] (Fang) से मिलने [illegible] कोई उभार नहीं होता [illegible]	[illegible] शिखर के दंत मूल से [illegible] उभार (Ri- [illegible]

३१ पेज की [illegible]

2. La[illegible]

4. Pr[illegible]

5. M[illegible]

दाँतों के निकलने का समय

दाँतों के नाम	संख्या	अस्थायी दाँत	स्थायी दाँत
नीचे के अंतः कर्तनक[1]	२	६ से ८ मास तक	७ से ८ वर्ष तक
ऊपर के अंतः कर्तनक[1]	२	८ से १० मास तक	
नीचे के बाह्य कर्तनक[2]	२	१० से १२ मास तक	८ से ९ वर्ष तक
ऊपर के बाह्य कर्तनक[2]	२	७ से ९ मास तक	
भेदक[3]	४	१७ से १८ मास तक	११ से १२ वर्ष तक
अगले अग्रचर्वणक[4]	४	अनुपस्थित	९ से १० वर्ष तक
पिछले अग्रचर्वणक[4]	४	अनुपस्थित	१० से १२ वर्ष तक
प्रथम चर्वणक[5]	४	१२ से १४ मास तक	६ से ७ वर्ष तक
द्वितीय चर्वणक[5]	४	२२ से २४ मास तक	१२ से १४ वर्ष तक
तृतीय[6] चर्वणक[5]	४	अनुपस्थित	१७ से २५ वर्ष तक

(ख) ऊँचाई और भार (उत्पत्ति काल से बाल्यावस्था तक)

आयु	सामान्य भार	ऊँचाई
१ दिन	६·४ पौंड	१९ से २० इञ्च तक
१ मास	७·४ पौंड	
२ मास	८·४ पौंड	
३ मास	९·६ पौंड	२१ से २२ इञ्च तक
४ मास	१०·[illegible] पौंड	
५ मास	[illegible]	
६ मास	[illegible]	[illegible] इञ्च
७ मास	[illegible]	
८ मास	[illegible]	
९ मास	[illegible]	[illegible] (लगभग)
[illegible]	[illegible]	[illegible] इञ्च तक

होते, अतएव [illegible]

[illegible] के नीचे [illegible]

[illegible] मुँजाक्षा [illegible] के होते हैं जो [illegible]

इस [illegible] एक वर्ग (Species [illegible] शरीर पर फैल [illegible]

ऊँचाई ज्ञात करने की सामान्य विधिः—

(१) ऊर्वास्थि (Femur) की लम्बाई × ४ + ४ इञ्च

(२) प्रगंडास्थि (Humerus) की लम्बाई × ६ + ६ इञ्च

(३) १ भुजा (Arm) की लम्बाई × २ + १३½ इञ्च

(४) युवावस्था की आयु का निर्णय

युवावस्था में आयु का निर्णय निम्न बातों को देखकर किया जा सकता हैः—

(१) ऊंचाई और भारः—पूर्वोक्त तालिका से सहायता लेनी चाहिये।

(२) दंत विवरणः—२५ वर्ष तक की आयु का सरलता से निर्णय किया जा सकता है जैसा कि तालिका में दिया है। तदुपरान्त अनुमान से पता लगाया जा सकता है।

(३) केश वृद्धिः—पुरुषों में १५ से १८ वर्ष की आयु के बीच में दाढ़ी और मूंछ निकलने लगती है। प्रायः १३-१४ वर्ष की अवस्था में कक्षा और विटप प्रदेशों में बाल निकलने लगते हैं।

(४) स्त्रीः—१२ या १३ वर्ष की बालिकाओं के स्तन बढ़ने लगते हैं और जैसे जैसे आयु बढ़ती जाती है—वैसे वैसे ये अधिक फूलते जाते हैं। इसी अवस्था में नितम्ब-प्रदेश चौड़ा होने लगता है।

(५) गुप्तेन्द्रियः—पुरुषों में शिश्न बढ़ता जाता है और उसमें दृढ़ता आती जाती है। स्त्रियों में भगोष्ठ फूलजाते हैं और स्पष्ट हो जाते हैं।

(६) मासिक-धर्मः—[illegible] में प्रायः १२ या १३ वर्ष की अवस्था में मासिक [illegible]

(७) स्वर [illegible] आयु के स [illegible] पुरुषों का स्वर गम्भीर होने लगता है [illegible]

[illegible] होते, अतएव [illegible] के नीचे [illegible]

[illegible] सुजाक्रा [illegible] होते हैं जो [illegible] जीविता-

इस [illegible] एक वर्ग (Species [illegible] रीर पर फैल [illegible] ता [illegible]

वस्था में बहुत कुछ सहायता मिलती है किन्तु मृतावस्था में इससे कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता ।

(६) आकृति[1]

व्यक्ति स्थूल है या कृश है, उसकी पेशियों का उपचय किस प्रकार का है इत्यादि बातें देखकर जीवितावस्था में आकृति भी व्यक्तित्व निर्णय करने में यथेच्छ सहायक होती है ।

(७) चलने का ढंग[2]

प्रायः प्रत्येक व्यक्ति का चलने का एक विशेष ढङ्ग होता है जिससे जीवितावस्था में व्यक्ति की पहचान की जा सकती है ।

(८) स्वभाव और आदतें[3]

प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव और उसकी आदतें भिन्न भिन्न होती हैं जिससे व्यक्ति की पहचान करने में सहायता मिल सकती है ।

(९) केश

इसमें सिर आदि के बाल देखे जाते हैं । कुछ व्यक्तियों के बाल स्वभाव से ही काले होते हैं और कुछ के भूरे रङ्ग के होते हैं । इसी प्रकार वृद्धावस्था में बाल श्वेत वर्ण के हो जाते हैं । इन सब बातों को जानने की आवश्यकता है और इससे व्यक्तित्व निर्णय में सहायता मिलती है ।

[illegible]

शरीर के किस स्थ[illegible] प्रकार का है ? यह देखना चाहिये । [illegible] यथेच्छ सहायता मि[illegible] हो जाता है [illegible]

1. [illegible]
3. [illegible]

(११). पद-चिह्न[1]

व्यक्तित्व निर्णय में इससे कोई विशेष सहायता नहीं मिलती है, केवल घटना-स्थल पर पैरों के चिह्न कुछ सहायता कर सकते हैं—एतदर्थ उसकी आकृति लघु या दीर्घ, आकार—साधारण या चपटा और ढट्टों के चिह्न आदि को देखना चाहिये।

(१२) शारीरिक विकृतियां[2]

इसके द्वारा व्यक्ति की पहचान विशेष रूप से की जाती है। हाथ पैर की अंगुलियों का जाल युक्त होना, किसी हाथ या पैर में छै अंगुलियों का होना, तिल, मसा, ओष्ठ पतले या मोटे, जन्म से ही किसी प्रकार के चिह्न अथवा अन्य विकृतियों का होना-आदि बातें इसमें देखनी चाहियें।

(१३) व्यवसायिक चिह्न[3]

भिन्न भिन्न प्रकार के व्यवसाय करने वाले व्यक्तियों में कुछ विशेष चिह्न मिलते हैं जिनके देखने से व्यक्ति की पहचान की जा सकती है।

(१४) दाग[4]

व्रण, गोली लगने, झुलसने या जलने आदि के कारण शरीर पर कई प्रकार के दाग पड़ जाते हैं जिससे व्यक्तित्व निर्णय में सहायता मिलती है।

(१५) हस्त-लिपि[5]

प्रत्येक व्यक्ति की लिखावट [illegible] कुछ लोग अन्य व्यक्तियों की ही भाँति अक्षरादि [illegible] हैं और उन्हें इस बात का अभ्यास हो [illegible] ध्यान देने की आव- [illegible]) के अतिरिक्त अन्य होने लगता [illegible] का इससे कोई [illegible]

[illegible] marks

(१६) वस्त्र और आभूषण[1]

व्यक्ति की सामाजिक अवस्था और उसकी पहचान वस्त्रों और आभूषणों द्वारा सरलता से की जा सकती है।

(१७) व्याख्यान और स्वर सम्बन्धी विशेषतायें[2]

इसके द्वारा जीवितावस्था में व्यक्ति की पहचान की जाती है।

(१८) बुद्धि, स्मृति एवम् शिक्षा सम्बन्धी ज्ञान[3]

जीवितावस्था में व्यक्तिकी पहचान के लिये इसका जानना बहुत आवश्यक है।

(१९) दाँत

दाँत के सम्बन्ध में निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिये:—

(क) कितने और कौन से दाँत टूटे हैं।

(ख) कृत्रिम दाँत।

(ग) दाँत में कील जड़ी होना।

(घ) सोने चाँदी के खोल चढ़े होना।

(ङ) हिलते हुये दांतों का तार आदि से बँधा होना—आदि।

(२०) आँख

निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिये:—

(क) भूरी हैं या काली हैं।

(ख) आँखे वि[illegible] नहीं हैं।

(ग) बहुत [illegible]

(घ) अन्द[illegible] ा।

(ङ) दृष्टि[illegible]

(च) [illegible]

---

1. C[illegible]

3. [illegible]

(२१) कौमार्य अथवा पूर्व सन्तानोत्पत्ति के चिह्न[1]

इसके द्वारा स्त्रियों में व्यक्तित्व निर्णय सरलता से हो सकता है। (विस्तार पूर्वक आगे देखिये)

(२२) व्यक्ति के चित्र[2]

यदि चित्र हाल का ही खींचा हुआ है तो व्यक्ति की पहचान जीवित और मृत दोनों अवस्थाओं में सरलता से हो सकती है। यदि चित्र हाल का नहीं है तो उस चित्र में प्राकृतिक एवम् अप्राकृतिक विशेषताओं को देखकर उसकी पहचान की जा सकती है।

(२३) व्यक्ति की पहचान के लिये प्रकाश[3] की आवश्यकता

जिस व्यक्ति को अपराधी ठहराया जा रहा है—उसके अपराध करने के समय पर उसको पहचानने के लिये पर्याप्त प्रकाश था या नहीं–यह प्रश्न उठता है, एतदर्थ निम्न बातें ध्यान देने योग्य हैं:—

(क) कृत्रिम प्रकाशः—लालटैन, चिराग, विद्युत आदि में जिसका प्रकाश होगा, उसी के ऊपर व्यक्ति के मुखाकृति को ठीक से पहचानना या न पहचानना निर्भर है।

(ख) चन्द्र प्रकाशः—चन्द्रमा की रोशनी में १५ या २० गज़ से अधिक दूरी से व्यक्ति के मुखाकृति को ठीक ठीक पहचाना ही नहीं जा सकता।

(ग) आकाशीय विद्युत-प्रकाश [illegible] ठीक से पहचानी जा सकती है।

(घ) चमकः—[illegible] दूरी पर नहीं है—तो अग्नि, गाड़ से [illegible] के स[illegible] ति पहचानी जा सकती है। होने लगता है [illegible]

[illegible] होते, अतएव [illegible] के नीचे [illegible] में [illegible] मेंकि [illegible] (मुँजाक्षा [illegible] के होते हैं जो अ[illegible]) [illegible]

इस [illegible] एक वर्ग (Species [illegible] शरीर पर फैल [illegible] ता है[illegible]

तीसरा अध्याय

मृत्यूत्तर परीक्षा[1]

कोई भी अधिकृत चिकित्सक मृत्यूत्तर परीक्षा करने से इनकार नहीं कर सकता चाहे शव एक दम सड़ ही क्यों न गयी हो तथापि रोहणी, मसूरिका आदि रोगों से पीड़ित होकर मृत शरीर के सम्बन्ध में, वह इनकार भी कर सकता है।

जब कोई शव मेजिस्ट्रेट या पुलिस के द्वारा किसी सिविल सार्जन अथवा अन्य किसी अधिकृत चिकित्सक के पास मृत्यूत्तर परीक्षा के लिये भेजी जाती है तो उसके साथ पुलिस के किसी अफ़सर अथवा कानेस्टेबिल का पहरा अवश्य होना चाहिये।

परीक्षा करने से पूर्व निम्नलिखित शर्तें अवश्य पूरी की जानी चाहियें:—

(१) **चालान:**—यह एक प्रार्थना-पत्र होता है जिसे पुलिस अफ़सर सिविल सर्जन को मृत्यूत्तर परीक्षा करने के लिये लिखता है। इसमें मृत व्यक्ति का नाम, आयु, लिङ्ग और धर्म, मृत्यु का सम्भव कारण तथा मृत्यूत्तर परीक्षा कराने का तात्पर्य लिखा होना चाहिये।

(२) **प्रारम्भिक जाँच करने की रिपोर्ट:**[2]—यह वह रिपोर्ट है जिसमें उसके सम्बन्ध में विस्तृत इतिहास और जिन परिस्थितियों में शरीर पाया गया—लिखा होता है।

(३) **पहचान**—शव की पहचान: पहरा देने वाले कानेस्टेबिल, चौकीदार या अन्य किसी पुलिस [illegible] हो तो मृत व्यक्ति के किसी निकट सम्बन्धी द्वा[illegible] [illegible]नी चाहिये।

चिकित्सक को श[illegible]
स्थान के अतिरिक्त अ[illegible]
करने के लिये [illegible]

अप्राकृ[illegible]

1. Pos[illegible]

के साथ करना चाहिये तथा मृत्यु का कारण निर्णय करने के लिये भली प्रकार छान-बीन करना चाहिये।

इसमें दो बातें सम्मिलित हैं:—

[१] स्थानीय परीक्षण और [२] मृतशरीर की परीक्षा।

[१] स्थानीय परीक्षणः—यह प्रायः खोज करने वाले पुलिस अफ़सर द्वारा की जाती है। इसमें निम्नलिखित बातें सम्मिलित हैं:—

(क) घटना का इतिहासः—मृत्यु के समय की परिस्थितियों और मृत्यु के कारण को यथा सम्भव निर्णय करने के लिये खोज करने वाले पुलिस अफ़सर को मृत व्यक्ति के सम्बन्धियों एवम् पड़ोसियों के बयान लिखना चाहिये।

(ख) मृत शरीर का निरीक्षणः—इसमें निम्न बातें देखना चाहियेः—

(१) शरीर की स्थिति।

(२) शरीर का तापक्रम।

(३) मृत्यूत्तर संकोच की उपस्थिति या अनुपस्थिति।

(४) शरीर पर आघात और उनकी स्थिति।

(५) बंधन-चिन्हः—यदि कोई हो।

(ग) समीपस्थ वस्तुओं की दशाः—

(१) रक्त या वमन के धब्बे।

(२) विष का कोई पात्र—यदि हो।

(३) कोई शस्त्र जिससे आघात किया गया हो।

(४) आत्महत्या की सम्भावना:— [illegible] गलपाश में।

(५) लड़ाई के [illegible]

[illegible] मृत्यु के स [illegible] घटना-स्थल पर पहुँचने [illegible] द्वारा जो प्रारम्भिक [illegible] परीक्षण में सहायता [illegible] है।

- अग्नि, रगड़ से [illegible]

होने लगता है [illegible]

होते, अतएव [illegible] के नीचे [illegible] में [illegible]

[illegible] भुजाका [illegible] होती है जो [illegible] खित बातें

इस [illegible] एक वर्ग (Species [illegible] शरीर पर फैल [illegible]

(क) प्रारम्भिक व्याख्याः—

परीक्षा करने से पूर्व रिपोर्ट में निम्नलिखित बातें लिखकर साथ में लगा देना चाहिये।

(I) मृत व्यक्ति का नाम, आयु, लिङ्ग, धर्म और पता।

(II) पहरा देने वाले पुलिस कानेस्टेबिल का नाम और नम्बर तथा पहचान बतलाने वाले मृतव्यक्तिके सम्बन्धी का नाम।

(III) थाने का नाम जहां से मृत शरीर भेजा गया है।

(ख) बाह्य परीक्षाः—

(I) पहचान के चिह्नः—गुदना, विकृति, तिल, घाव के चिह्न आदि।

(II) शारीरिक अवस्था—स्थूल, कृश, सड़ा हुआ, पाण्डु वर्ण आदि।

(III) शरीर पर रक्त या वमन के धब्बे।

(IV) मृत्यूत्तर संकोच[1], मृत्यूत्तर अधस्तल वैवर्ण्य[2] या सड़न के चिह्न।

(V) वस्त्रों के कटाव, वे शरीर पर ठीक होते हैं या नहीं।

(VI) आघात[3] यदि शरीर पर हैंः—

(क) संख्याः—एक, दो या इससे अधिक।

(ख) प्रकृतिः—पिचन, भेदन, उधड़न, गोली के व्रण, जलना, झुलसना आदि।

(ग) आकृतिः—प्रत्येक आघात की लम्बाई, चौड़ाई और गहराई।

(घ) दिशाः—प्रत्येक आघात की।

(ङ) स्थितिः—प्रत्ये[illegible] पर है।

(च) शस्त्र जिससे [illegible] या टेढ़ा आदि।

(छ) आघातः—[illegible]

(ग) आभ्यन्तरिक [illegible]

बाह्य [illegible] आभ्यन्तरिक अङ्गों एवम् रचनाओं [illegible] हिक रूप में पाये [illegible]

[illegible] कभी अधिक समय भी ल[illegible]

1, Rigor m[illegible]

(III) मूत्र।

(IV) रासायनिक संरक्षक का नमूना।

(V) आमाशय का धोवनः—बिना रासायनिक संरक्षक मिलाये।

इसके अतिरिक्त विशेष अवस्थाओं में निम्नलिखित वस्तुओं की भी आवश्यकया पड़ती हैः—

(I) हृदय और मस्तिष्क का एक भागः—सन्देह युक्त कुचला विष सेवन में।

(II) क्षुद्रान्त का ऊपरी भागः—सन्देहात्मक वानस्पतिक विष सेवन में।

(III) क्षेपक कोष्ठों का रक्तः—कार्बन मानो आक्साइड (Carbon mono oxide) और क्लोरोफार्म (Chloroform) विष सेवन में।

(३) **शिरः**—निम्न बातें देखना चाहियेः—

(I) कपाल की दशा।

(II) सीवनियों का पृथक होना।

(III) कपाल का अस्थिभग्नः—विशेषतया उसके आधार पर।

(IV) मस्तिष्क के अन्दर और बाहर की ओर रक्ताधिक्य।

(V) मस्तिष्कीय धमनियों की दशा।

(४) **ग्रीवाः**—निम्न बातें देखना चाहियेः—

(I) बन्धन या अन्य चिह्नः—जो गलपाश, गला-घोटना आदि को बतलाते हों।

(II) चिह्नों के नी[illegible] रक्ताधिक्य अथवा सतह पर खरोचन आदि के चिह्न।

(III) कंठकास्थि [illegible] स्थि भग्न।

(IV) आघा[illegible]

(५) **सुषुम्न**[illegible]

इसमें य[illegible] स्थान-च्युत हो, तो लिख[illegible]

रक्त से रञ्जित वस्त्र की परीक्षा[1]

आघात सम्बन्धी मामलों में जब आक्रमणकारी किसी व्यक्ति पर चाकू, छुरी, तलवार आदि शस्त्रों से आक्रमण करता है तो शरीर की धमनियों, शिराओं आदि के कटने से रक्तस्राव होकर आक्रमणकारी और घायल व्यक्ति के वस्त्रों पर, शस्त्र, दीवार, खिड़की, दरवाज़ा, शय्या, बिस्तर, ईंट, पत्थर, भूमि आदि एवम् समीपस्थ अन्य वस्तुओं:—पत्र, तृण, लता आदि पर रक्त गिरता है और उन पर रक्त के धब्बे पड़ जाते हैं।

इन मामलों में धब्बों के विषय में दो प्रश्न उठते हैं जिनका निर्णय करना होता है:—

(१) क्या यह धब्बा रक्त का है ?

(२) यदि धब्बा रक्त का ही है, तो क्या यह मानवीय रक्त का है ?

इन दोनों बातों का निर्णय करना सरल नहीं है। इसीलिये इसका विश्लेषण करने के हेतु इनको रासायनिक परीक्षक के पास भेजने का नियम है।

इसकी परीक्षा करने की निम्नलिखित विधियाँ हैं:—

(१) भौतिक परीक्षण।

(२) रासायनिक परीक्षण।

(३) सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा परीक्षण।

(४) परीक्षा की अन्य विधियां।

(१) भौतिक परीक्षण:—

यदि रक्त का धब्बा अभी हाल ही [illegible] केवल दर्शन मात्र से ही इसका सरलता से ज्ञान हो सकता है [illegible] प्रकार के धब्बों को पड़े हुये बहुत समय बीत जाता है, तब क[illegible]यु के स[illegible] रक्त का धब्बा किसी पदार्थ पर किस समय [illegible], यह [illegible] [illegible]गुण चिकित्सक के लिये भी कठिन है। [illegible]

रक्त के धब्[illegible] के नीचे [illegible]

(१ [illegible] मुंजाका [illegible] के होते हैं जो [illegible]) [illegible]र्ण का होता है

[1] [illegible] एक वर्ग (Species [illegible] रीर पर फैल [illegible]बा [illegible]

जो धीरे धीरे रक्त कपिल वर्ण का हो जाता है—इस परिवर्तन में प्रायः २४ घंटे लगते हैं और इसका कारण रक्त की हेमोग्लोबिन (Haemoglobin) का मिथेइमोग्लोबिन (Methaemoglobin) में परिवर्तित हो जाना है।

(२) गंदे या गहरे रंग के वस्त्रों पर पड़े हुये रक्त के धब्बे किसी अंधेरी कोठरी में लेजाकर कृत्रिम प्रकाश के सामने रखकर देखने पर गहरे लाल या काले रंग के दिखाई पड़ते हैं।

(३) रुई, रेशम, फलालेन आदि मृदु और हल्के वस्त्रों पर रक्त के धब्बे पड़ने से वे कड़े पड़ जाते हैं और उनका स्पर्श श्वेतसार की भांति होता है।

(४) लौह, स्फटिक आदि कठोर एवम् ठोस पदार्थों पर पड़ा हुआ रक्त का नवीन धब्बा चमकदार, गहरे रंग का एवम् मृदु होता है। यदि धब्बा पुराना है, तो वह कई स्थान से चटका हुआ होता है।

(५) नवीन रक्त के धब्बे की हेमोग्लोबिन (Haemoglobin) पुराने की अपेक्षा जल में अधिक घुलनशील होती है।

(६) धमनी का रक्त यदि वस्त्र आदि पर हाल ही में गिर पड़ा है तो वह चमकदार रक्तवर्ण का होगा और एक दीर्घ क्षेत्र में नाशपाती के आकार की तरह चिन्ह पाये जायेंगे।

(७) आर्तव शोणित और सामान्य रक्त में भेद जानना आवश्यक है, अतएव उनका भेद नीचे दिया जाता हैः—

आर्तव रक्त	साधारण रक्त
(१) वर्णः—गहरा लाल होता है।	(१) वर्ण चमकदार लाल होता हैः।
(२) प्रतिक्रियाः—अ[illegible] कम क्षारीय होती है।	(२) प्रतिक्रियाः—सर्वदा क्षारीय होती है।
(३) जमता नहीं[illegible]	(३) रक्तनलिकाओं से बाहर आकर रक्त [illegible]म जाता है।
(४) अति [illegible]	(४) [illegible] होता है।
(५) गंध[illegible]	[illegible] नहीं होती।

(६) इ[illegible] [illegible]हिक रूप में पाये ज[illegible] बिल-
के श्लैष्मिक स्त[illegible] [illegible]भी अधिक समय भी ल[illegible]

व्यवहारायुर्वेद की दृष्टि से धब्बों के भौतिक रूप का कोई विशेष महत्व नहीं है क्योंकि कई प्रकार के कृत्रिम रंग, वनस्पितियों के रस, ताम्बूल-पत्र को चवाकर उसकी पीक थूकने आदि के कारण इस प्रकार का भ्रम हो सकता है। अतएव परीक्षा की अन्य विधियों से इसका निर्णय करना आवश्यक है।

(२) रासायनिक परीक्षणः—

(I) Guaiacum test:—

एक सफेद फिल्टर पेपर को जल में भिगोकर रक्त के ऊपर रखकर धीरे धीरे फिल्टर पेपर को तब तक मलना चाहिये जब तक कि रक्त का धब्बा उस पर न आ जाये। फिर पेपर पर नवीन निर्मित टिंचर ग्वायकम (Tincture Guaiacum) की १ या २ बूँद डालो। इस पेपर के ऊपर रक्त के धब्बे का वर्ण लाल हो जायेगा। अब इस पर तारपीन का तेल, ओज़ेनिक ईथर (Ozenic ether) अथवा जल मिश्रित हाइड्रोजन परआक्साइड (Hydrogen peroxide) की १ वा २ बूँद डालो—उसका वर्ण तत्काल नीला हो जायेगा। यदि रक्त का धब्बा बहुत पुराना न हो तो रक्त के १/५००० या १/६००० शक्ति के घोल में इसकी परीक्षा की जा सकती है। किन्तु यह भी स्मरण रहे कि यह रक्त की बिलकुल ठीक ही परीक्षा नहीं है क्योंकि लालारस, दुग्ध, स्वेद, पित्त, सैन्धव लवण आदि के साथ भी यही प्रतिक्रिया होती है।

(II) बेन्ज़ीडाइन परीक्षा (Benzidine test):—

किसी रक्त से रंजित वस्त्र पर बेन्जीडा[illegible]ेजेन्ट (Benzidine reagent) और Hydrogen peroxi[illegible] [illegible]तिशत का घोल—दोनों की एक एक या दो दो बूँद डालने पर तत्का[illegible]यु के स[illegible]ार नीला वर्ण हो जायगा। १/३०००० शक्ति के घोल में इसकी परीक्[illegible] है। किन्तु यही प्रतिक्रिया थूक और पूय के साथ भी होती है[illegible]

[illegible]ार[illegible]

Benzidine [illegible] के नीचे [illegible] में

विशुद्ध [illegible] [illegible]गुंजाका [illegible] के होते है जो [illegible]) व[illegible] [illegible]cid में Benzidine [illegible]का एक वर्ग (Species [illegible] रीर पर फैल [illegible]वा [illegible] में, ६ प्रतिशत

का Hydrogen peroxide २ सी० सी० मिलाओ—यही Benzidine reagent है ।

(III) Kastle meyer test:—

इसमें २ reagents की आवश्यकता पड़ती है:—

(क) Hydrogen peroxide—२० प्रतिशत की शक्ति वाला ।

(ख) Phenolophthalein reagent:—

Re/	Phenolophthalein	2 grammes,
	Potassium Hydrate	20 grammes.
	Distilled water ad	100 c. c.

रक्त रंजित वस्त्र के धब्बे के घोल में १ या २ बूँद (क) और ८ या १० बूँद (ख) Reagents के मिलाने पर पोटाशियम परमागनेट की भांति गहरा रंग हो जायेगा । अब इसमें यशद चूर्ण १० से ३० ग्रेन तक थोड़ा थोड़ा करके डालो जब तक कि घोल वर्णहीन न हो जाय। रक्त के ८००००००० शक्ति के घोल में यह परीक्षा सफलता के साथ की जा सकती है ।

(Iv) हेमिन क्रिस्टल टेस्ट (Haemin crystal test):—

रक्त से [illegible]जित वस्त्रों के सूत्रों को एक कांच की स्लाइड (Slide) में रक्खो और इसमें सैन्धव लवण के १ या २ कण तथा Glacial acetic acid की कुछ बूँदें डालकर धीरे धीरे मन्द आँच में गरम करके सुखा लो । अब इसे उच्च शक्ति के सूक्ष्मदर्शक यंत्र के द्वारा देखने पर समानान्तर चतुर्भुजाकार के गहरे भूरे रंग के अथवा पीत[illegible]ला के Haemin के स्फटिक दिखाई देंगे, यदि ये धब्बे रक्त ही के होंगे[illegible]

(V) Haemo-c[illegible] (हेमोक्रोमोजेन) Crystal test:—

रक्त रंजित वस्त्र [illegible] एक कांच की Slide पर रखकर, उसमें Takayama sol[illegible] डालकर—उसे ठण्डा होने दो, फिर इसके ऊपर एक[illegible]से सूक्ष्म दर्शक यंत्र से देखो—[illegible]हक रूप में पाये जा[illegible]। स्फटिक ४ या ५ मिनट म[illegible] कभी अधिक समय भी ल[illegible]जाता है ।

Takayama solution:—

Re/ Sodium Hydroxide 10 % 3 c. c.
Pyridine 3 c. c.
Dextrose (जल का संतृप्त विलयत) 3 c. c.
Distilled water 7 c. c.

सबको मिलाकर शीशी में रख लो।

(३) सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा परीक्षाः—

एक घड़ी के शीशे में रक्तरंजित वस्त्र के टुकड़ों को वाइबर्ट्स फ्ल्यूड (Vibert's fluid) में घोलो और इसे ३० मिनट तक रक्खा रहने दो। तदनन्तर वस्त्र के टुकड़ों को निचोड़ दो और इस प्रकार से प्राप्त द्रव की १ बूंद कांच की Slide पर रक्खो और सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा इसको देखो—यदि धब्बा मानवीय रक्त का होगा तो इसमें गोलाकार द्वि-नतोदर, केन्द्रहीन, कपिल या पीतरक्त वर्ण के रक्ताणुओं की टिकियाँ दिखाई देंगी। ऊँट के रक्त में ये अण्डाकार और द्वि-उन्नतोदर तथा रेंगने वाले पशुओं, चिड़ियों एवम् मछलियों में—अण्डाकार, केन्द्र युक्त एवम् द्वि-उन्नतोदर होते हैं।

यदि रक्त के धब्बों की आयु २४ घण्टे से कम है, तब तो इस परीक्षण से यथेच्छ सहायता मिलती है, इसके बाद ये रक्ताणु संकुचित एवम् क्षुण्ण होकर नष्ट हो जाते हैं।

Vibert's fluid:—

Sodium chloride 2 g[illegible]
Mercuric chloride 3[illegible]
Distilled water ad 1[illegible] [illegible]यु के स[illegible]

(४) अन्य प[illegible]

(I) प्रेसीपिटीन टेस्ट (Pre[illegible] [illegible] के नीचे [illegible] में
सिद्धान्त:— [illegible] (सुंआका [illegible] के होते है जो अ[illegible]) व[illegible]
यदि कि[illegible] एक वर्ग (Species [illegible] रीर पर फैल [illegible] वा [illegible] वर्ग के किसी

पशु में 'इन्जेक्ट' (inject) कर दी जाय तो कुछ समय के अन्दर उसके सीरम (Serum) में एक प्रकार का प्रति-पदार्थ (Anti-body) उन्नत होकर अवक्षेप पैदा कर देता है। व्यवहारायुर्वेद की दृष्टि से यह परीक्षण अपना एक विशेष महत्व रखता है क्योंकि इससे मनुष्य के रक्त और अन्य पशुओं के रक्त में परस्पर भेद का सम्यकरूपेण ज्ञान हो जाता है।

विधिः—

रक्त रंजित वस्त्र के टुकड़ों में से ३ वर्ग इञ्च काट कर उसका रक्त किसी चाकू आदि से खुरच कर ४० सी० सी० लवणोदक (Normal saline) में डाल दो और उसे २४ घंटे रक्खा रहने दो। इस प्रकार से रक्त का घोल १०००[1] शक्ति का होना चाहिये। यदि धब्बा बहुत पुराना हो तो लवणोदक में किंचित पोटाशियम साइनाइड का घोल भी मिला देना चाहिये।

अब किसी खरगोश आदि का रक्त—जिसको कि इससे पूर्व ही मानवीय रक्तलसिका के कम से कम चार दिन के अन्तर पर ४ सी० सी० और ८ सी० सी० के दो इन्जेक्शन दिये जा चुके हों, निकाल कर, उसके सीरम को पृथक कर लेते हैं।

फिर एक संकीर्ण परीक्षा-नलिका लेकर उसमें इस प्रकार से प्राप्त सीरम की कुछ बूँद डाल देते हैं। फिर धब्बे का जो घोल तैय्यार किया गया था, उसे १ सी० सी० लेकर एक पिपेट की सहायता से परीक्षा-नलिका में धीरे धीरे दीवार के सहारे से डालना चाहिये। यदि दोनों के मध्य में एक कपिल श्वेत वर्ण का छल्ला २ से ५ मिनट में दि[illegible] तो वह धब्बा मानवीय रक्त का होगा।

इसके अतिरिक्तः—

(II) Blood gr[illegible]est.
(III) Corpusc[illegible]
(IV) Spatru[illegible]
(V) Spe[illegible]test

आदि परी[illegible] की परीक्षा की जा सकती है।

शुक्र के धब्बों की परीक्षा[1]

इस प्रकार की परीक्षा की आवश्यकता बलात्कार एवम् अस्वाभाविक मैथुन सम्बन्धी अभियोग के समय पर पड़ती है। ये शुक्र के धब्बे बलात्कार की हुई स्त्री, कर्म पुरुष और कर्ता के शरीर एवम् वस्त्रों पर, कीचड़, पत्थर और भूमि आदि पर पाये जा सकते हैं। इसकी परीक्षा की ४ विधियाँ हैं:—

(१) भौतिक परीक्षण।
(२) रासायनिक परीक्षण।
(३) सूक्ष्म दर्शक यन्त्र द्वारा परीक्षण।
(४) जन्तुओं पर प्रयोग।

(१) भौतिक परीक्षण:—

शुक्र एक पिच्छिल और श्वेत या किंचित् पीत-श्वेत वर्ण का गाढ़ा द्रव होता है जिसमें एक विशेष प्रकार की गन्ध होती है। जिस वस्त्र पर यह लग जाता है, शुष्क हो जाने पर वह भाग कड़ा पड़ जाता है और उसका वर्ण किंचित् कपिल-पीत हो जाता है, यदि इसे गरम किया जाय तो इसका वर्ण पहले की अपेक्षा गहरा हो जाता है।

(२) रासायनिक परीक्षण:—

(I) फ्लोरेन्स टेस्ट (Florence's test):—

शुक्र के धब्बों को पृथक पृथक चिह्नित क[illegible] नम्बर लगा देना चाहिये और जिसकी परीक्षा करनी हो—उसको कैंची से [illegible] भाग काटकर एक घड़ी के शीशे में ग्लीसरीन डालकर भिगो दो और ४-[illegible] वायु के [illegible] बाद वस्त्र को निचोड़ दो।

फिर एक काँच की स्लाइड पर फ्लोर[illegible] की एक बूँद डालकर ऊपर कहे हुये निर्मित द्रव की भी २-१ बूँ[illegible] स्लिप' लगा दो और इसे सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा देखो। यदि [illegible] धब्बा होगा तो उसमें समानान्तर चतुर्भुजाका[illegible] के होते हैं जो [illegible]ी। इसी प्रकार

1. Examination of seminal sta[illegible]

प्रत्येक धब्बे का परीक्षण करके ज्ञात करना चाहिये कि उसमें से कितने शुक्र के ही धब्बे हैं।

(II) रासायनिक परीक्षण की एक विधि 'बारबेरिश्रोज़ टेस्ट' भी है।

(३) सूक्ष्म दर्शक यन्त्र द्वारा परीक्षणः—

लवणोदक में शुक्र के धब्बों को घोलकर सूक्ष्म दर्शक यन्त्र द्वारा परीक्षण किया जाता है। इसमें शुक्राणुओं को देखना चाहिये।

बलात्कार के मामले में उस स्त्री की योनि में एक फुरहरी डालकर उसकी 'स्लाइड' बनाकर परीक्षा करनी चाहिये। मनुष्य के शुक्राणु के ३ भाग होते हैं:—

(१) सिरः—यह अण्डाकार होता है। इसकी लम्बाई १/१०००० से १/१००० इञ्च तक होती है।

(२) गात्रः—इसकी लम्बाई भी सिर के बराबर ही होती है।

(३) पुच्छः—इसकी लम्बाई १/८००० से १/४००० इञ्च तक होती है। यन्त्र द्वारा देखने पर यह गति करती हुई दिखलाई पड़ती है।

शुक्राणु की लम्बाई १/१००० से १/८०० इञ्च तक होती है।

(४) जन्तुओं पर प्रयोग[1]:—

शुक्र का धब्बा चाहे नया हो या पुराना—इस परीक्षा के द्वारा उसका ठीक ठीक ज्ञान हो सकता है। मनु[illegible] शुक्र को १० सी. सी. की मात्रा में खरगोश की उदरावरणीयगुहा (P[illegible]ial cavity) में ६ से ८ दिवस का अवकाश देकर ५ से ८ [illegible] लगाते हैं और फिर उस खरगोश का सीरम निकाल कर यदि सन्देह [illegible] घोल में मिला दिया जाय तो यदि वह शुक्र का धब्बा होगा तो उस[illegible] हो जायगा।

1. Biologic[illegible]

चौथा अध्याय

मृत्यु के कारण भेद[1]

मृत्यु :—

जीवित शरीर के समस्त महत्व के कार्यों (Vital Functions) का स्थायी रूप से रुक जाने को मृत्यु कहते हैं । इसकी दो अवस्थायें होती हैं:—

(१) स्थूल मृत्यु[2]:—यह मृत्यु की प्रथमावस्था है । इसमें हृदय और फुफ्फुस की क्रियाएँ पूर्ण रूप से बन्द हो जाती हैं और सम्पूर्ण शरीर की स्थूल रूप में मृत्यु हो जाती है ।

(२) आणुविक मृत्यु[3]:—यह मृत्यु की द्वितीयावस्था है । इसमें शारीरिक धातुओं के किन्हीं विशिष्ट सेलों की मृत्यु होती है ।

मृत्यु निम्नलिखित तीन कारणों में से किसी से भी हो सकती है:—

(१) मूर्छा[4]:—इसमें हृदय की क्रिया बन्द हो जाने से रक्त-संवहन क्रिया का अवरोध हो जाने के कारण मृत्यु हो जाती है ।

(२) श्वासावरोध[5]:—इसमें फुफ्फुस की क्रिया बन्द हो जाने से श्वास संस्थान की क्रिया का अवरोध हो जाने के कारण मृत्यु हो जाती है ।

(७) सन्यास[6]:—इसमें मस्तिष्क की क्रिया बन्द हो जाने से नाड़ी-संस्थान की क्रिया का अवरोध हो जाने के कारण मृत्यु हो जाती है ।

मूर्छा

कारण:—

(१) परिभ्रमण करने वाले रक्त [illegible]यु के [illegible] में कमी ।

ऐसा दो अवस्थाओं में हो सकता है:—

(क) किसी रोग अथवा आघात [illegible] र से अत्यधिक रक्तस्राव का होना ।

[illegible]

---

1. Modes of death, 2. [illegible] [illegible]lecular death, 4. Syncope, 5. Asphyxia [illegible]

(ख) विषम ज्वर, विशूचिका, प्रवाहिका, संखिया विष सेवन आदि के कारण रक्त तरलाँश का अत्यधिक मात्रा में कम हो जाना।

(२) हृदय के मांस और कपाटों के रोग।

(३) स्तब्धता (Shock):—यह दो कारणों से हो सकती है:—

(क) आकस्मिक भय।

(ख) व्यायाम आदि के बाद आकस्मिक शीतल जल का सेवन।

लक्षण:—

(१) मुखाकृति - पीतवर्ण की हो जाती है।

(२) त्वचा—शीतल एवम् स्वेदयुक्त होती है।

(३) जी मचलाने लगता है।

(४) वमन—होती है।

(५) बेचैनी—बहुत बढ़ जाती है।

(६) रोगी हाँफने लगता है।

(७) नाड़ी:—

(क) रक्ताल्पता में:—दुर्बल, शिथिल और अनिश्चित चलती है।

(ख) हृदय के रोग में नाड़ी की गति तीव्र हो जाती है।

(८) रोगी प्रलाप (Delirium) की अवस्था में पहुँच जाता है।

(९) आँखों की पुतलियाँ प्रसारित होती हैं।

मृत्यूत्तर रूप:—

(१) क:—रक्ताल्पता में [illegible] संकुचित होता है और उसके दोनों कोष्ठ रिक्त होते हैं।

ख:—हृदय के [illegible] हृदय के दोनों कोष्ठ भरे हुये होते हैं।

(२) दोनों अवस्थाओं [illegible] और ख) में फुफ्फुस, मस्तिष्क और उदर के अवयव पीले पड़ जाते

कारण:—

(१) रोग:— [illegible] विशूचिका, हृद-रोग आदि।

(२) विष:—कुचला, स्ट्रेक्नीन, कार्बन मानो आक्साइड, कार्बन डाई आक्साइड आदि।

(३) प्रबल मृत्यु—गलपाश, कण्ठरोध, दम घुटना और डूबना।

लक्षण:—

इसकी ३ अवस्थायें होती हैं:—

[१] श्वास-उत्तेजकावस्था:—

(१) श्वास क्रिया जल्दी जल्दी और परिश्रम शील होती है।

(२) हृदय की गति तीव्र होती है।

(३) मुख, ओष्ठ और नख—नीले पड़ जाते हैं।

[२] आक्षेपणावस्था:—

(४) मल मूत्र का स्वतः त्याग हो जाता है। पुरुषों में कभी कभी शिश्न फूला हुआ मिलता है और वस्त्रों पर वीर्य निकल पड़ने के कारण धब्बे पाये जाते है।

(५) श्वास झटके के साथ दौरे के रूप में आती है।

(६) पेशियों में आक्षेपण होते हैं।

[३] श्रमितावस्था:—

(७) श्वास—केन्द्र का पक्षाघात हो जाता है।

(८) आँखों की पुतलियाँ प्रसारित होती हैं।

(९) प्रत्यावर्तन नष्ट हो जाते हैं।

(१०) पेशियाँ शिथिल पड़ जाती हैं।

तदनन्तर मृत्यु हो जाती है।

मृत्यूत्तर रूप:— [illegible]यु के स[illegible]

(क) बाह्य:—

(१) मुख, ओष्ठ और नख— नीले [illegible]

(२) मुख और ग्रीवाकी शिरा[illegible] कारण फूली हुई होती हैं।

(३) मल—मूत्र-त्याग [illegible] के नीचे [illegible] में कभी कभी शिश्न फूला हुआ और वस्त्रों पर शुक्र के [illegible] होते हैं जो [illegible]

(४) मृत्यूत्तर संकोच धीरे धी[illegible]रीर पर फैल [illegible]

(५) जिह्वा बाहर निकली हुई होगी।

(ख) आभ्यन्तरिक:—

(६) हृदय का दाहिना भाग गहरे तरल रक्त से भरा होता है और बायाँ भाग खाली होता है और कभी कभी दोनों भाग रक्त से भरे होते हैं।

(७) फुफ्फुस में रक्ताधिक्य होगा—यदि धीरे धीरे मृत्यु हो। किन्तु तीव्रता से हुई मृत्यु में फुफ्फुस में पाण्डुता पायी जायेगी।

(८) श्वास प्रणाली और वायु-नलिकाओं में रक्त मिश्रित झाग पाया जायेगा।

(९) मस्तिष्क में प्रायः रक्ताधिक्य हो जाता है।

(१०) वृक्क, यकृत, प्लीहा आदि उदर के अवयवों में रक्ताधिक्य पाया जाता है।

(११) मस्तिष्कावरण, हृदयावरण और फुफ्फुसावरण में रक्तस्राव की लाल लाल बुँदियाँ (Tardieu's spots) मिलेंगी।

सन्यास

कारण:—

(१) रोग:—मधुमेह और मूत्रविषमयता[1]

(२) मस्तिष्कीय रक्तस्राव, या एपोप्लैक्सी

(३) मस्तिष्क का पिचन, उदाहरणार्थ:—

(क) कपालास्थियों का अस्थि-भग्न।

(ख) मस्तिष्कीय अर्बुद [illegible]

(ग) मस्तिष्कावरणी[illegible] शोथ[1] में।

(४) मस्तिष्क पर क्रियामत [illegible] विष:—

जैसे अफीम, मद्य आदि [illegible]

लक्षण:—

(१) रोगी वे[illegible] से जाग्रत किया जा सकता है।

---

1. Uramia, [illegible] lour. 3 Menangitis

(२) प्रत्यावर्तन—नष्ट हो जाते हैं।
(३) श्वास-क्रिया—अनियमित, खरखराहट के साथ और मन्द होती है।
(४) नाड़ी गति—मन्द और भारी होती है।
(५) तापक्रम —साधारण या साधारण से भी कम होता है।

मृत्यूत्तर रूपः—

(१) यदि मृत्यु का कारण आघात है, तो शिरोगुहा में रक्तस्राव पाया जायेगा
(२) मस्तिष्कावरणीय कलायें रक्तिमायुक्त होंगी और रक्त जमा हुआ होगा।
(३) हृदय का वाम भाग प्रायः रिक्त होगा।

मृत्यु के चिन्ह[1]

(१) रक्त-संचार क्रिया का अवरोध[2]।
(२) श्वास-क्रिया का अवरोध[3]।
(३) कैडावरिक स्पाज़्म (Cadaveric spasm)
(४) त्वचामें परिवर्तन[4]।
(५) अक्षिगत परिवर्तन[5]।
(६) शरीर का ठंढा होना[6]।
(७) मृत्यूत्तर संकोच[7]।
(८) मृत्यूत्तर अधःस्तल वैवर्ण्य[8]।
(९) कोथ (सड़न)[9]।
(१०) सेपोनीफिकेशन। (Saponification)
(११) ममीफिकेशन (Mumification)

[१] रक्त-संचार क्रिय[illegible] अवरोधः—

लगातार ५ मिनट तक हृदय के स्पन्दन[illegible] यंत्र (Stethoscope) से परीक्षा करनी चाहिये।

---

1. Signs of death, 2. Ce[illegible]on, 3. Cessation of respir[illegible] [illegible]skin, 5. Changes in the eyes [illegible] 7. Rigor mortis 8. Cada[illegible] [illegible]Putrefaction

परीक्षण :—

(१) हृदय की धड़कन बहुत धीरे धीरे होने के कारण नाड़ी में स्पन्दन नहीं होगा।

(२) इसी कारण (१) से हृदय का स्पन्दन नहीं सुनाई पड़ेगा।

(३) किसी अंगुली के चारो ओर एक बन्धन कसकर बांध देने पर बन्धन से आगे के भाग में शोथ नहीं उत्पन्न होगा।

(४) किसी छोटी धमनी को काट देने पर उसमें से फुहारे के रूप में रक्त नहीं निकलेगा।

(५) त्वचा को अग्नि से दग्ध करने पर जीवन काल का छाला नहीं पड़ेगा।

(६) नखों पर दबाव डालने पर रक्तिमा नहीं होगी।

(७) हाथ को अत्यन्त तीव्र प्रकाश जैसे सूर्य, १०० W की बत्ती आदि— के सामने रखकर देखने पर चमकदार लाल नहीं दिखाई देगा।

[२] श्वास-क्रिया का अवरोध :—

लगातार ५ मिनट तक स्टेथिसकोप से फुफ्फुस की परीक्षा करनी चाहिये।

कुछ अवस्थाओं में कुछ समय के लिये श्वास क्रिया बन्द हो जाने पर भी व्यक्ति जीवित रह सकता है :—

(I) तत्काल उत्पन्न शिशु में।

(II) मामूली तरह से डूबे हुये व्यक्तियों में।

(III) श्वासकृच्छ्रता की [illegible] में।

परीक्षण :—

(१) किसी चमकद[illegible] शीतल दर्पण को नासिका के छिद्रों एवम् मुख-द्वार के समीप ला[illegible]ना चाहिये। यदि उस पर कुछ धुँध सा दिखलाई पड़े तो श्वास[illegible] धुंध के अभाव में श्वास-क्रिया का अवरोध हो[illegible]

(२) नासिक[illegible]सी रुई के डोरे अथवा किसी पक्षी के

पंख को रखना चाहिये। यदि उसमें किञ्चित भी कम्पन न हो तो समझना चाहिये कि श्वास-क्रिया का अवरोध हो गया है, विपरीत दशा में श्वास-क्रिया हो रही है यह ज्ञान होता है।

(३) किसी छिछले पात्र में पारद डालकर छाती पर रक्खो और उस पर तीव्र प्रकाश डालकर उसका प्रतिविम्ब देखो, उसमें कम्पन नहीं होगा।

[३] कैडेवरिक स्पाज़्म (Cadaveric spasm):—

तत्काल और प्रबल मृत्यु में वात-नाड़ी प्रभाव के कारण बहुत सी या सब मांसपेशियां ठीक मृत्यु के समय पर ही संकुचित एवम् कुछ कठोर पड़ जाती हैं। अतः मृत्यूत्तर पेशियों की संकुचितावस्था के स्थिर रहने को जिसमें कि वे मृत्यु के समय पर थीं-कैडेवरिक स्पाज्म कहते हैं। इसमें निम्नलिखित विशेषतायें पायी जाती हैं:—

(१) मृत्यु के तत्काल बाद कड़ापन प्रारम्भ हो जाता है।

(२) आणुविक मृत्यु नहीं होती।

(३) पेशियों में विद्युत-स्पर्श से क्षणिक उत्तेजना आ जाती है।

(४) हाथों में शस्त्र, वस्त्र और केश खूब मज़बूती से पकड़े हुये पाये जा सकते हैं।

(५) यह वात-नाडी के प्रभाव के कारण होता है।

(६) शरीर उष्ण एवम् कठोर होता है।

व्यवहारायुर्वेदीय महत्व:—

इससे (I) मृत्यु का समय (II) मृत्यु के समय शरीर की स्थिति और (III) मृत्यु स्वकृत है या परकृत है— इन [illegible] ज्ञान हो सकता है।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि [illegible] कारणों द्वारा हुई मृत्यु में भी केडेवरिक स्पाज्म पाया जा सकता है [illegible] के नीचे [illegible]

(I) धनुर्वात (II) कुचल[illegible] होने [illegible] है जो प्र[illegible] बच्चों में आक्षेपण (IV) प्रबल मस्तिष्कीय क्षोभ। [illegible]रीर पर फैल [illegible]

[४] त्वचा में परिवर्तनः—

मृत्यूत्तर त्वचा में निम्नलिखित परिवर्तन देखे जाते हैं:—

(१) चमक जाती रहती है जिसके कारण शव का वर्ण पीत अथवा स्लेटी-श्वेत हो जाता है।

(२) उसकी स्थिति-स्थापकता नष्ट हो जाती है। तीक्ष्ण शस्त्र से प्रहार होने की अवस्था में त्वचा के कटे हुये सिरे पृथक पृथक न होकर परस्पर मिले रहते हैं और उनमें रक्तस्राव अथवा लालिमा नहीं होती।

५] आँखों में परिवर्तनः—

मृत्यु के पश्चात् आंखों में प्रायः निम्नलिखित परिवर्तन पाये जाते हैं:—

(१) आँख की पुतलियों की संज्ञा नष्ट हो जाती है, उसमें अंगुली स्पर्श करने पर भी वे बंद नहीं होतीं और कष्ट नहीं होता।

(२) कनीनिका की पारदर्शिकता नष्ट हो जाती है और वे धुंधली और अपारदर्शक हो जाती [illegible]।

पोटासियम सायनाइड और कार्बन मानो आक्साइड विष तथा एपोप्लैक्सी की दशा में कनीनिका स्वच्छ और पारदर्शक ही बनी रहती है।

मूत्र विषमयता, विशूचिका एवम् निद्रालु विष सेवन की अवस्था में मृत्यु से पूर्व ही कनीनिका धुँधली एवम् अपारदर्शक हो जाती है।

(३) कनीनिका पर दबाव डालने पर वह गड्ढे में चली जाती है।

(४) अक्षि-गोलक का तनाव नष्ट हो जाता है।

[६] शरीर का ठंढा होनाः—

मृत्यु के पश्चात् सम्पूर्ण देगा[illegible]र ठंढा हो जाता है और शव का तापक्रम धीरे धीरे आसपास के व[illegible] जाता है। मृत्यु के बाद प्रथम ३ घंटों में शव का तापक्रम [illegible] घटे के हिसाव से और उसके बाद १०° फा० प्रति [illegible] जाता है जब तक कि आसपास के वातावरण का ताप[illegible]

निम्नलिखित अवस्थाओं में शव के तापक्रम के गिरने में बाधायें पड़ती हैं:-

(I) आकस्मिक मृत्यु होने पर।

(II) वातावरण का तापक्रम अधिक होने पर।

(III) वायु प्रवाह रहित होने पर।

(IV) स्थूल शरीर होने पर।

(V) तीव्र ज्वर होने पर।

(VI) शव को उष्ण एवम् स्थिर जल में डुबाये रखने पर।

(VII) युवावस्था।

(VIII) ताप के बुरे परिचालकों से मृत शरीर का ढका होना।

निम्नलिखित अवस्थाओं में शव का तापक्रम शीघ्रता के साथ कम होता जाता है:—

(I) धीरे धीरे अथवा बिलम्ब से मृत्यु होने पर।

(II) वातावरण ठंढा होनेपर।

(III) वायु प्रवाहित एवम् शीतल होने पर।

(IV) कृश शरीर होने पर।

(V) जीर्ण क्षयकारक व्याधियाँ।

(VI) शव को शीतल एवम् अस्थिर जल में डुबाये रखने पर।

(VII) बाल्यावस्था अथवा वृद्धावस्था।

(VIII) ताप के उत्तम परिचालकों से शव का ढका होना अथवा शव का खुला पड़ा रहना।

पीत ज्वर, विशूचिका, मसूरिका, धनुर्वात, आमवातिक ज्वर, यकृत-शोथ, कुचला विष सेवन, उदरावरणशोथ—इनमें कभी कभी शव का तापक्रम बढ़ भी जाता है।

[७] मृत[illegible] के नीचे[illegible]

मृत्यु के बाद पेशियों में आणुवि[illegible] होने[illegible] है जो [illegible] के कारण मायोसीन जम जाती है, इस कारण से शरीर की [illegible] [illegible]ती हैं, इसी को

मृत्यूत्तर संकोच (Cadaveric rigidity या rigor mortis) कहते हैं। इसकी ३ अवस्थायें होती हैं:—

(१) **प्रथमावस्था:**—इस अवस्था में मांसपेशियाँ पूर्ण रूप से ढीली पड़ जाती हैं और शरीर में विद्युतधारा प्रवाहित करने पर पेशियाँ क्रिया करने लगती हैं। अभी पेशियों में आणुविक मृत्यु नहीं हुई होती है। यह अवस्था ३० मिनट और अधिक से अधिक ३ घंटे तक रहती है। इसका औसत १ घंटा ५१ मिनट बतलाया जाता है।

(२) **द्वितीयावस्था:**—इस अवस्था में पेशियों की आणुविक मृत्यु हो जाती है और यह पेशियों को कठिन बना देती है। विद्युत-धारा प्रवाहित करने पर अब पेशियाँ क्रियाशील नहीं होतीं।

(३) **तृतीयावस्था:**—यह अंतिम अवस्था है जिसमें पेशियों की उत्तेजनशीलता का पूर्णतया नाश हो जाता है जिसके कारण पेशियाँ स्थायी रूप से ढीली पड़ जाती हैं क्योंकि इसके बाद ही कोथ प्रारम्भ हो जाती है।

मृत्यु के पश्चात मृत्यूत्तर संकोच ३० मिनट से ७ घंटे के बीच के समय में—प्रायः १ घंटे ५६ मिनट में प्रारम्भ हो जाता है और ३ से ४० घंटे तक इसके स्थिर रहने का समय होता है।

सर्व प्रथम अक्षि, लोम, हनु और मुख की पेशियों में तदनन्तर ग्रीवा और पीठ की पेशियों में, इसके बाद ऊर्ध्व शाखा की पेशियों में और अंत में अधोशाखा की पेशियों में—इसी क्रम से मृत्यूत्तर संकोच प्रारम्भ होता है।

निम्नलिखित अवस्थाओं में मृत्यूत्तर संकोच तीव्रता के साथ होता है:—

(I) यदि शरीर कृश एवम् रिक्त हो।

(II) यदि आक्षेपण, मरोड़, ऐंठन—के कारण मृत्यु से पूर्व पेशियाँ श्रमित हों जैसा कि विशूचि[illegible]ांत और कुचला विष सेवन में होता है।

(III) यदि जलव[illegible]एवम् वाष्पयुक्त हो।

(IV) बाल्यावस्[illegible]

(V) मन्थ[illegible] राजयक्ष्मा और रोहिणी—रोगों में।

किन्तु निम्न अवस्थाओं में मृत्यूत्तर संकोच की क्रिया में बाधायें पड़ती हैः—

(I) यदि शरीर पूर्ण स्वस्थ हो।

(II) यदि मृत्यु से पूर्व पेशियाँ श्रमित न हुई हों जैसा कि-श्वासावरोध, निमोनिया आदि में होता है।

(III) यदि जलवायु शीत एवम् शुष्क हो।

(IV) युवावस्था।

(V) पक्षाघात में।

मृत्यूत्तर कठोरताः—

मृत्यु के कुछ समय के बाद या तत्काल बाद कैडेवरिक स्पाज्म, मृत्यूत्तर संकोच, ताप से उत्पन्न कठिनता, शीत से उत्पन्न कठिनता और ग्रैस से उत्पन्न कठिनता--इन कारणों से शरीर कठोर हो जाता है।

[८] मृत्यूत्तर अधःस्तल वैवर्ण्यः—

मृत्यु के बाद मृत शरीर के सबसे नीचे के भाग में स्थित केशिकाओं में तरल रक्त के एकत्रित होने से वैवर्ण्य आ जाता है जिसके कारण त्वचा का वर्ण बैंगनी अथवा धुँधला लाल हो जाता है, इसी को मृत्यूत्तर अधःस्तल वैवर्ण्य, कहते हैं। किन्तु जो भाग किसी दबाव-बंधन, रस्सी, वस्त्र, टाई आदि के कारण प्रभावित होते हैं, उन पर ऐसा परिवर्तन नहीं होता।

सर्व प्रथम मृत शरीर के सबसे नीचे के भागों पर ऐसा परिवर्तन होता है तत्पश्चात् यह ग्रीवा तथा ऊर्ध्व और अधो शाखाओं में भी प्रसारित होता है। यह कृष्ण वर्ण की अपेक्षा गौर वर्ण के व्यक्तियों में अधिक स्पष्ट होता है।

मृत्यु के पश्चात् ३ घंटे के अन्दर ही यह प्रकट होने लगता है और ५ घंटे में ठीक से पहचाना जा सकता है और जब तक र[illegible] जम नहीं जाता, तब तक वैवर्ण्य जारी रहता है। मृत्यूत्तर रक्त प्राय[illegible] घंटे में जम जाता है, अतएव इस समय तक वैवर्ण्य जारी रह[illegible] के नीचे[illegible] है कि रक्त के तरलावस्था में रहने का समय जितना अधि[illegible] होता है जो प्रदेश आकार में उतने ही बड़े होंगे और रक्त के शीघ्र जम जाने[illegible] पर फैल जाता [illegible]ाकार छोटा होगा।

जब तक रक्त तरल बना रहता है, मृत्यूत्तर वैवर्ण्य-प्रदेश शरीर की स्थिति को परिवर्तित करने के अनुसार एक स्थान से दूसरे स्थान को हटा करता है किन्तु ज्योंही रक्त जम जाता है, यह नहीं हो सकता ।

निम्नलिखित दो अवस्थाओं में वैवर्ण्य-प्रदेश का आकार और स्थिति बदल भी सकती है:—

(I) श्वासावरोध की दशा में—क्योंकि इसमें रक्त अधिक समय तक तरल बना रहता है ।

(II) सड़े हुये मृत शरीर में—क्योंकि इसमें कुछ समय के बाद रक्त पुनः तरलावस्था में हो जाता है ।

व्यवहारायुर्वेदीय महत्व:—

मृत्यूत्तर अधःस्तल वैवर्ण्य के द्वारा निम्नलिखित बातों का पता चल सकता है ।

(I) मृत्यु के चिन्ह ।

(II) मृत्यु का समय ।

(III) मृत्यु के समय शरीर की स्थिति ।

(IV) मृत्यु का कारण:--

(क) पोटाशियम सायनाइड विष सेवन में वैवर्ण्य रक्त वर्ण का होता है ।

(ख) कार्बन मानो आक्साइड की अवस्था में गुलाबी ।

(ग) श्वासावरोध में गहरा नील वर्ण ।

(V) त्वचा के नीचे रक्ताधिक्य[1] अथवा पिच्चन[2] के साथ उसका भ्रम हो सकता है । इनका परस्पर भेद नीचे दिया है:—

मृत्यूत्तर अधस्तल वैवर्ण्य	पिच्चन
(१) शरीर के सबसे नीचे के भाग पर होता है ।	(१) शरीर के किसी भी भाग पर हो सकता है ।
(२) शरीर पर आसपास [illegible] उठा हुआ नहीं होता ।	(२) सदैव थोड़ा बहुत उठा हुआ होता है।

1 Echymosis, 2 Contusion.

मृत्यूत्तर अधस्तल वैवर्ण्य	पिच्चन
(३) इसके किनारे स्पष्ट दिखलाई देते हैं।	(३) किनारे स्पष्ट नहीं होते।
(४) रक्त के जमने से पूर्व शरीर की स्थिति बदलने पर इनमें स्थान-परिवर्तन हो सकता है।	(४) शरीर की स्थिति बदलने पर इनका स्थान नहीं बदलता।
(५) जब तक रक्त तरलावस्था में रहता है, तब तक वैवर्ण्य-प्रदेश को दबाने पर वर्ण हट जाता है और दबाव के हटा लेने पर वर्ण फिर आ जाता है।	(५) एक बार बन जाने पर वर्ण दबाव से नहीं हट सकता।
(६) स्थान को काटने पर जमा हुआ रक्त रक्त-नलिकाओं से बाहर नहीं मिलेगा।	(६) काटने पर रक्त-नलिकाओं से बाहर की धातुओं में प्रायः जमा हुआ रक्त मिलेगा।
(७) इसमें वर्ण-परिवर्तन नहीं होता।	(७) आयु के अनुसार पिच्चन में और उसके समीपस्थ प्रदेश में वर्ण-परिवर्तन होता है।

[९] कोथ (सड़न):—

शरीर में सड़न का प्रारम्भ हो जाना मृत्यु का सब से अधिक विश्वसनीय एवम् निश्चित चिह्न है। सड़न का प्रमुख कारण शरीरगत और शरीर के बाहर के जीवाणुओं (Bacteria) की क्रिया है, जिसके कारण शरीर के नोषजनयुक्त ऐन्द्रिक यौगिक धातुयें साधारण अनैन्द्रिक पदार्थों में टूटकर परिवर्तित हो जाती हैं।

कोथ की अवस्थायें:—

(१) वर्ण परिवर्तनः—

मृत्यु के लगभग ७ घण्टे के बा[illegible]उ के नीचे के भाग में दाहिनी ओर हरित वर्ण का एक छोटा सा चकत्ता होता है जो धीरे धीरे ऊपर की ओर फैलता हुआ बड़ी तीव्रता से समस्त शरीर पर फैल जाता है। इस परिवर्तन का

कारण फेरस सल्फाइड से धातुओं का वैवर्ण्य है जो कि हाइड्रोजन सल्फाइड और स्वतन्त्र लौह के मिलने से बनता है। हाइड्रोजन सल्फाइड शरीर के ऐन्द्रिक पदार्थों के सड़ने से उत्पन्न हो जाता है और हेमोग्लोबिन के टूटने से लौह पृथक हो जाता है। त्वचा के अतिरिक्त शरीर के अन्य आन्तरिक अवयवों जैसे यकृत आदि सब पर वर्ण-परिवर्तन का प्रभाव पड़ता है।

वर्ण परिवर्तन की उत्पत्ति (I) तापक्रम (II) मृत्यु का कारण और (III) शरीर की अवस्था—इन तीन बातों पर निर्भर है। गरमी के दिनों में इसकी उत्पत्ति ६ से १२ घण्टे में और शीत काल में १ के ३ दिन में—प्रायः २४ घण्टे में होती है।

(२) आँखों का मृदु होनाः—

प्रायः इसी काल में अक्षि गोलक मृदु हो जाते हैं, कनीनिका अपारदर्शक और दुग्ध की भाँति श्वेत तथा इसकी सतह चपटी होकर अन्त में नतोदर और अन्दर की ओर धंसी हुई मालूम देती है।

(३) दुर्गन्धि-उत्पत्तिः—

प्रायः इसी काल में हल्की और अप्रिय गन्ध शरीर से निकलने लगती है। कुछ समय के बाद यह बहुत बढ़ जाती है और सूँघने से जी मचलाने लगता है। इसका कारण दुर्गन्धित गैसों का बनना है जो कि Micro-organisms की क्रिया के परिणाम स्वरूप होता है।

(४) कीड़ों का पड़नाः—

इस दुर्गन्धि के कारण मृत शरीर पर बहुत सी मक्खियाँ एकत्रित होकर अपने अण्डे देती हैं, विशेषतया खुले हुये व्रणों में और शारीरिक बाह्य छिद्रों—मुख, नासिका, कर्ण आदि में ऐसा होता है। इन अण्डों से छोटे छोटे कीड़े उत्पन्न होकर कुछ समय में बड़े हो जाते हैं और शरीर के कुपित भागों पर रहते हैं जिसके कारण शव के टुकड़ों में विभक्त होने तथा नाश होने में शीघ्रता होती है। ये कीड़े मृत्यु से [illegible] व्रणों की ओर ध्यान न देने अथवा उनका ठीक उपचार एवम् रक्षा न [illegible] से उत्पन्न हो जाते हैं। कीड़े प्रायः २४ से ४० घण्टे में प्रगट होते हैं।

(५) दुर्गन्धित गैसों की उत्पत्तिः—

वर्ण-परिवर्तन के समय से ही दुर्गन्धित गैसें बनने लगती हैं और Micro organisms की क्रिया और वृद्धि के हेतु अनुकूल वातावरण के अनुसार कम या अधिक तीव्रता से बनती जाती हैं।

(६) मृत्यु के पश्चात छालों की उत्पत्तिः—

बाह्यत्वक के नीचे दुर्गन्धित गैसों के संचय के कारण मृत शरीर के विभिन्न भागों पर बहुत से छोटे छोटे छाले पड़ने लगते हैं और फिर ये धीरे धीरे आपस में मिलकर बड़े बड़े छाले बन जाते हैं, इनमें दुर्गन्धित गैसों की मात्रा अधिक होती है और कभी कभी थोड़ा-बहुत किञ्चित् रक्तवर्ण का तरल भी मिलता है।

जीवन काल के छालों और मृत्यु के पश्चात के छालों में कभी कभी एक दूसरे के लिये परस्पर भ्रम पैदा हो सकता है, अतः उनका भेद नीचे दिया जाता है:—

(I) मृत्यु से पूर्व के छालों में जो तरल पदार्थ होता है, उसमें एल-ब्यूमिन (Albumin) की मात्रा अधिक होती है किन्तु मृत्यूत्तर जो छाले पड़ते हैं, उनमें प्रायः गैसे होती हैं और यदि तरलाँश हुआ भी तो उसमें एल-ब्यूमिन कम होती है।

(II) मृत्यु से पूर्व के छालों में तरल पदार्थ की मात्रा अधिक होती है किन्तु मृत्यूत्तर जो छाले पड़ते हैं, उनमें या तो तरल पदार्थ होता ही नहीं है और यदि हुआ भी तो बहुत थोड़ा एवम् किञ्चित रक्त वर्ण का होता है।

(III) मृत्यु से पूर्व के छालों के चारों ओर किनारे किनारे रक्त वर्ण का छल्ला होता है और छाले के आधार में थोड़ा बहुत रक्ताधिक्य पाया जाता है किन्तु मृत्यूत्तर जो छाले पड़ते हैं उनमें इस प्रकार का कोई छल्ला नहीं होता है और इसका आधार प्रायः श्वेत वर्ण का होता है और यदि शरीर अत्यधिक कुथित नहीं हो गया होता है तो उसमें चमक होती है।

(IV) छालों में (मृत्यु से पूर्व के होने पर) शोथ पाया जा सकता है और उसके समीपस्थ भागों पर भी कुछ सूजन हो सकती है अथवा उसमें रोपण

के चिन्ह पाये जा सकते हैं किन्तु यदि छाले मृत्यूत्तर पड़ जाते हैं तो उसमें इस प्रकार के कोई भी चिन्ह नहीं पाये जाते ।

(७) मृत्यु के पश्चात धातुओं का फूलनाः—

यह दुर्गन्धित गैसों के कारण होता है और इसके कारण शरीर की आकृति इतनी विगड़ जाती है कि व्यक्ति की पहचान प्रायः असम्भव हो जाती है ।

(८) मृदु भागों का प्रथक होनाः—

यदि सड़न जारी रहे तो शरीर की धातुयें मृदु होकर द्रवित हो जाती हैं । और होंते होते यह कृष्ण वर्ण का अर्ध-ठोस गाढ़ा पदार्थ बन जाता है । इसके बाद ये गल-गल कर शरीर से पृथक होकर गिर पड़ता है और अस्थिपञ्जर की अस्थियाँ हो कैंवल दिखलाई पड़ती हैं ।

जब शरीर की धातुयें मृदु हो जायें, शरीर की गुहायें फूट जायें और धीरे धीरे करके ये कुथित धातुयें अस्थियों से प्रथक हो जायें—तब इस अवस्था में प्राप्त हुये शरीर को मृत्यु के पश्चात ७८ घण्टे से अधिक समय अवश्य हो गया है—यह समझना चाहिये ।

सड़न के शीघ्रता अथवा विलम्ब से होने में निम्नलिखित बातें आश्रय हैः—

शीघ्रता	विलम्ब
(१) तापक्रम—७० से १००° फा० ।	(१) तापक्रम—३२° फा० से कम और २१२° फा० से अधिक ।
(२) वायु प्रवेश के कारण सड़न शीघ्रता से होती है ।	(२) वायु की अप्रवेशता के कारण सड़न में बाधा पड़ती है ।
(३) समीपस्थ वातावरण में तरी का होना ।	(३) तरी की अनुपस्थिति ।
(४) स्थूल एवम् स्वस्थ शरीर ।	(४) कृश एवम् रिक्त शरीर ।
(५) तुरन्त उत्पन्न हुये शिशुओं के शरीर ।	(५) वृद्धावस्था के शरीर ।

शीघ्रता	विलम्ब
(६) रोग आदि:— जीवाणुमयता[1] उदरावरणशोथ[2] जीवाणु युक्त अवस्थायें[3]	(६) फेनाश्म, नीलांजन और जिंक क्लोराइड विषों से पीड़ितावस्था में।

[१०] सैपोनीफिकेशन (Saponification)—

मृत शरीर को जल में डुबाये रखने अथवा तर कब्रों में दफन करने से यह अवस्था उत्पन्न हो जाती है। इसका कारण धातुओं—विशेषतया चर्बीले धातुओं का हाइड्रोजेनाइज़ेशन (Hydrogenisation) होकर एक प्रकार के मोम की तरह पदार्थ में परिवर्तित हो जाना है। इससे जो पदार्थ बनते हैं, वे भौतिक और रासायनिक गुणों में बहुत कुछ साबुन से मिलते जुलते होते हैं, इसीलिये इसको 'सैपोनीफिकेशन' कहते हैं।

एक बार शरीर का इस अवस्था में परिवर्तित हो जाने पर, वह इसी अवस्था में बिना किसी परिवर्तन के अत्यधिक काल तक (२० साल या इससे भी अधिक) बनी रहती है और इस कारण मृत्यु के बाद बहुत समय व्यतीत हो जाने पर भी मृत शरीर की पहचान की जा सकती है।

कृश एवम् दुर्बल व्यक्तियों के शरीर की अपेक्षा बच्चों एवम् स्थूल व्यक्तियों के शरीर में अधिक मात्रा में वसा के उपस्थित रहने के कारण अधिक शीघ्रता से इस अवस्था में परिवर्तित हो जाते है। भारतवर्ष में प्रायः १५ दिन और योरुप आदि में प्रायः ३ से १२ मास में ऐसा होता है।

[११] ममीफिकेशन (Mumificaton):—

सूर्य के अत्यधिक ताप और प्रवाहित शुष्क वायु के कारण सड़न क्रिया न होकर मृत शरीर के मृदु धातुओं में डिहाइड्रेशन (Dehydration) होता है जिससे शरीरका द्रव भाग बहुत वेग के साथ शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और शरीर संकुचिक हो कर शुष्क हो जाता है, इसे 'ममीफिकेशन' कहते हैं, यह क्रिया प्रायः रेगिस्तानों में होती है।

---

1. Septicaemia, 2. Peritonitis, 3. Septic conditions,

पांचवाँ अध्याय

यान्त्रिक आघात
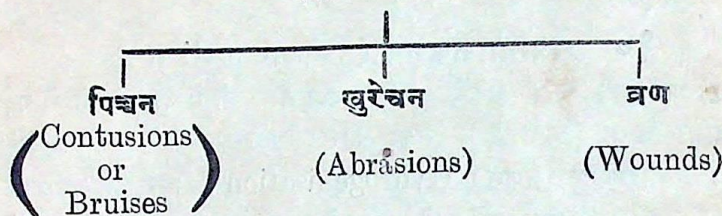
(१) पिच्चनः—

ये वे आघात हैं जो कि किसी धारहीन शस्त्र जैसे लाठी, लौह शालाका, पत्थर, घूँसा इत्यादि से प्रहार करने पर हो जाते हैं । इसमें उपत्वचा की धातुयें दब जाती हैं या फट जाती हैं और इस स्थान पर शोथ और पीड़ा होती है । शोथ का कारण उपत्वचा में स्थित रक्तवाहनियों का फट कर सेलीय धातुओं में रक्त का एकत्रित हो जाना है ।

त्वचा के नीचे रक्तस्राव—यह दो प्रकार का होता है:—

(१) उत्तान (Superficial) और (२) गम्भीर (Deep)

उत्तान	गम्भीर
(१) आघात लगने के बाद प्रायः १ या २ घंटे के अन्दर प्रगट होता है ।	(१) आघात लगने के बाद प्रायः १ या २ दिन में प्रगट होता है ।
(२) यह उसी स्थान पर प्रगट होता है जहाँ कि आघात लगता है ।	(२) आघात लगने के स्थान से कुछ दूरी पर प्रगट होता है ।
(३) यदि मृत्यु से १ या २ घंटे पूर्व आघात लगा हो, तो कभी कभी त्वचा के नीचे रक्तस्राव प्रगट नहीं होता ।	(३) यदि मृत्यु से एक या दो दिन पूर्व आघात लगा हो, तो कभी कभी यह प्रगट नहीं होता ।

साधारणतया त्वचा के नीचे रक्तस्राव आघात के लिये प्रयुक्त शक्ति की प्रकृति और तीव्रता, क्षतस्थान पर रक्तवाहनियों की न्यूनाधिकता (Vascularity), उस जगह की धातुओं का काठिन्य या मृदुता तथा क्षतयुक्त व्यक्ति की दशा पर निर्भर है। पद्म, वृषण और भग प्रदेश पर आघात का विस्तार अधिक तथा कपाल की त्वचा पर कम होता है। अगर एक गाड़ी का पहिया व्यक्ति के उदर प्रान्त से निकल जाये और किसी आभ्यान्तरिक अङ्ग के विदीर्ण हो जाने से मृत्यु हो जाये तो भी उसके उदर प्रान्त में इसके लक्षण प्रगट नहीं होंगे। जो बहुत ही दृढ़ और सुगठित शरीर वाले व्यक्ति हों, उनकी अपेक्षा बच्चों, कोमलाङ्गी स्त्रियों और वृद्ध पुरुषों पर थोड़ा भी आघात लगने से अतिशीघ्र त्वचा के नीचे रक्तस्राव हो जाता है।

रक्तपित्त (Scurvy), पुरपूरा (Purpura), इरीथिमा (Erythema) हीमोफीलिया (Haemophilia), संक्रामक रोगों के दुष्ट प्रकार इत्यादि में थोड़ा सा भी आघात अथवा दबाव पड़ने से त्वचा के नीचे विस्तृत रक्तस्राव हो जाता है। इन परिस्थितियों में उपत्वाचीय रक्तस्राव स्वच्छन्दता से हो सकता है जिससे त्वचा के नीचे रक्तस्राव होने का भ्रम हो सकता है परन्तु संख्या, विस्तार और खुरेचन की अनुपस्थिति से उसका परस्पर भेद किया जा सकता है।

पिच्चन के परिणामः—

इनकी गणना साधारण आघात में है किन्तु आभ्यान्तरिक अङ्गों के विदीर्ण हो जाने पर या उस स्थान पर कोथ (Gangrene) होने से यह कभी कभी घातक भी हो सकते हैं।

पिच्चन का समयः—

पिच्चित क्षत का समय निर्धारण उसके त्वगीय रक्तस्राव के शोषण के समय के रंग-परिवर्तन पर निर्भर है। यह परिवर्तन लाल रक्त कणों के टूटने और हिमोग्लोबिन (Haemoglobin) के बनाये हुये धब्बों से होता है। आरम्भ में इसका रंग लाल होता है किन्तु आगामी ३ दिनों में इनका वर्ण नीला, नील-कृष्ण, कपिल अथवा नील-रक्त हो जाता है। पांचवें या छठे दिन

इनका वर्ण हरित और ७ वें या ८ वें दिन ये पीत वर्ण के हो जाते हैं। १४-१५ दिन तक में यह पीत वर्ण धीरे धीरे धुँधला पड़ कर त्वचा का साधारण वर्ण प्राप्त कर लेता है। रुग्ण और वृद्ध पुरुषों की अपेक्षा यह वर्ण-परिवर्तन स्वस्थ पुरुषों में अतिशीघ्र होता है। यह ध्यान में रहना चाहिये कि यह रंग परिवर्तन कृष्ण वर्ण के लोगों की अपेक्षा गौर वर्ण के व्यक्तियों में अधिक स्पष्ट होता है।

स्वकृत, परकृत अथवा आकस्मिक पिच्चनः—

इसका निर्णय करना बहुत कठिन है परन्तु कभी कभी इनका स्थान और स्थिति को देखकर निश्चयात्मक रूप से कुछ बताया जा सकता है। गिरने पर उसके शरीर पर धूल, कंकड़, बालू या कीचड़ मिलेगा। क्षत का आकार और विस्तार प्रयुक्त शस्त्र की तरह होगा जैसे कि घूँसे अथवा लाठी के गुद्दे से मारने पर गोल निशान बनेगा और लाठी मारने पर लम्बा और क्रमहीन। धारहीन शस्त्रों के आघात स्वकृत नहीं होते।

मृत्यु से पूर्व और मृत्यूत्तर पिच्चन में भेदः—

मृत्यु से पूर्व	मृत्यु के बाद
(१) किंचित शोथ और वर्ण-परिवर्तन होगा।	(१) शोथ और वर्ण परिवर्तन का अभाव होगा।
(२) रक्त उपत्वचीय धातुओं में जम जाता है।	(२) इसमें ऐसा नहीं होता।

कभी कभी सड़न होने के कारण यह नहीं बतलाया जा सकता कि पिच्चन मृत्यु से पूर्व के हैं या बाद के। कभी कभी मृत्यु के बाद २ से ३ घंटे के अन्दर पिच्चन बनाये जा सकते हैं जिनको देखने से यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि ये मृत्यु से पूर्व के हैं या बाद के।

(२) खुरेचनः—

ये वे आघात हैं जो कि किसी ठोस और खुरदरे पदार्थ से शरीर पर रगड़ लगने, नाखून से नभोटने अथवा दांत से काटने पर हो जाते हैं। इसमें त्वचा

का बाह्य स्तर नष्ट हो जाता है। किसी ऊँचे स्थान से गिरते समय खुरदरे पदार्थों से रगड़ लगने के कारण जो खुरेचन बन जाते हैं, वे अधिकतर ऐसे स्थानों पर होते हैं जहां कि त्वचा के नीचे अस्थि का भाग हो और वहां पर मांसल भाग बहुत कम हो। ऐसे स्थानों पर प्रायः पिच्चित अथवा उधड़े हुये व्रण भी बन जाते हैं और कभी कभी अति भयङ्कर आघात भी हो जाया करते हैं। इस प्रकार के खुरेचन मिट्टी, धूल इत्यादि से भी आच्छादित हो सकते हैं। नखों के लगने से जो खुरेचन हो जाते हैं, वे किसी लड़ाई झगड़े के कारण ही होते हैं, अतएव यह एक अपराध माना जाता है। इस प्रकार के खुरेचन प्रायः शरीर के खुले हुये भागों जैसे मुँह, हाथ इत्यादि में पाये जाते हैं। इस दशा में क्षत-स्थान के नीचे स्थित धातुओं में रक्तस्राव होता है। दाँत से काटने के कारण जो खुरेचन हो जाते हैं, उनके चिह्न प्रायः गोल होते हैं और उनकी संख्या २ अथवा ४ होती है क्योंकि काटते समय सामने के ऊपर के २ दांतों या सामने के ऊपर और नीचे-दोनों को मिलाकर ४ दांतों के चिह्न बन जाते हैं। इसके अतिरिक्त कभी कभी ये सब चिह्न आपस में मिलकर एक बड़ा खुरेचन बन जाता है। चिह्नों के बीच का स्थान कभी कभी पिच्चित हो जाता है।

मृत्यु से पूर्व और मृत्यूत्तर खुरेचनों में भेदः—

मृत्यु से पूर्व	मृत्यु के बाद
(१) रक्त वारि (Serum) निकलती है।	(१) रक्त वारि नहीं निकलती है।
(२) खुरचे हुये स्थान पर पपड़ी पड़ जाती है।	(२) पपड़ी नहीं पड़ती।
(३) खुरचा हुआ क्षेत्र झुलसता नहीं है।	(३) खुरचा हुआ क्षेत्र झुलस जाता है।
(४) खुरचे हुये क्षेत्र में और उसके आस पास शोथ और रोपण के चिन्ह मिलेंगे।	(४) शोथ और रोपण के चिन्ह नहीं मिलेंगे।

(३) व्रण—

व्रण

छिन्न (Incised)	विद्ध (Punctured)	उधड़े हुये (Lacerated)	पिच्चित (Contused)	बारूद जन्य (Gun-shot)

(I) छिन्न व्रणः—

यह किसी तेज़ धार वाले शस्त्र जैसे चाकू, अस्तुरा, तलवार, कुल्हाड़ी इत्यादि से आघात करने पर बनता है। इस प्रकार के व्रण की लम्बाई—गहराई और चौड़ाई की अपेक्षा अधिक होती है। व्रण के किनारे साफ कटे हुये, चिकने और उठे हुये होते हैं। व्रण का आकार प्रायः टेकुवे (धुरा) की तरह होता है। रक्तवाहिनियों के साफ कट जाने के कारण इस प्रकार के व्रण से अत्यधिक रक्तस्राव होता है जिसके परिणाम स्वरूप मृत्यु तक हो सकती है।

(II) विद्ध व्रणः—

यह किसी तेज़ धार वाले नुकीले शस्त्र जैसे भाला, बर्छी इत्यादि से आघात करने पर बनता है। प्रायः विद्ध व्रण के छिद्र की लम्बाई प्रयुक्त शस्त्र की चौड़ाई से कुछ कम होती है। इस प्रकार के व्रण की गहराई–लम्बाई अथवा मुटाई की अपेक्षा बहुत ज्यादा होती है। इनमें बाह्य रक्तस्राव बहुत कम होता है किन्तु किसी 'जीवन के आधारभूत विशेषांग' (Vital organs), जैसे हृदय, फुफ्फुस और मस्तिष्क के विद्ध हो जाने पर अत्यधिक आभ्यान्तरिक रक्तस्राव हो सकता है। वे व्रण प्रायः बड़े होते हैं जो शस्त्र के अन्दर घुसकर उसी मार्ग से बाहर निकल आने पर होते हैं। और वे व्रण प्रायः छोटे होते हैं जिसमें कि शस्त्र शरीर के अन्दर घुस जाता है और किसी दूसरे मार्ग से बाहर निकल जाता है जैसे तीर और गोली के लगने पर।

(III) उधड़े हुये व्रणः—

किसी खुरदरे पदार्थ से रगड़ लगने से, पशु के दाँत, नाखून, पँजे अथवा सींग के लगने से, रेलवे–दुर्घटना से, किसी मशीन आदि से दब जाने से अथवा

सड़क पर किसी अन्य दुर्घटना के हो जाने से इस प्रकार के व्रण बन जाते हैं। उधड़े हुये व्रण के किनारे कटे हुये, फूले हुये, अनियमित और स्थान च्युत होते हैं। रक्तस्राव कम होता है। बाह्य पदार्थ जैसे मिट्टी, कीचड़, केश, इत्यादि व्रण के ऊपर पाये जा सकते हैं। क्षत स्थान की त्वचा के नीचे रक्तस्राव होता है और धातुयें विदीर्ण हो जाती हैं। कभी कभी यदि क्षत स्थान की सतह के नीचे अस्थि हो तो उसका अस्थिभग्न भी पाया जा सकता है।

(IV) पिच्चित व्रणः—

इस प्रकार के व्रण धारहीन शस्त्र जैसे लाठी, ईंट, पत्थर इत्यादि से अथवा गिर पड़ने से हो जाते हैं। इसमें व्रण के आस पास और उसके नीचे स्थित धातुयें थोड़ा बहुत पिच्चित हो जाती हैं। उनके किनारे अनियमित और अन्दर की ओर को मुड़े हुये होते हैं।

(V) बारूद जन्य व्रणः—

बन्दूक अथवा राइफल की गोली या पिस्तौल के कारतूस इत्यादि के लगने से इस प्रकार के आघात हो जाते हैं और इसमें पिच्चित एवम् उधड़े हुऐ व्रणों की विशेषतायें मिलती हैं। इनका रूप गोली, बन्दूक, राइफल इत्यादि से छूटने के बाद गोली के चलने की गति, गोली चलाने के समय बन्दूक आदि से शरीर तक की दूरी और शरीर पर गोली के लगने के समय का कोण—इन पर निर्भर है। इस प्रकार के व्रण २ तरह के होते हैं:—

(१) गोली के शरीर में प्रविष्ट होने के स्थान का व्रण अथवा छिद्र और

(२) गोली के लगने के बाद शरीर से बाहर निकलने का छिद्र अथवा व्रण।

गोली के प्रविष्ट होने के स्थान का व्रण	गोली के निकलने के स्थान का व्रण
(१) गोली की अपेक्षा व्रण छोटा होगा।	(१) गोली की अपेक्षा व्रण बड़ा होगा।
(२) वस्त्रों के तन्तु और बारूद की गंध मिलेगी।	(२) वस्त्रों के तन्तु और बारूद की गंध नहीं होगी।

गोली के प्रविष्ट होने के स्थान का व्रण	गोली के निकलने के स्थान का व्रण
(३) व्रणोष्ठ अन्दर की ओर मुड़े हुये होंगे।	(३) व्रणोष्ठ अनियमिति और बाहर की ओर मुड़े हुये होंगे।
(४) आस पास की त्वचा झुलसी हुई होंगी और उसमें दाग़ पड़ जायेंगे।	(४) त्वचा में दाग़ और झुलसने के चिन्ह नहीं मिलेंगे।
(५) यदि शरीर पर समकोण बनाते हुये गोली प्रविष्ट हो तो व्रण गोलाकार होगा किन्तु यदि शरीर में तिरछी लगे तो व्रण अंडाकार होगा।	×
(६) व्रण के चारों ओर किनारे किनारे त्वचा के नीचे रक्ताधिक्य होगा।	×

गोली की प्रकृतिः—

[I] छोटी गोली की अपेक्षा बड़ी गोली के व्रण बड़े होंगे।

[II] त्रिकोणाकार गोली की अपेक्षा गोलाकार गोलियों से व्रण बड़े होंगे।

[III] यदि गोली शरीर में समकोण बनाती हुई प्रविष्ट हो तो धातुओं में अत्यधिक उधड़न पायी जायेगी और अस्थियों का अस्थिभग्न भी पाया जा सकता है।

[IV] गोलाकार गोलियों की अपेक्षा त्रिकोणाकार गोलियों से उधड़न कम होती है किन्तु इनसे विद्ध व्रण बन जाते हैं।

[V] गोलाकार गोलियाँ शरीर में प्रविष्ट होने पर टूट जाती हैं किन्तु त्रिकोणाकार गोलियाँ नहीं टूटतीं।

गोली की गतिः—

तीव्र गति से चली हुई गोली के द्वारा शरीर पर स्पष्ट, गोलाकार और पञ्च (Punch) के द्वारा बनाये गये छिद्र की भाँति व्रण बन जाते हैं। किसी अस्थि से टकरा जाने पर भी गोली अपना मार्ग नहीं छोड़ती और प्रायः अस्थियों को तोड़ देती है। मन्द गति से चली हुई गोली

प्रविष्ट होते समय शरीर पर जो व्रण बनाती है, उसके किनारे उधड़े हुये और पिच्चित होते हैं। शरीर के किसी भाग से टकरा जाने पर गोली अपना मार्ग बदल देती है और प्रायः शरीर में ही रह जाती है। गोली जितना ही गहराई तक पहुँच जाती है, उसका क्षत स्थान उतना ही बढ़ता जाता है।

गोली चलाने के स्थान से घायल व्यक्ति की दूरीः—

यदि घायल व्यक्ति के बिलकुल पास से ही गोली चलाई गयी है तो गोली के शरीर में प्रवेश करने के स्थान का व्रण उधड़ा हुआ होगा और उसका क्षेत्र व्रण के चारों ओर लगभग २ या ३ इञ्च तक होगा और उसके आस पास की त्वचा कृष्ण वर्ण की और झुलसी हुई होगी तथा बारूद के कणों के दाग पड़ जायेंगे। क्षत स्थान के बाल झुलस जाते हैं और गैस की लपट से उस स्थान के वस्त्र जल जाते हैं। ४ फीटसे अधिक दूरी से यदि व्यक्ति पर गोली चलाई गई है तो क्षत स्थान की त्वचा न तो कृष्ण वर्ण की होगी और न झुलसी हुई ही।

बन्दूक की छोटी गोली के लगने के प्रभावः—

(I) १ से ३ फीट तक की दूरी से छोटी गोली के लगने परः—

शरीर पर एक छिद्र हो जाता है जिसके किनारे अनियमित और उधड़े हुये होते हैं। बन्दूक के मुख के छिद्र के बराबर के आकार का यह छिद्र होता है और शरीर पर लगने के बाद गोली व्रण में प्रविष्ट होकर इधर उधर छितर बितर जाती है और आभ्यान्तरिक धातुओं को अत्यधिक क्षत पहुंचाती है। क्षतस्थान के आस पास की त्वचा छिलकर कृष्ण वर्ण की हो जाती है और उस पर बारूद के कणों के दाग पड़ जाते हैं।

(II) ६ फीट की दूरी से लगने परः—

बीच में एक बड़ा छिद्र बन जाता है और साथ ही साथ व्यास में क्षत स्थान के करीब २ इञ्च के क्षेत्र में और वहुत से छोटे छोटे छिद्र बन जाते हैं। इस अवस्था में त्वचा न तो छिलती है और न कृष्ण वर्ण की ही होती है किन्तु बारूद के कुछ दाग बन जाते हैं।

(III) १२ फीट की दूरी से लगने पर:—

व्यास में क्षत स्थान के ५ से ८ इञ्च के क्षेत्र में कई एक प्रथक प्रथक छिद्र हो जाते हैं जो कि गोली के साथ रहने वाले छर्रों के कारण होते हैं। इसमें कृष्णवर्णता, छीलन अथवा दाग़ नहीं पाये जाते।

गोली चलाने का समय:—

बन्दूक की नली में बचे हुये अवक्षेप का रासायनिक परीक्षण करके गोली चलाने के समय का निर्णय किया जा सकता है किन्तु यदि गोली चलाने के बाद बन्दूक की नली भली प्रकार साफ़ कर दी गयी हो तो इसका निर्णय नहीं किया जा सकता।

गोली चलाने की दिशा:—

गोली चलने के समय घायल व्यक्ति की स्थिति मालूम करनी चाहिये और फिर गोली के लगने का व्रण और शरीर से बाहर निकलने का व्रण—इन दोनों को जमीन पर एक रेखा के द्वारा मिलाकर रेखा को बढ़ाने से गोली चलाने की दिशा मालूम हो जाती है किन्तु जब इस प्रकार के व्रण शरीर पर नहीं बनते, तब दिशा ज्ञात करना बहुत कठिन है।

शरीरावयवों के क्षत

(Regional Wounds)

शरीर के अवयवों के क्षत निम्नलिखित भागों में विभाजित किये जा सकते हैं:—

(१) शिर—
(क) स्कैल्प (Scalp)
(ख) कपाल (Skull)
(ग) मस्तिष्क (Brain)

(२) मुख—
आँख, कान, नाक, ओठ, दाँत इत्यादि।

(३) ग्रीवा—

वक्ष और शिर के मध्य का भाग।

(४) (क) वक्ष की भित्ति (Thoracic wall)

(ख) हृदय (Heart)

(ग) फुफ्फुस (Lungs)

(५) मेरुदण्ड (Spinal cord)

(६) उदर—

(क) औदरीय भित्ति (Abdominal wall)

(ख) औदरीय अङ्ग (Abdominal organs):—

(I) आमाशय (II) यकृत (III) प्लीहा

(IV) वृक्क (V) अग्न्याशय (VI) मूत्राशय

(VII) गर्भाशय (VIII) वृहत रक्त नलिकायें

(७) बाह्य जननेन्द्रिय—

(क) पुरुषों में:—

(I) शिश्न (II) अण्डकोष

(ख) स्त्रियों में:—

(I) भग (II) योनि

(८) शाखायें—(क) ऊर्ध्व (Superior extrimity)

(ख) निम्न (Inferior extrimity)

(१) शिर

(क) स्कैल्पः—

भारतवर्ष में इस प्रकार के व्रण बहुत पाये जाते हैं। इसमें निम्नलिखित बातें विचारणीय हैं:—

(१) व्रण की प्रकृतिः—

यह स्वकृत, परकृत अथवा आकस्मिक हो सकता है, किन्तु परकृत अधिक होता है।

(२) व्रण के भेदः—

(I) खुरेचनः—गुट्ठल शस्त्रों के प्रहार से और आकस्मिक किसी कठिन वस्तु पर गिरने से होता है।

(II) पिच्चनः—यह बहुत कम होता है। आभ्यान्तरिक रक्तनलिकाओं के विदीर्ण (Rupture) होने से ऐसा हो सकता है।

(III) उधड़े हुये व्रणः—यह बहुत पाया जाता है और गुट्ठल शस्त्रों के प्रहार से होता है।

(IV) छिन्न व्रणः—यह तेज़ धार वाले भारी शस्त्रों के प्रहार से होता है। इसके साथ साथ कपाल वा मस्तिष्क में भी क्षत पाया जा सकता है।

(V) विद्धव्रण—गोली के लगने पर होता है।

(३) शस्त्रों के भेदः—

निम्नलिखित शस्त्रों में किसी से 'स्कैल्प' पर व्रण हो सकते हैं।

(I) गुट्ठल शस्त्रः—लाठी, डण्डा, बेंत इत्यादि।

(II) तेज़ धार वाले शस्त्रः—कुल्हाड़ी, चाकू, रेज़र इत्यादि।

(III) नुकीले शस्त्रः—चाकू, बल्लम, कटार इत्यादि।

(IV) बारूद के शस्त्रः—बन्दूक, राइफल, पिस्तौल इत्यादि।

(४) रक्तस्रावः—

खुले हुये व्रणों में बहुत ज्यादा रक्तस्राव होता है और बन्द व्रणों में रक्त-सञ्चय पाया जाता है।

(५) मृत्युः—

यदि अन्दर की रचनाओं में आघात न पहुँचा हो तो ये व्रण घातक नहीं होते किन्तु व्रण के संक्रमण के कारण जीवाणु उपद्रव पैदा करते हैं—जैसे व्रण पाक, कोथ, उपत्वचा शोथ, विसर्प, धनुर्वात, जीवाणुमयता, मस्तिष्कावरणशोथ इत्यादि, इनसे मृत्यु हो सकती है।

(ख) कपालः—

कपाल के ऊपर आघात लगने की दृष्टि से निम्नलिखित बातें विचारणीय हैं:—

(१) व्रण की प्रकृतिः—

(I) परकृत—अधिक।

(II) स्वकृत—बहुत कम या पागलों में।

(III) आकस्मिक—शिर पर किसी भारी वस्तु के गिरने या शिर का किसी भारी वस्तु पर गिरने से होता है।

(२) व्रण के भेदः—

(I) छिन्न व्रणः--यह किसी भारी शस्त्र के तेज़ धार से होता है—जैसे तलवार, कुल्हाड़ी इत्यादि।

(II) अस्थिभग्न—शिर पर किसी भारी वस्तु के गिरने से, शिर का किसी भारी वस्तु पर गिरने से, किसी गाड़ी के पहिये के नीचे शिर चले जाने से, रेल, मोटर इत्यादि से गिर पड़ने से या छत पर से गिरने से या किसी भारी गुट्टल शस्त्र-जैसे लाठी से प्रहार करने पर कपाल की अस्थियों का भग्न हो जाता है।

भग्न का स्थानः--

शिर के सामने के भाग पर आघात लगने से पुरः कपालास्थि (Frontal Bone) का भग्न हो जाता है। शिर के दाहिने या बायें भाग पर आघात लगने से अस्थिभग्न ऊपर से नीचे या पूर्व से पश्चात् की ओर को होता है। शिर के पश्चात् भाग पर आघात लगने पर भग्न ऊपर की ओर चोटी तक जाता है। किसी भारी वस्तु के पश्चात्-कपाल पर तीव्रता से गिरने पर पश्चिम कपालास्थि का भग्न (Fracture of the occipital bone) हो जाता है और मध्यसीवनी (Sagital suture) प्रथक हो जाती है। बालकों के शिर पर आघात लगने से शिर की सीवनियां प्रथक हो जाती हैं किन्तु युवाअवस्था के बाद प्रायः सीवनियां प्रथक नहीं होतीं।

कपाल पर आघात लगने से स्तब्धता, मस्तिष्कसंक्षोभ (Concussion), मस्तिष्क वृत्तिगा मध्यमा धमनी (Middle meningeal artery) की एक या दोनों शाखाओं के विदीर्ण हो जाने से, रक्तस्राव जन्य पीड़न (Compression), इत्यादि के कारण मृत्यु हो सकती है।

(ग) मस्तिष्कः—

जीवन का महत्वपूर्ण अंग (Vital organ) होने के कारण इस पर आघात लगने से प्रायः मृत्यु हो जाती है।

(१) व्रण के भेदः—

(I) छिन्न व्रणः—तेज़ धार वाले भारी शस्त्रों से आघात लगने पर होता है जैसे तलवार, कुल्हाड़ी इत्यादि।

(II) उधड़े हुये व्रणः—गुट्ठल शस्त्रों जैसे लाठी आदि के आघात से हो जाते हैं।

इसमें स्तब्धता, मस्तिष्क संक्षोभ, मस्तिष्क पीड़न इत्यादि के कारण मृत्यु हो जाती है।

सापेक्ष्य निदानः—

मस्तिष्क पर आघात लगने से मूर्छा उत्पन्न हो सकती है और इस मूर्छा को देखकर अपस्मार, अत्यधिक मद्यपान और अहिफेन विष सेवन का भी भ्रम उत्पन्न हो सकता है। अतएव उनके लक्षणों से परस्पर भेद मालूम कर लेना चाहिये।

(२) मुख

भारतवर्ष में मुख पर आघात अधिक देखे जाते हैं। अपराधी आंख, कान, नाक इत्यादि भागों पर प्रथक प्रथक आघात पहुँचा सकता है। मुख के व्रणों का बहुत जल्दी रोपण हो जाता है किन्तु 'भयंकर आघात' (Grievous hurt) के अन्तर्गत समझे जाते हैं क्योंकि मुख पर आघात लगने से दृष्टि का नाश, श्रवण शक्ति का नाश, आकृति में विकार, या अस्थिभग्न हो सकता है।

मुख पर विभिन्न प्रकार के आघात—

(I) **तेज़ धार वाले शस्त्रः**—जैसे चाकू से नाक काट लेना—यह प्रायः चोरी और व्यभिचार के मामलों में देखा जाता है।

(II) **स्त्रियों के नाक और कान पर आघातः**-चोरी करते समय स्त्रियों के नाक और कान के आभूषणों को शरीर से खींचकर निकाल लेनेसे होता है।

(1II) **आँखों पर आघातः**--व्यभिचार के दण्ड के रूप में किसी नुकीले शस्त्र से प्रहार करने पर आँखों में आघात पहुँचता है। कभी कभी शिर पर लाठी या डंडा मारते समय धोखे से आंख पर आकस्मिक आघात लग जाता है। परिणाम स्वरूप में अक्षिगोलक (Eye-ball) विदीर्ण हो जाता है।

(IV) **कानः**-चोरी और व्यभिचार का दण्ड देने के लिये भारतवर्ष के लोग अपराधी का कान काट लेते हैं क्योंकि यह किसी दुष्कर्म का चिन्ह समझा जाता है।

(V) **अस्थिभग्नः**--किसी गुट्ठल शस्त्र जैसे लाठी से प्रहार करने पर मुख की अस्थियों का भग्न (Fracture) हो जाता है। कभी कभी आपस में झगड़ा करते हुये मुँह पर कस कर घूँसा पड़ने से दांत टूट जाते हैं। कभी कभी घूँसे या लाठी से नासिकास्थि का भग्न भी हो जाता है।

मुख का आघात घातक नहीं होता किन्तु जब इस प्रकार के आघात मस्तिष्क तक पहुँच जाते हैं या मस्तिष्क में शोथ उत्पन्न कर देते हैं, तब मृत्यु की अधिक सम्भावना रहती है।

(३) ग्रीवा

व्यवहारायुर्वेद की दृष्टि से ग्रीवा प्रदेश के आघातों का बहुत महत्व होता है क्योंकि मारने वाले व्यक्ति और आत्महत्या करने वाले व्यक्ति इसी स्थान पर आघात पहुँचाने की चेष्टा करते हैं।

आघात के भेदः--

(I) पिच्चन (II) खुरेचन (III) छिन्न व्रण (IV) विद्ध व्रण (V) उधड़े हुये व्रण।

(I) **पिच्चन और** (II) **खुरेचनः--**

ये फाँसी, गला घुटना, और कंठरोध के कारण हो सकते हैं।

(III) **छिन्न व्रणः—**

यह शत्रु द्वारा किसी तेज़ धार वाले शस्त्र से ग्रीवा पर प्रहार करने से होता है। आत्महत्या के लिये किये गये आघात भी छिन्न व्रण उत्पन्न करते हैं। ग्रीवा के पीछे के भाग में यह अधिक घातक होता है क्योंकि मेरुदण्ड (Spinal cord) पास ही में होता है।

(IV) **विद्ध व्रणः--**

यह ग्रीवा के आगे के भाग में हो सकता है। इसमें रक्तस्राव, रक्त के जमने या श्वासावरोध के कारण मृत्यु हो सकती है।

(४) वक्ष

इस स्थान पर परकृत और स्वकृत आघात बहुत ज्यादा देखने में आते हैं। आकस्मिक आघात भी अधिक होते हैं ।

आघात के भेदः—

(I) **खुरेचनः**—सड़क रेल इत्यादि से जो दुर्घटनायें हो जाती हैं, उनमें अन्य स्थानों पर आघात के साथ साथ वक्षकी भित्ति पर भी खुरेचन हो सकतेहैं ।

(II) **पिच्चनः**—सड़क, रेल इत्यादि की दुर्घटना में वक्ष का पिच्चन पाया जा सकता है । इसके अतिरिक्त किसी गुट्ठल शस्त्र जैसे लाठी से आघात करने पर भी वृक्ष का पिच्चन सम्भव है। इस स्थान पर पर्शुकाओं और कशेरुकाओं के अस्थिभग्न हो जाते हैं और हृदय, फुफ्फुस इत्यादि रचनाओं पर भयंकर आघात भी पाये जा सकते हैं। आघात लगने के तत्काल बाद पिच्चन प्रकट हो जाता है ।

(III) **छिन्न व्रणः**—किसी तेज़ धार वाले भारी शस्त्र जैसे तलवार से आघात करने पर वक्ष पर छिन्न व्रण मिलते हैं। ये परकृत होते हैं और स्कन्ध प्रदेश तथा पीठ पर वक्ष की अपेक्षा अधिक पाये जाते हैं ।

(IV) **विद्ध व्रण**—वक्ष पर विशेषतया हृद-प्रदेश पर इस प्रकार के व्रण अधिक पाये जाते हैं और ये परकृत अधिक होते हैं । स्वकृत बहुत कम देखने में आते हैं। परकृत व्रणों की संख्या एक से अधिक होती है और ये व्रण प्रायः भयंकर होते हैं तथा शरीर के विभिन्न भागों पर भी आघात पाये जायेंगे। स्वकृत व्रण संख्या में एक होता है। यदि दो या तीन स्वकृत व्रण किये भी जायें तो प्रायः उनमें से एक काफी बड़ा और भयंकर होता है और बाकी एक या दो छोटे या साधारण होते हैं। एक से अधिक भयंकर व्रणों के मिलने पर परकृत आघात की पूर्ण सम्भावना रहती है ।

वक्ष पर जो आघात किये जाते हैं, उनसे फुफ्फुस को क्षति पहुँचने की अधिक सम्भावना रहती है। फुफ्फुसोंपर आघात होने से उधड़े हुये व्रण, छिन्न व्रण या विद्ध व्रण हो सकते हैं। इसमें रक्तस्राव या जीवाणुओं के संक्रमण से मृत्यु हो जाती है ।

हृदय पर विद्ध व्रणों के कारण तत्काल मृत्यु हो सकती है। रोगी १००-१५० गज़ की दूरी तक व्रण होने के बाद भी चल सकता है। इस अवस्था में रोगी अधिक नहीं बोल सकता। हां, अपने शत्रु का नाम ले ले कर गालियां देता हुआ सुना जा सकता है। इसके अतिरिक्त वह अपनी सहायता या रक्षा के लिये भी चिल्लाता हुआ पाया जा सकता है। हृदय पर व्रण हो जाने पर स्तब्धता या रक्तस्राव के कारण मृत्यु हो सकती है।

वक्ष की वृहत् रक्त नलिकाओं जैसे महाधमनी, ऊर्ध्व महाशिरा और निम्न महाशिरा पर आघात लगने से और उनके कट जाने से रक्तस्राव के कारण सद्यः मृत्तु हो सकती है।

(५) मेरुदण्ड

(I) तृतीय ग्रैवेयक कशेरुका के ऊपर मेरुदण्ड के ऊपरी भाग पर आघात लगने से श्वास क्रिया की पेशियों का पक्षाघात हो जाने से तत्काल मृत्यु हो जाती है।

(II) मेरुदण्ड का संक्षोभः—रेल आदि की दुर्घटनाओं या शस्त्रों के प्रहार आदि से मेरुदण्ड में शोथ और मृदुता उत्पन्न हो जाती है और फिर पक्षाघात उत्पन्न हो जाता है।

(III) मेरुदण्ड के नीचे के भाग में तीव्राघातः—इसमें तत्काल मृत्यु नहीं होती। इसके जो उपद्रव होते हैं, उनके कारण आघात लगने से बहुत समय के बाद मृत्यु हो सकती है।

(६) उदर

औदरीय भित्ति में निम्न प्रकार के आघात पाये जा सकते हैं:—

(I) खुरेचन —

सड़क या रेल आदि की दुर्घटना में अन्य आघातों के साथ साथ औदरीय भित्ति पर खुरेचन भी हो सकते हैं।

(II) पिच्चनः—

औदरीय भित्ति पर इस प्रकार के आघात बहुत कम होते हैं।

(III) छिन्न और (IV) विद्ध व्रणः—

तेज़ धार वाले और नुकीले शस्त्रों से इस प्रकार के आघात किये जाते हैं। ये परकृत अधिक होते हैं। स्वकृत और आकस्मिक बहुत कम होते हैं।

ये सब आघात यदि औदरीय अङ्गों और रचनाओं को क्षत न पहुँचायें तो घातक नहीं होते। निम्नलिखित कारणों से इसमें मृत्यु हो सकती हैः—

(I) स्तब्धताः—

उदर पर आघात लगने से हृदयावसाद के कारण तत्काल मृत्यु हो सकती है।

(II) रक्तस्रावः—

यकृत, प्लीहा इत्यादि औदरीय अङ्गों के विदीर्ण हो जाने से या औदरीय बृहत रक्त-नलिकाओं के फट जाने या कट जाने से रक्तस्राव होकर कुछ समय के अन्दर मृत्यु हो सकती है।

औदरीय अङ्गों या रचनाओं पर आघात—

(I) महाप्राचीराः—

रेल आदि की दुर्घटनाओं में उदर प्रदेश पर आघात लगने से महाप्राचीरा विदीर्ण हो सकती है।

(II) आमाशयः—

आमाशयिक व्रण, कैन्सर (Cancer), इत्यादि वा किसी दुर्घटना के कारण आमाशय भी विदीर्ण हो सकता है।

(III) मलाशयः—

भारतवर्ष में चोरी, व्यभिचार, गुदमैथुन इत्यादि के अपराधियों को दण्ड के रूप में गुदमार्ग में डंडा प्रवेश करते हुये भी लोगों को देखा गया है और इस कारण से मलाशय और गुदा पर आघात पाये जा सकते हैं।

(IV) यकृतः—

रेल, मोटर, गाड़ी इत्यादि भारी गाड़ियों की पहिया उदर प्रवेश के ऊपर से निकल जाने से, किसी ऊँचे स्थान से गिर पड़ने से, उदर-प्रदेश पर किसी भारी वस्तु के गिरने से या अन्य किसी प्रकार का दबाव पड़ने से यकृत विदीर्ण हो सकता है। ऐसी अवस्था में रोगी की तत्काल मृत्यु प्रायः नहीं होती है किन्तु कुछ समय के अन्दर रोगी की मृत्यु हो सकती है।

(V) प्लीहाः—

मलेरिया के बार बार आक्रमण से, किसी दुर्घटना में प्लीहा पर आघात लगने या किसी ऊँचे स्थान से गिर पड़ने से प्लीहा विदीर्ण हो सकती है। इसमें भी कुछ समय के अन्दर ही मृत्यु होती है।

(VI) गर्भाशयः—

गर्भिणी स्त्री में गर्भाशय पर धक्का लगने से गर्भाशय विदीर्ण हो सकता है। अपराध जन्य गर्भपात कराने के परिणाम स्वरूप, गर्भाशय में लकड़ी प्रवेश करने से वा किसी अन्य कारण से ऐसा होता है।

(VII) इसी प्रकार वृक्क, मूत्राशय, अग्न्याशय, इत्यादि अङ्ग भी इन्ही कारणों में से किसी से विदीर्ण हो सकते हैं।

(७) बाह्यजननेन्द्रिय

(I) शिश्न और अण्डकोषः—

व्यभिचार और बलात्कार के अपराध में दण्ड देने के लिये कुछ लोग अपराधी के शिश्न और अण्ड कोष को क्रोधवश काट देते हैं। पागलों में भी यह प्रवृत्ति पायी जाती है।

(II) भग और योनिः—

व्यभिचार का सन्देह होने पर घर की स्त्रियाँ इस प्रकार की स्त्री के भग और योनि को गरम गरम चिमटा, करछुल इत्यादि से दाग़ देती हैं। इसके अतिरिक्त परकृत या आकस्मिक आघात लगने से भी रक्तस्राव होकर मृत्यु हो सकती है। अपराध जन्य गर्भपात कराते समय या उसके लिये यत्न करते समय योनि क्षतयुक्त हो सकती है। बलात्कार या स्त्री की इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक मैथुन करने से योनि क्षतयुक्त हो जाती है।

(८) ऊर्ध्व और निम्न शाखायें

हाथ पैरों पर आघात लगने से किसी धमनी के कट जाने से रक्तस्राव होकर मृत्यु हो जाती है। स्तब्धता, श्रम वा धनुर्वात, कोथ, उपत्वचा शोथ, विसर्प इत्यादि व्याधियों के कारण भी मृत्यु हो सकती है।

छठवाँ अध्याय

फाँसी[1]

परिभाषा:—

जब ग्रीवा के चारों ओर एक रस्सी अथवा बंधन बांधकर व्यक्ति को लटकाया जाता है तो उसके शरीर के भार के कारण सरकफंदा कस जाता है जिससे वायु-मार्ग (Air passage) संकुचित हो जाता है और वायु वायु-कोष्टों (Alveoli) में नहीं पहुँचती, इसको फाँसी या गलपाश कहते हैं—और यह श्वासावरोध जन्य मृत्यु का एक भेद है।

गलपाश द्वारा मृत्यु के निम्नलिखित कारण हैं:—

(१) श्वासावरोधः—

इसके द्वारा मृत्यु उस समय होती है जब बन्धन ग्रीवा के नीचे के भाग में बाँधा जाता है जिससे श्वास-प्रणाली (Trachea) के ऊपर दबाव पड़ता है।

(२) एपाप्लेक्सी (Apoplxey):—

जब ग्रीवा पर किसी मृदु वस्तु का चौड़ा बन्धन बाँधा जाता है तो वह ग्रीवा पर स्थित मृदु धातुओं में गहराई तक नहीं धंसता, जिससे मस्तिष्क से लौटने वाला रक्त वापस नहीं हो पाता अर्थात्, रुक जाता है। इस कारण से मस्तिष्क और उसकी कलाओं में अत्यधिक रक्ताधिक्य हो जाता है।

(३) श्वासावरोध और एपाप्लेक्सी (Apoplexy) **मिश्रितः—**

गलपाश द्वारा मृत्यु प्रायः इसी से होती है।

(४) मूर्छा[2]: —

जब गलपाल में सरकफन्दे के लिये पतली रस्सी का प्रयोग किया जाता है, जो कि ग्रीवा में स्थित मृदु धातुओं में गहराई तक धँस जाती है, तो प्राणदा नाड़ियों पर दबाव पड़ने के कारण हृदय अकस्मात रुक जाता है।

(५) सन्यास[3]:—

ग्रीवा पर स्थित बन्धन के कारण जब मस्तिष्क में रक्तपरिभ्रमण पूर्णतया

---

1. Hanging, 2. Syncope, 3, Coma,

रुक जाता है, तब ऐसा होता है। इसमें मस्तिष्क एवम् उसकी कलाओं में किसी प्रकार का स्पष्ट परिवर्तन किये बिना ही बेहोशी होकर मृत्यु हो जाती है।

(६) ग्रैवेयक कशेरुकाओं का अस्थिभग्न अथवा विश्लेषण:—

यह न्याय-सम्बन्धी फांसी में प्रायः मृत्यु का कारण होता है। सुषुम्ना पर दबाव अथवा आघात के कारण तत्क्षण मृत्यु हो जाती है। किन्तु यदि अस्थि-भग्न अथवा विश्लेषित कशेरुकाओं के द्वारा सुषम्ना पर आघात नहीं हुआ है तो उपरोक्त कारणों में से किसी न किसी से मृत्यु हो जाती है। न्याय-सम्बन्धी फाँसी में प्रायः प्रथम और द्वितीय ग्रैवेयक कशेरुकाओं का अस्थिभग्न हो जाता है।

लक्षण:—

(क)—मूर्छावस्था से पूर्व—

(१) तीव्र पीड़ा होती है।

(२) कानों में तीव्र ध्वनि होती है।

(३) आँखों के सामने चकाचौंधी मालूम होती है।

(४) अत्यधिक मानसिक विभ्रम हो जाता है।

(५) अबद्ध विचार होते हैं।

(ख) मूर्छित होने के बाद—

(६) मुख, ओष्ठ और नख नील वर्ण के हो जाते हैं।

(७) मुख के कोण से राल टपकती है।

(८) मल, मूत्र और शुक्र का स्वतः त्याग हो जाता है।

(९) श्वास-क्रिया रुक जाती है।

(१०) ८ या १० मिनट तक हृदय की गति होती रहती है। तदनन्तर धीरे धीरे करके हृदय भी रुक जाता है।

चिकित्सा:—

(१) रोगी को तुरन्त नीचे लिटा कर ग्रीवा के बन्धन खोल देना चाहिये।

(२) कृत्रिमश्वास-क्रिया करनी चाहिये।

(३) विशुद्ध एवम् स्वच्छ वायु अथवा अमोनिया की व्यवस्था करनी चाहिये ।

(४) मुख और सिर पर शीतल-क्रिया करनी चाहिये ।

(५) यदि शरीर शीत हो तो उष्ण उपनाह, अभ्यंग अथवा उष्ण जल की बोतलों द्वारा शरीर के ताप की रक्षा करनी चाहिये ।

(६) उत्तेजना के लिये स्ट्रैकनीन, एड्रेनलीन क्लोराइड आदि के इन्जेक्शन देने चाहियें ।

(७) ब्रॉंडी मुख अथवा मल द्वार द्वारा प्रवेश करना चाहिये ।

(८) वक्ष, उदर एवम् पिंडलियों पर राई का प्लास्टर लगा सकते हैं ।

(९) यदि हृदय-वृद्धि के चिन्ह मिलें तो शिरा द्वारा फस्त खोल देना चाहिये ।

मृत्यु के भेद—

(१) तत्काल मृत्यु—

(क) न्याय सम्बन्धी फाँसी में ।

(ख) प्राणदा नाड़ियों पर दबाव पड़ने के कारण हृदय की गति अचानक रुक जाने से ।

(२) शीघ्रागामी मृत्यु—

(क) यदि मृत्यु का कारण केवल श्वासावरोध हैं ।

(ख) यदि श्वासावरोध और एपोप्लैक्सी के मिश्रण से मृत्यु हुई है ।

(३) शनैः आगामी मृत्युः—

(क) यदि मृत्यु का कारण केवल एपोप्लैक्सी है ।

(ख) यदि मृत्यु सन्यास के कारण हो ।

साधारणतया फांसी का मृत्यु-काल ५ से ८ मिनट है ।

मृत्यूत्तर रूप—

[क] बाह्यः—

(१) बन्धन चिन्ह के विवरणः—यह बन्धन की प्रकृति एवम् बाँधने की विधि पर निर्भर है ।

(I) चिन्ह प्रायः तिरछा और ग्रीवा के ऊपर की ओर स्थित होता है और ग्रीवा के चारों ओर पूरा चक्कर नहीं लगाता।

(II) यदि लटकाने से पूर्व बन्धन कसकर और अच्छी तरह से बाँधा गया है तो चिन्ह ग्रीवा के नीचे के भाग में तिर्यकगामी-गोलाकार और ग्रीवा के चारों ओर पूरा चक्कर लगायेगा।

(III) बन्धन का चिन्ह हल्का, या धीमा हो सकता है और उसके द्वारा जो हल्की सी लकीर या झुर्री पड़ेगी, वह निम्न बातों पर निर्भर है:—

(क) बन्धन के कसने का प्रकार।
(ख) रस्सी का पतलापन।
(ग) लटकाने का समय।
(घ) शरीर का भार।

फांसी में इस प्रकार बन्धन के द्वारा जो हल्की सी रेखा पड़ जाती है, उसका वर्ण प्रायः गहरा भूरा पाया जाता है किन्तु यह चिन्ह बहुत हल्का अथवा बिलकुल गायब हो सकता है जब कि शरीर किसी चौड़े और मृदु सरकफन्दे के द्वारा बहुत थोड़े समय तक लटकाया गया हो।

(२) अन्य बाह्य रूप:—

(I) चेहरा पीत वर्ण का होगा।

(II) मुख के कोण से एक सीधी रेखा में छाती पर राल टपकती होगी।

(III) पुतलियाँ प्रसारित होंगी।

(IV) ओष्ठ, मुख और नखः—नील वर्ण के होंगे।

(V) मल-मूत्र त्याग के चिन्ह होंगे।

(VI) पुरुषों में शिश्न फूला हुआ होगा और वस्त्रों तथा शरीर पर शुक्र के चिन्ह मिलेंगे।

(VII) यदि शरीर को अधिक समय तक लटकाया गया होगा तो मुख शोथ युक्त और नीलवर्ण का होगा।

आभ्यान्तरिक चिन्ह:—

(१) हृदय के दक्षिण कोष्ठों में गहरे रंग का पतला रक्त भरा होगा और वाम कोष्ठ प्रायः रिक्त होते हैं।

(२) न्याय सम्बन्धी फाँसी में ग्रीवा में स्थित मृदु रचनायें पिच्चित होकर उधड़ी हुई मिलेंगी ।

(३) न्यायसम्बन्धी फांसी में प्रथम और द्वितीय ग्रैवेयक कशेरुकाओं का अस्थिभग्न अथवा विश्लेषण पाया जायेगा ।

(४) शरीर के समस्त आभ्यान्तरिक अङ्गों—जैसे प्लीहा, यकृत, वृक्क, फुफ्फुस, आमाशय, आँत, स्वर यन्त्र, श्वास-प्रणाली, मस्तिष्क और उसकी कलाओं में कुछ न कुछ रक्ताधिक्य पाया जायेगा ।

जीवन काल में फाँसी द्वारा मृत्यु होने के चिन्ह—

(१) मुख के कोण से एक सीधी रेखा में राल का वक्ष-स्थल पर टपकना—सबसे अधिक विश्वासनीय चिन्ह है ।

(२) मल-मूत्र का स्वतः त्याग ।

(३) शिश्न फूला हुआ होना ।

(४) वस्त्रों पर शुक्र के धब्बों का होना ।

व्यवहारायुर्वेद सम्बन्धी प्रश्नः—

फाँसी द्वारा मृत्यु होने के मामले में निम्नलिखित प्रश्न हो सकते हैंः—

(१) क्या मृत्यु का कारण फाँसी है ?

(२) यदि मृत्यु का कारण फाँसी ही है तो वह स्वकृत है, परकृत है अथवा आकस्मिक है ?

[१] क्या मृत्यु का कारण फाँसी है ?

हिन्दुस्थान में प्रायः आत्महत्या फाँसी लगा कर मरने से भी होती है; अतएव कोई भी व्यक्ति अपने शत्रु को तुरन्त मारकर किसी वृक्ष की शाखा, मन्दिर अथवा मकान की छत पर से लटका सकता है ताकि उसके अपराध एवम् परहत्या का पता न लग सके । अतएव यह आवश्यक है कि मृत्यु का कारण फांसी है अथवा कोई अन्य कारण है, इसका निर्णय किया जाय, एतदर्थ निम्नलिखित बातों पर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता हैः—

(१) बन्धन के चिन्हः—

(क) बन्धन-चिन्ह की उपस्थितिः—ग्रीवा पर लाक्षणिक तिरछे बन्धन के

चिन्ह का उपस्थित होना ही कोई आवश्यक सूचक नहीं है कि मृत्यु फाँसी द्वारा ही हुई है क्योंकि ऐसा निम्नलिखित कारणों से भी हो सकता है:—

(I) मृत्यु के पश्चात तुरन्त या २-३ घण्टे के अन्दर शरीर को लटका दिया जाये।

(II) जीवन काल में अथवा मृत्यूत्तर ग्रीवा के चारों ओर एक बन्धन बाँधकर ज़मीन पर शरीर को घिरीया जाये। किन्तु इस अवस्था में शरीर पर छिलने तथा खरोंचन के चिन्ह पाये जायेंगे जिनसे रक्तस्राव अथवा व्रण हो जायेंगे—(जीवन-काल में) मृत्यु के पश्चात इन स्थानों पर श्वेत चिन्ह होंगे, त्वचा सिकुड़ी हुई होगी और इनसे रक्तस्राव नहीं होगा।

(ख) बन्धन-चिन्ह की अनुपस्थिति:—बन्धन चिह्न का ग्रीवा के चारों ओर अनुपस्थित होना भी यह नहीं सूचित करता कि मृत्यु फाँसी के द्वारा नहीं हो सकती क्योंकि निम्नलिखित अवस्थाओं में ग्रीवा पर चिह्न नहीं हो सकते:—

(I) यदि प्रयुक्त बन्धन चौड़ा और मृदु हो।

(II) यदि लटकाने का समय थोड़ा हो।

(२) मस्तिष्क:—

निस्सन्दिग्ध फाँसी द्वारा मृत्यु में मस्तिष्क साधारण अथवा स्वस्थावस्था में पाया जा सकता है, इसका कारण रक्त परिभ्रमण का पूर्ण अवरोध और सन्यास के परिणाम स्वरूप मृत्यु का होना है जो ग्रीवा की रक्तनलिकाओं में दबाव पड़ने से होता है। दूसरे मस्तिष्क और उसकी कलाओं में अत्यधिक रक्ताधिक्य भी हो सकता है—यह उस समय हो सकता है जब कि शिरा गत रक्त परिभ्रमण रुक जाता है जिसका कारण चौड़ा और मृदु बन्धन है जो कि शिराओं की पतली दीवारों पर दबाव डालता है जिससे मस्तिष्क से शिरागत रक्त का लौटना रुक जाता है और जिससे धमनी-गत रक्त परिभ्रमण को कोई रुकावट नहीं होती!

[२] क्या मृत्यु का कारण स्वकृत, परकृत अथवा आकस्मिक है?

(क) निम्नलिखित अवस्थाओं में मृत्यु का कारण स्वकृत नहीं हो सकता:—

(I) यदि शरीर इस प्रकार से लटका हुआ पाया जाय कि मरने वाला व्यक्ति स्वयं उस प्रकार से न कर सकता हो।

(II) यदि उसके शरीर पर ऐसे यांत्रिक आघात पाये जायें कि जिससे सम्भवतः मृत्यु तत्काल हो जाये और वह कहीं पर लटका हुआ पाया जाये।

(ख) परकृतः—यह बहुत कम होता है केवल निम्नलिखित अवस्थाओंमें सम्भव हो सकता है:—

(I) जब कि मरने वाला व्यक्ति जीवितावस्था के समय सोया हुआ हो, बेहोश हो अथवा किसी निद्रालु विष के प्रभाव में हो।

(II) जब कि मरने वाला व्यक्ति कोई बालक हो, जो कि अपनी रक्षा करने में असमर्थ हो।

(III) जब कि कई व्यक्ति मिलकर किसी एक व्यक्ति को फाँसी पर लटका दें।

(ग) आकस्मिकः—यह बहुत कम होता है केवल निम्नलिखित अवस्थाओं में हो भी सकता है:—

(I) बच्चों में:—जब गले में रस्सी डालकर खेल रहे हों।

(II) युवकों में:—फाँसी की नुमायश दिखलाते समय यदि अधिक समय तक लटकाये रक्खा जाये।
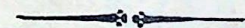
सातवाँ अध्याय

गला घोटने से मृत्यु और उसके चिह्न

कंठरोध (Strangulation):—

परिभाषा:—

कण्ठरोध तीव्र श्वासावरोध जन्य मृत्यु का एक भेद है जिसमें मरने वाले व्यक्ति के शरीर के भार के अतिरिक्त किसी अन्य साधन से ग्रीवा में वायु मार्गों के संकुचित हो जाने से मृत्यु हो जाती है।

किसी व्यक्ति को कण्ठरोध के द्वारा मार डालने के लिये बन्धन, गला

घोटना, लाठी, बाँस, डन्डे आदि साधनों का प्रयोग किया जाता है। इससे मृत्यु प्रायः श्वासावरोध और एपाप्लेक्सी (Apoplexv) के मिश्रण से होती है, किन्तु फाँसी की भाँति अन्य विधियों से भी मृत्यु हो सकती है।

मृत्यूत्तर रूपः—

इसमें प्रायः वही चिह्न मिलते हैं जो कि फाँसी में। केवल निम्नलिखित भेद पाये जाते हैं:—

(१) बन्धनः—

(क) बन्धन के चिह्न प्रायः तिर्यकगामी, गोलाकार, ग्रीवा के नीचे के भाग में और ग्रीवा के चारों ओर लगातार चक्कर के रूप में पाये जाते हैं। यदि शरीर को घिर्राया गया होगा तो यह तिरछा और ग्रीवा के ऊपर के भाग में होगा और ग्रीवा के चारों ओर लगातार चक्कर के रूप में नहीं होगा।

(ख) बन्धन के चिह्न के साथ साथ खरोचन और त्वचा के नीचे रक्ताधिक्य फाँसी की अपेक्षा कण्ठरोध में अधिकतर पाया जाता है।

(२) गला घोटनाः—

यह प्रायः बच्चों और स्त्रियों में अधिक होता है। इसमें ग्रीवा पर पिच्चन और अङ्गुलियों के गहरे रङ्ग के चिह्न पाये जाते हैं, जिनकी स्थिति, आकार, संख्या और प्रकृति—एक अथवा दोनों हाथों का प्रयोग, प्रयुक्त शक्ति आदि पर निर्भर है।

(३) लाठी, डण्डे आदि के द्वाराः—

इसमें वट्ठकास्थि और स्वरयन्त्र की तरुणास्थियों का अस्थि भग्न पाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त स्थानिक खुरेचन और छिलने के निशान भी पाये जायेंगे।

कण्ठरोध के चिह्नः—

(१) प्रायः जिह्वा बाहर को निकली हुई होती है, उसमें शोथ हो सकता है और उसका वर्ण कृष्ण होगा।

(२) फुफ्फुसों में रक्ताधिक्य होगा। काटने पर उसमें से गहरे कृष्ण वर्ण का रक्त निकलेगा।

(३) ग्रीवा में बन्धन-चिह्न के स्थान पर त्वचा के नीचे रक्ताधिक्य या रक्तगण्ड मिलेंगे और ग्रीवा पर प्रायः पिच्चन भी पाया जायेगा।

(४) यदि मृत्यु परकृत है तो मुख, हाथ, पैर, सिर आदि पर लड़ाई झगड़े के कारण खुरेचन, पिच्चन आदि के चिह्न मिलेंगे।

कण्ठरोध का निदान:—

(१) अंगुलियों, नखों अथवा डन्डे आदि के दबाव से बने हुये चिह्न।

(२) लड़ाई झगड़े के चिह्न।

(३) श्वासावरोध जन्यमृत्यु के चिह्न।

(४) मृत्यु के अन्य कारणों की अनुपस्थिति।

(५) मुख के कोण से छाती पर लालारस के टपकने के चिह्नों की अनुपस्थिति।

व्यवहारायुर्वेद सम्बन्धी प्रश्न:—

(१) क्या मृत्यु का कारण कण्ठरोध था?

(२) कण्ठरोध स्वकृत, परकृत अथवा आकस्मिक था?

(१) क्या मृत्यु का कारण कण्ठरोध था?

कण्ठरोध के द्वारा मृत्यु के चिह्न और लड़ाई-झगड़े के चिह्नों का पाया जाना—यह बतलाता है कि मृत्यु कण्ठरोध के कारण ही हुई है।

इस दशा में ग्रीवा के चारों ओर हल्का किन्तु स्पष्ट चिह्न—हाथ की अंगुलियों, नखों आदि के पाये जायेंगे।

(२) कण्ठरोध स्वकृत परकृत अथवा आकस्मिक था?

(क) स्वकृतः—बहुत कम सम्भव है, किन्तु निम्नलिखित विधि से किया भी जा सकता है:—

(I) बन्धन को ग्रीवा के चारों ओर एक से अधिक बार घुमाकर बाँधने से।

(II) बन्धन में एक डण्डा बाँधकर कसने से।

(ख) परकृतः—अधिकतर कण्ठरोध परकृत ही होता है। इसमें निम्नलिखित बातें पायी जाती हैं:—

(I) बन्धन में एक से अधिक गाँठों का होना।

(II) ग्रीवा वा शरीर के अन्य भागों पर लड़ाई झगड़े के चिह्नों का पाया जाना।

(III) यदि मृत व्यक्ति के हाथ, पैर इस तरह से बंधे हों कि वह स्वयं वैसा न कर सकता हो।

(ग) आकस्मिकः—ऐसा निम्नलिखित दशाओं में हो सकता है:—

(I) मज़दूर बोरों को पीठ पर लादते हैं और उसको एक रस्सी (पट्टा) के आश्रय पर रखते हैं जो कि सिर के ऊपर भी होकर जाती है, यदि किसी कारण से वह रस्सी खसक कर ग्रीवा पर आ जाये तो अत्यधिक भार के कारण कण्ठरोध हो सकता है।

(II) किसी चलती हुई मशीन में ग्रीवा का फँस जाना।

(III) वस्त्रों को ग्रीवा पर बाँधकर अधिक कसने से।

फाँसा (गलपाश) और कंठरोध में भेद:—

फाँसी	कंठरोध
(१) प्रायः स्वकृत होता है।	(१) प्रायः परकृत होता है।
(२) बन्धन के चिन्ह तिर्यकगामी होते हैं, ग्रीवा के ऊपर के भाग में होते हैं और चारों ओर लगातार चक्कर के रूप में ग्रीवा में नहीं पाये जाते।	(२) बन्धन का चिन्ह बेड़ा होता है ग्रीवा के नीचे के भाग में होता है और चारों ओर लगातार चक्कर के रूप में ग्रीवा में पाया जाता है।
(३) बन्धन-चिन्ह के नीचे स्थित त्वगीय धातुयें श्वेत, कड़ी और चमकदार होती हैं।	(३) बन्धन-चिन्ह के नीचे स्थित त्वगीय धातुओं में रक्ताधिक्य पाया जाता है।
(४) बन्धन चिन्ह के किनारों के समीपस्थ भाग में खुरेचन और रक्ताधिक्य बहुत कम पाया जाता है।	(४) बन्धन-चिन्ह के किनारों के समीपस्थ भाग में खुरेचन और रक्ताधिक्य अधिकतर पाया जाता है।
(५) ग्रीवा की पेशियों में आघात कम होता है।	(५) ग्रीवा की पेशियों में आघात अधिकतर होता है।

फाँसी	कंठरोध
(६) केवल Long drops में मन्या धमनी की आन्तरिक स्तरें विदीर्ण हो जाती हैं।	(६) साधारणतया मन्या धमनी की आन्तरिक स्तरें विदीर्ण पायी जाती हैं।
(७) ग्रैवेयक कशेरुकाओं का अस्थिभग्न अथवा विश्लेषण अधिकतर न्याय सम्बन्धित फाँसी में पाया जाता है।	(७) ग्रैवेयक कशेरुकाओं का अस्थिभग्न अथवा विश्लेषण बहुत कम पाया जाता है।
(८) खुरेचन, उधड़न, पिचन आदि लड़ाई-झगड़े के चिन्ह मुख, ग्रीवा और शरीर के अन्य भागों पर प्रायः नहीं पाये जाते।	(८) खुरेचन, उधड़न, पिचन आदि लड़ाई-झगड़े के चिन्ह मुख, ग्रीवा और शरीर के अन्य भागों पर प्रायः उपस्थित मिलते हैं।
(६) प्रायः मुख मण्डल पीत वर्ण का होता है और त्वचा के नीचे बुंदियों के रूप में रक्तस्राव नहीं पाया जाता।	(९) मुख मण्डल नीलवर्ण का होता है और त्वचा के नीचे बुंदियों के रूप में रक्तस्राव पाया जाता है।
(१०) ग्रीवा विस्तृत और लम्बी पड़ जाती है।	(१०) ग्रीवा विस्तृत और लम्बी नहीं पड़ती।
(११) श्वासावरोध के वाह्य चिन्ह प्रायः सम्यकतया प्रदर्शित नहीं होते।	(११) श्वसावरोध के बाह्य चिन्ह सम्यकतया प्रदर्शित होते हैं।
(१२) कर्ण, नासिका और मुख से रक्तस्राव बहुत कम देखने में आता है।	(१२) कर्ण, नासिका और मुख से रक्तस्राव हो सकता है।
(१३) मुख के कोणसे सीधी रेखा में लालारस छाती पर टपकता है।	(१३) मुख के कोण से लालारस छाती पर नहीं टपकता।
(१४) फुफ्फुस की सतह पर Emphysematous patches नहीं पाये जाते।	(१४) फुफ्फुस की सतह पर Emphysematous patches पाये जा सकते हैं।

दम घुटना[1]

परिभाषा:—

श्वासावरोध जन्य मृत्यु का वह रूप है जिसमें ग्रीवा पर दबाव न पड़े, अपितु अन्य किसी विधि से फुफ्फुसों से वायु बाहर निकल जाने के परिणाम स्वरूप मृत्यु हो जाये।

कारण:—

दम घुटने के निम्नलिखित कारण हैं:—

(१) मुख और नासिका का बन्द होना।

(२) अन्दर से वायु-मार्गों का अवरोध।

(३) वक्ष पर दबाव।

(४) ओषजन से अतिरिक्त गैसों का सूँघना।

(१) मुख और नासिका का बन्द होना:—

(क) आकस्मिक—निद्रा-काल में माता अथवा परिचारिकाओं का शिशु और बच्चों के ऊपर अकस्मात् लेट जाना।

(ख) परकृत—हाथ, वस्त्र आदि से मुख और नासिका को बन्द कर देना—शिशुहत्या और बालहत्या की एक सामान्य रीति है।

(ग) स्वकृत—बहुत कम।

(२) अन्दर से वायु-मार्गों का अवरोध:—

(क) माँस का टुकड़ा, फलों की गुठली, बटन, ढाट, रबड़, मिट्टी, कीचड़ आदि बाह्य पदार्थों की उपस्थिति के कारण, ऐसा हो सकता है।

(ख) व्याधियाँ—वायु-मार्ग के किसी भाग पर दबाव डालने वाला अर्बुद, रक्तष्ठीवन से रक्त का निकालना, ग्रीवा के व्रण आदि के कारण भी ऐसा हो सकता है।

(३) वक्ष पर दबाव:—

(क) आकस्मिक:—कुम्भ की तरह किसी बड़े मेले में अथवा रेलवे और

---

1. Suffocation.

सिनेमा के टिकट घर की खिड़कियों पर अत्यधिक भीड़ के कारण वक्ष पर दबाव पड़ने से ऐसा होता है।

(ख) परकृतः—इसमें वक्ष पर, पर्शुकाओं का अस्थि-भग्न आदि अन्य चिह्न भी पाये जाते हैं।

(ग) स्वकृतः—असम्भव है।

(४) ओषजन से अतिरिक्त गैसों का सूँघनाः—

ऐसा कार्बन द्विओषित (CO_2), कार्बन एकोषित (CO), उदजन गंधेत (H_2S) अथवा जलते हुये मकान आदि के धुयें के कारण होता है।

मृत्यु के कारण भेदः—

(१) श्वासावरोध।

(२) स्तब्धता।

घातक कालः—

तत्काल अथवा ४ या ५ मिनट के अन्दर।

मृत्यूत्तर रूपः—

(क) बाह्यः—

(१) यदि हाथ से मुख और नासिका को बलपूर्वक बन्द किया गया होगा तो ओष्ठ, मुख के कोण, अग्रनासिका और कपोलों पर कुचलने और खुरचने के चिह्न पाये जायेंगे। किन्तु यदि मृदु वस्त्र आदि का प्रयोग किया गया होगा तो इस प्रकार के कोई चिह्न नहीं पायेजायेंगे।

(२) वक्ष पर दबाव पड़ने के कारण जब पर्शुकाओं का अस्थिभग्न हो जाता है तब चौड़ा, शृङ्खवत और दोनों ओर एक ही तरह के खुरेचन के चिह्न पाये जाते हैं। कभी २ वक्षोऽस्थि का भी अस्थिभग्न हो जाता है।

(३) मुख-मण्डलः—पीत वर्ण का होता है।

(४) आँखेंः—खुली हुई होती हैं।

(५) अक्षिगोलकः—उभरे हुये होते हैं।

(६) ओष्ठः—नील वर्ण का होता है।

(७) मुख और नासिका से रक्त मिश्रित झाग निकलता है।

(८) त्वचा के नीचे रक्ताधिक्य और रक्त की बुंदियाँ पायी जाती हैं।

(ख) **आभ्यान्तरिकः—**

(१) मुँह, गला, स्वर यन्त्र, श्वास-प्रणाली अथवा अन्न-प्रणाली में मिट्टी, कीचड़, रेत आदि पाये जा सकते हैं।

(२) श्वास-प्रणाली की श्लेष्मिक कला प्रायः चमकदार रक्त वर्ण की होती है और उसमें रक्ताधिक्य तथा रक्त-मिश्रित झाग पाया जाता है।

(३) फुफ्फुस में रक्ताधिक्य पाया जाता है। यदि वक्ष पर दबाव डालने से मृत्यु हुई है तो वे पिञ्चित अथवा भेदित पाये जा सकते है।

(४) फुफ्फुस के मूल, आधार और नीचे के किनारों पर फुफ्फुसावरण के नीचे रक्ताधिक्य अथवा रक्त की छोटी छोटी बुँदियाँ (Tardieu's spots) प्रायः पायी जाती हैं। शीघ्रागामी मृत्यु में फुफ्फुस साधारण अवस्था में पाये जा सकते हैं।

(५) हृदय के दक्षिण कोष्ठ गहरे तरल रक्त से भरे हुये और वाम कोष्ठ रिक्त होते हैं।

(६) मस्तिष्क और औदरीय अवयवों में प्रायः रक्ताधिक्य पाया जाता है।

व्यवहारायुर्वेद सम्बन्धी प्रश्नः—

(१) क्या मृत्यु का कारण दम घुटना था ?

(२) दम घुटना—स्वकृत, परकृत अथवा आकस्मिक था ?

(१) क्या मृत्यु का कारण दम घुटना था ?

मृत्यु का कारण दम घुटना है—इसका निर्णय करने में कभी कभी कठिनाई होती है क्योंकि दम घुटने से हुई मृत्यु के चिह्न अपस्मार, धनुर्वात अथवा कुचला-विष सेवन से हुई मृत्यु में भी पाये जा सकते हैं। एतदर्थ वक्ष, मुख, नासिका आदि के समीपस्थ प्रान्तों में आघात के चिह्नों का निरीक्षण करना परमावश्यक है। दम घुटने से हुई मृत्यु की सिद्धि के लिये परिस्थिति जन्य प्रमाण को प्राप्त करके अपना निर्णय देना चाहिये।

(२) दम घुटना स्वकृत, परकृत अथवा आकस्मिक था ?

(क) स्वकृतः—ऐसा बहुत कम होता है। कभी २ उन्माद से पीड़ित

व्यक्तियों में अथवा बंदियों में देखने में आता है कि वे कीचड़ अथवा चिथड़ों से मुख और गले को भर लेते हैं जिनसे उनकी मृत्यु हो जाती है।

(ख) परकृतः—ऐसा कम होता है, फिर भी कभी कभी युवाअवस्था और बाल्यावस्था के व्यक्तियों और शिशुओं में पाया जाता हैः—

(I) युवा मेंः—यदि व्यक्ति पहले से ही मूर्छित नहीं है तो उसके हाथ, पैर, सिर, मुख आदि भागों पर लड़ाई-झगड़े के चिह्न पाये जायेंगे।

(II) बाल और शिशुओं मेंः—इनमें प्रायः मुख और नासिका में कीचड़, चिथड़े आदि भर कर ऐसा किया जाता है। स्थानिक आघात के चिह्नों के अतिरिक्त शरीर पर लड़ाई-झगड़े के चिह्न नहीं पाये जा सकते।

(ग) आकस्मिकः—दीवार, छत आदि से अकस्मात् गिर पड़ने पर ऐसा हो सकता है।

डूबना (Drowning)

परिभाषाः—

'डूबना' मृत्यु का वह रूप है जिसमें समस्त शरीर अथवा केवल मुख और नासिका का जल अथवा अन्य किसी द्रव में डूबा रहने से फुफ्फुसों में वायु-मण्डल की वायु के प्रवेश का अवरोध हो जाता है।

डूबते समय की अवस्थायें:—

जब कोई व्यक्ति जल में गिरता है तो शारीरिक भार के कारण वह तत्काल उसमें डूब जाता है किन्तु हाथ पैरों की चेष्टा और जल के ऊपर को उछाल के कारण वह पुनः जल की सतह पर आ जाता है। यदि वह तैरना नहीं जानता है तो वह अपनी सहायता के लिये चिल्लाता है, इस समय में जल उसके मुख और नासिका में प्रवेश करने लगता है और आमाशय तथा फुफ्फुसों में पहुँच जाता है। फुफ्फुसों में जल के पहुँचने से कास उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण फुफ्फुसों की कुछ वायु बाहर निकल जाती है और उसके स्थान पर जल पहुँच जाता है। इस प्रकार से शरीर का भार बढ़ जाता है और वह पुनः डूब जाता है। उसके हाथ पैरों की पेशियों की अनैच्छिक गति से वह पुनः जल की सतह पर आ जाता है और इस बार फिर थोड़ा सा जल फुफ्फुसों में प्रवेश

कर जाता है और पुनः शरीर तल में पहुँच जाता है। इस प्रकार जल में डूबना और ऊपर उठना—तब तक होता रहता है जब तक कि फुपफुसों की सम्पूर्ण वायु बाहर नहीं निकल जाती है और उसके स्थान पर जल भर जाता है। ऐसा प्रायः तीन बार होता है। तदनन्तर व्यक्ति मूर्छित हो जाता है और तल में डूबकर मृत्यु को प्राप्त होता है। कभी कभी आचेपण होकर मृत्यु होती है।

लक्षण:—

(१) श्रवण-सम्बन्धी भ्रम।

(२) दर्शन-सम्बन्धी भ्रम।

(३) भूत काल की भूली हुई घटनाओं का पुनः स्मरण।

(४) मानसिक विभ्रमः—कभी कभी।

मृत्यु की विधि:—

(१) श्वासावरोधः—

अधिकतर फुफ्फुसों में जल भर जाने के कारण श्वासावरोध होकर मृत्यु होती है।

(२) स्तब्धताः—

जल में गिरते समय भय के कारण अथवा आमाशय और वक्ष पर जल के टकराने से स्तब्धता होकर मृत्यु हो सकती है अथवा जल के अत्यधिक शीतल होने के कारण स्तब्धता हो सकती है।

(३) मस्तिष्क संक्षोभः—

इसका कारण सिर अथवा नितम्ब के बल जल में गिरना है जिसमें जल अथवा जल में उपस्थित किसी कठिन ठोस वस्तु जैसे पत्थर आदि के तीव्र आघात के कारण मस्तिष्क संक्षोभ हो जाता है।

(४) हृदयावसादः—

यह शीत जल में अकस्मात् गिर पड़ने पर, हृद्रोग अथवा अपस्मार से पीड़ित व्यक्तियों में होता है।

(५) एपाप्लेक्सी (Apoplexy):—

जल में डूबने पर सतह से ऊपर आने की प्रबल चेष्टा करने पर, शैत्य अथवा उत्तेजना से मस्तिष्क में रक्त के अकस्मात् तीव्रागमन करने पर, मस्तिष्कीय रक्तवाहनियों के विदीर्ण हो जाने से, विशेषतया यदि वे रुग्णावस्था में हों, तब ऐसा होता है ।

(६) श्रमः—

जल में डूबने पर सतह पर आने के लिये सतत प्रयत्न करने के परिणाम स्वरूप—ऐसा होता है ।

(७) आघातः—

उथले जल में अत्यधिक ऊँचाई से अथवा किसी सकरे, गहरे और पक्के कुऐं में गिरने से सिर के किसी कठिन ठोस वस्तु से बलपूर्वक टकरा जाने पर कपालास्थियों का अस्थिभग्न और ग्रैवेयक कशेरुकाओं का विश्लेषण अथवा अस्थि-भग्न हो जाता है ।

मृत्यु कालः—

(१) यदि व्यक्ति जल में पूर्णतया डूब जाय तो दो मिनट में श्वासावरोध हो जाता है और उसकेबाद दो से पाँच मिनट के अन्दर हृदयका कार्य बंद हो जाता है।

(२) यदि गिरते समय स्तब्धता अथवा हृदयावरोध के कारण फुफ्फुसों में जल का प्रवेश होना न रुक जाये तो लगातार पाँच मिनट तक पूर्ण रूपेण डूबे रहने पर मृत्यु हो जाती है।

चिकित्साः—

किंचित भी विलम्ब न करके व्यक्ति की तत्क्षण चिकित्सा प्रारम्भ कर देनी चाहिये । यदि उसके मुख और नासिका में कीचड़ आदि भरा हो तो उसे शीघ्रता से निकाल देना चाहिये । वस्त्रों को ढीला कर देना चाहिये । जिह्वा को बाहर की ओर किंचित खींच लेना चाहिये । शरीर को वस्त्र से पोंछ कर शुष्क कर देना चाहिये । यदि श्वास-क्रिया धीरे धीरे हो रही हो तो अमोनिया सुँघानी चाहिये । विद्युतस्पर्श-क्रिया करनी चाहिये । वक्ष और मुख पर शीत

और उष्ण जल की क्रमशः धार छोड़नी चाहिये। स्ट्रिकनीन, एड्रेनेलीन क्लोराइड आदि के इन्जेक्शन लगाने चाहिये।

यदि श्वास-क्रिया पूर्णतया अवरुद्ध हो तो कृत्रिम श्वास-क्रिया करना चाहिये। इसकी निम्नलिखित विधियाँ हैं:—

(१) सिल्वेस्टर की विधि।

(२) शेफर की विधि।

(३) मार्शल हाल की विधि।

(४) होवर्ड की विधि।

(५) लेबोर्ड की विधि।

इनमें से शेफर की विधि सर्वोतम है। इस क्रिया को १ घंटे तक करना चाहिये। जब श्वास क्रिया सम्यकतया संचारित होने लग जाये तब रोगी को कम्मलों से ढक देना चाहिये। विस्तर पर लिटा कर उसके चारो ओर उष्णोदक से भरी बोतलें लगा देनी चाहियें और उष्ण दुग्ध अथवा जल के साथ ब्राँडी देना चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप:—

(क) बाह्य:—

(१) वस्त्र—भीगे होंगे, यदि शीघ्र ही परीक्षण किया जाये।

(२)।मुख-मण्डल—पीत वर्ण का होता है।

(३) आँखें—आधी खुली हुई अथवा बंद होती हैं।

(४) नेत्र वर्त्म—रक्तिमा युक्त होते हैं।

(५) पुतलियाँ—प्रसारित होती हैं।

(६) जिह्वा—फूली हुई और कभी कभी बाहर को निकली हुई होगी।

(७) मुख और नासिका पर—श्वेत और गाढ़ा झाग मिलेगा।

(८) त्वचा—ठिठुरी हुई होगी।

(९) शिश्न वा अण्डकोष—सिकुड़े हुये होंगे।

(१०) हाथों में—कीचड़, रेत, कंकड़, पत्तियाँ आदि फँसे हुये पाये जा सकते हैं।

(११) नखों में—रेत या कीचड़ भरा हुआ होगा।

(१२) यदि शरीर जल के अन्दर १२ से २४ घंटे तक डूबा रहा है तो हथेलियों और तलुओं की त्वचा—कपिल-नील वर्ण की होगी।

(१३) २ या ३ दिन के बाद हाथ और पैरों की त्वचा—हल्के वर्ण की और रेखाओं से युक्त होगी, जैसे धोबियों के होती है।

(ख) **आभ्यान्तरिकः—**

(१) स्वर-यन्त्र और श्वास-प्रणाली में—स्वच्छ और रक्तमिश्रित झाग मिलेगा। इसके अतिरिक्त इसमें कीचड़, रेत आदि भी उपस्थित हो सकते हैं। इनकी श्लेष्मिक कला में रक्ताधिक्य होगा।

(२) फुफ्फुस—गुब्बारे की तरह फूले हुये और हृदय को ढके हुये होंगे। इनमें रक्ताधिक्य होगा और काटने पर पिच्छिल झाग और रक्तमिश्रित द्रव मिलेगा।

(३) फुफ्फुसीय प्रणालियों में जल और रेत, कीचड़, आदि उपस्थित होंगे।

(४) प्रायः आमाशय में जल भरा हुआ होगा और उसमें कीचड़, रेत आदि भी पाये जा सकते हैं।

(५) जल में गिरते ही यदि मूर्छा अथवा हृदयावसाद हो जाये, तब आमाशय रिक्त होगा।

(६) पक्वाशय में जल पाया जायेगा।

(७) मध्य कर्ण में जल की उपस्थिति।

व्यवहारायुर्वेद सम्बन्धी प्रश्नः—

(१) क्या मृत्यु का कारण जल में डूबना था?

(२) जल में डूबना स्वकृत, परकृत अथवा आकस्मिक था?

(१) क्या मृत्यु का कारण जल में डूबना था?

प्रायः ऐसा देखा गया है कि मृत्यु के बाद शवों को जल में फेंक दिया गया और उनमें वे परिवर्तन मिले जो कि डूबने से उत्पन्न होते हैं। अतएव मृत्यु से पूर्व और पश्चात के आघातों और विष-सेवन के चिन्हों आदि को भली प्रकार से देखना चाहिये, तदनन्तर इस सम्बन्ध में अपनी सम्मति देनी चाहिये।

(२) जल में डूबना स्वकृत, परकृत अथवा आकस्मिक था ?

(क) स्वकृत—यह बहुत प्रचलित है। प्रायः स्त्रियाँ अपने गृहस्थी के झगड़ों के कारण समीपस्थ किसी कुवें या तालाब में डूब कर प्राणान्त कर लेती हैं। इस अवस्था में आघात नहीं पाये जाते किन्तु किसी ठोस वस्तु से टकरा जाने पर सम्पर्क में आने वाले भागों पर चोट पायी जा सकती है।

(ख) परकृत—ऐसा बहुत कम होता है। डूबने से हुई परकृत मृत्यु बाल और शिशुओं में देखने में आती है। अपनी शक्ति के समान व्यक्ति को यदि उसे किसी निद्रालु विष को नहीं खिलाया गया हो या धोखे से उस पर आक्रमण नहीं किया गया हो तो उसे इस विधि से नहीं मारा जा सकता।

(ग) आकस्मिक—भारतवर्ष में डूबने से मृत्यु प्रायः आकस्मिक भी होती है। गहरे जल में स्नान करते समय ऐसा हो जाता है किन्तु इस अवस्था में उसके शरीर पर वस्त्र न होंगे केवल अँगौछा या लँगोट आदि पहने हुये होगा।

आठवाँ अध्याय

उपवास, शीत और ताप के कारण मृत्यु

उपवास[1]

उपवास २ प्रकार का होता हैं:—(१) तीव्र और (२) जीर्ण।

(१) तीव्र उपवासः—

जिसमें आवश्यक भोजन अकस्मात् और पूर्णरूप से बंद कर दिया जाये।

(२) जीर्ण उपवासः—

जिसमें भोजन धीरे धीरे कम कर दिया जाये।

लक्षणः—

प्रथम ३० से ४० घंटे तकः—

(१) तीव्र क्षुधा।

1. Starvation

(२) पीड़ा--(I)आमाशयिक प्रदेश में होती है।
(II) दबाने पर शान्त हो जाती है।
(३) तृष्णा—अधिक।
४ या ५ दिन के बादः—
(१) वसा का क्षय और शोषण प्रारम्भ हो जाता है।
(२) आँखें—चमकदार और अन्दर की ओर धंसी हुई।
(३) पुतलियाँ—प्रसारित।
(४) मुख की अस्थियां—स्पष्ट।
(५) ओष्ठ और जिह्वा—शुष्क और फटे हुये।
(६) प्रश्वास—दुर्गन्धि युक्त।
(७) स्वर—दुर्बल, धीमा और अस्पष्ट।
(८) त्वचा—शुष्क, खर, झुर्रीदार और दुर्गन्धयुक्त।
(९) नाड़ी—प्रायः दुर्बल और तीव्र, कभी कभी मन्द।
(१०) तापक्रम—साधारण से कम।
(११) उदर—पिचका हुआ।
(१२) हाथ और पैर—कृश और दुर्बल।
(१३) विबन्ध।
(१४) पुरीष—शुष्क और कृष्ण वर्ण का।
(१५) मूत्र—कम और गहरे रंग का।
(१६) शारीरिक भार—धीरे धीरे कम होता जाता है।
(१७) शरीर के भार का $\frac{२}{५}$ भाग कम हो जाने पर प्रायः मृत्यु हो जाती है।
(१८) मानसिक विचार—मृत्यु के समय ठीक रहता है।

मृत्यु कालः—

(१) यदि भोजन और जल दोनों बन्द कर दिये जायें तो मृत्युः प्रायः १० से १२ दिन में हो जाती है।

(२) किन्तु यदि केवल भोजन न दिया जाये और जल पीने को दिया जाता रहे, तब मृत्यु ३० से ४५ दिन में होती है।

मृत्यु काल निम्नलिखित बातों पर निर्भर है:—

(I) आयु—बालकों की अपेक्षा युवक और युवकों की अपेक्षा वृद्ध पुरुष अधिक समय तक उपवास सहन कर सकते हैं।

(II) लिङ्ग—पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक समय तक उपवास सहन कर सकती हैं क्योंकि उसके शरीर में वसा अधिक होती है।

(III) शारीरिक अवस्था—कृश और दुर्बल की अपेक्षा मेदस्वी और स्वस्थ पुरुष उपवास को अधिक समय तक सहन कर सकते हैं।

(IV) शारीरिक वातावरण—यदि शरीर को वस्त्रों से ढका रक्खा जाये तो उपवास को अधिक समय तक सहन किया जा सकता है। शीत ऋतु में उपवास कम समय तक सहा जा सकता है।

चिकित्सा:—

अधिक समय तक उपवास करने के बाद रोगी को पहले नींबू का रस, शंतरे का रस, उष्णोदक और दुग्ध—थोड़ी थोड़ी मात्रा में देना चाहिये। तदनन्तर भोजन शनैः शनैः बढ़ाना चाहिये। इस बीच में रोगी को पूर्ण विश्राम करने देना चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप:—

(क) बाह्य:—

(१) शरीर—क्षीण, कृश और दुर्बल होता है।

(२) आँखें—खुली हुई और रक्तिमा युक्त होती हैं।

(३) अक्षिगोलक—अन्दर धँसे हुये होते हैं।

(४) कपोल और शंख-प्रदेश—पिचके हुये होते है।

(५) त्वचा—शुष्क और झुर्रीदार होती है।

(६) पेशियां—मृदु, क्षीण और पीत वर्ण की हो जाती हैं।

(७) त्वचा के नीचे वसा—बहुत कम रह जाती है।

(ख) आभ्यान्तरिक:—

(१) हृदय—रिक्त और उसका आकार छोटा होता है।

(२) फुफ्फुस—संकुचित हो जाता है।

(३) आमाशय और अन्त्र—रिक्त और संकुचित होते हैं ।

(४) यकृत, प्लीहा और वृक्क—आकार में छोटे हो जाते हैं ।

(५) पित्ताशय—विस्तृत हो जाता है और उसमें कृष्ण वर्ण का गाढ़ा पित्त भरा होता है ।

व्यवहारायुर्वेद सम्बन्धी प्रश्नः—

(१) क्या मृत्यु का कारण उपवास था ?

(२) उपवास स्वकृत, परकृत अथवा आकस्मिक था ?

(१) क्या मृत्यु का कारण उपवास था ?

मधुमेह, राजयक्ष्मा, (Addison's disease), माँसपेशी क्षय आदि रोगो में भी शरीर धीरे धीरे क्षीण और दुर्बल होता जाता है और अन्त में मृत्यु हो जाती है । अतएव मृत्यूत्तर परीक्षा करते समय यह भी देखना चाहिये कि रोगी उपरोक्त किसी व्याधि से तो पड़ित होकर नहीं मरा है ।

(२) उपवास स्वकृत, परकृत अथवा आकस्मिक थाः —

(क) स्वकृतः—इसका इतिहास ल्यूनैटिक्स (Lunatics) तथा कैदियों में मिलता है और विशेषतया राजनैतिक कैदियों में ।

(ख) परकृतः—ऐसा प्रायः शिशुहत्या और बालहत्या में होता है । इसके अतिरिक्त कभी कभी सौतेली मातायें भी अपनी बहुओं को भूखों मार डालती हैं।

(ग) आकस्मिकः—ऐसा अकाल और खानों में कार्य करते समय तथा किसी निर्जन स्थान में वायुयान अथवा जलयान के टूट जाने पर हो सकता है ।

शीत के कारण मृत्यु

कारणः—

शरीर को अधिक समय तक बहुत ज्यादा ठण्ड पहुँचाने से, [शरीर से ताप के निकल जाने के कारण और हेमोग्लोबिन[1] के शरीर के तन्तुओं को ओषजन न दे सकने पर, आक्सीजन-वितरण (Supply) की कमी के कारण मृत्यु हो सकती है । विशेषतयाः—

1. Haemoglobin

(१) शारीरिक श्रम।

(२) अस्वास्थ्यता।

(३) मदिरा–सेवन।

(४) दौर्बल्य।

(५) उपवास।

इनमें से किसी भी कारण से जिन व्यक्तियों में शक्ति कम हो जाती है— उनमें होता है। स्त्रियों में त्वचा के नीचे वसा अधिक होने के कारण पुरुषों की अपेक्षा शीत को अधिक सहन कर सकती हैं।

लक्षणः—

(क) स्थानिकः—

(१) शीताभिहत (Frost bite)—प्रभावित शारीरिक अवयव रक्त-हीन, संज्ञाहीन और पीत वर्ण के होते हैं।

(२) शरीर के खुले हुये अवयव विशेषतया कर्ण, नासिका, अङ्गुलियाँ और अङ्गुष्ठ ठिठुरे हुये अर्थात सुन्न होते हैं और त्वचा फटी हुई होती है तथा उसमें ददारें होती हैं।

(ख) साधारण लक्षणः —

(१) शरीर शिथिल होता है।

(२) तन्द्रा मालूम होती है।

(३) सरसाम (Stupor)--रोगी प्रलाप करता है।

(४) सन्यास होकर मृत्यु हो जाती है।

सहायक कारणः—

(१) प्रवाह रहित शीतल वायु, प्रवाहित शीतल वायु की अपेक्षा कम हानिप्रद होती है।

(२) शीत में जितना अधिक समय तक रहा जायेगा, उतना ही हानि-प्रद होगा।

(३) बाल और वृद्ध की अपेक्षा युवा अवस्था का व्यक्ति ज्यादा अच्छी तरह शीत सहन कर सकता है।

(४) कृश और दुर्बल की अपेक्षा स्थूल व्यक्ति ज्यादा अच्छी तरह शीत सहन कर सकता है ।

मृत्यूत्तर रूपः—

(क) **बाह्यः—**

(१) आकृतिः—विषम और पीत वर्ण की होती है ।

(२) त्वचाः—ताम्र अथवा रक्त वर्ण के गण्डों से युक्त होती है ।

(३) कर्ण, नासिका, अङ्गुली और अंगुष्ठ–ठिठुरे हुये अर्थात् सुन्न होंगे ।

(४) मृत्यूत्तर संकोचः—धीरे धीरे प्रारम्भ होता है और देर तक रहता है।

(ख) **आभ्यान्तरिकः—**

(१) रक्तः—चमकीला लाल रङ्ग का होता है ।

(२) हृदय के दोनों कोष्ठः—रक्त से भरे हुये होते हैं।

(३) शरीरिक अवयवः—रक्तिमा युक्त होते हैं ।

(४) उदर और वक्ष की बड़ी बड़ी रक्त नलिकायेंः—रक्त की अधिकता के कारण फैली हुई होती हैं ।

व्यवहारायुर्वेद सम्बन्धी महत्वः—

(१) भारतवर्ष में शीत से मृत्यु आकस्मिक होती है ।

(२) अधिकतर शिशुओं में शीत के कारण मृत्यु होती हैं । और इसी तरह परघात भी किया जाता है ।

चिकित्साः—

(१) शरीर की उष्मा धीरे धीरे बढ़ानीं चाहिये ।

(२) रोगी को कम्मलों से ढक देना चाहिये ।

(३) विस्तर पर रोगी को लिटा कर उष्ण जल से भरी बोतलों को आस पास रख देना चाहिये ।

(४) तैल की मालिश करनी चाहिये ।

(५) उत्तेजक पदार्थ जैसे उष्ण चाय, काफ़ी, उष्ण दुग्ध आदि देना चाहिये ।

ताप के कारण मृत्यु

उच्च तापक्रम अथवा अत्यधिक ताप के होने पर निम्नलिखित अवस्थायें आ सकती हैं:—

[१] लू लगना।
[२] Heat exhaustion.
[३] Thermic fever.

[१] लू लगना:—

कारण:—

श्रमित व्यक्ति जब उच्च तापक्रम वाले वायु-मण्डल में जाता है तो लू लग जाती है।

लक्षण:—

शीघ्र ही तीव्रता से प्रारम्भ होते हैं। प्राय: ग्रीष्म ऋतु में ऐसा होता है।

(१) ताप का अनुभव होता है।
(२) शिरोभ्रम होने लगता है।
(३) ग्लानि होती है।
(४) शिर: शूल उत्पन्न हो जाता है।
(५) वमन होती है।
(६) चेहरा—लाल हो जाता है।
(७) पुतलियाँ—(I) प्रारम्भ में प्रसारित होती हैं।
(II) बाद में संकुचित हो जाती हैं।
(८) तापक्रम—अत्यधिक, ११२° फा० से ११६° फा० तक।
(९) त्वचा—शुष्क हो जाती है।
(१०) नाड़ी—तीव्र और गतिशील होती है।
(११) श्वास-क्रिया जल्दी जल्दी और शब्द के साथ होती है, बाद में धीरे धीरे और खड़खड़ाहट के साथ होने लगती है।
(१२) श्वासावरोध और सन्यास होकर मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा:—

(१) रोगी को पूर्ण विश्राम देना चाहिये ।

(२) सिर पर बरफ की थैली रखना चाहिये ।

(३) अन्य शीतोपचार-क्रिया करनी चाहिये ।

[२] Heat-exhaustion:--

लक्षण:--

(१) शिरः शूल होने लगता है ।

(२) शिरोभ्रम हो जाता है ।

(३) ग्लानि उत्पन्न हो जाती है ।

(४) पुतलियाँ--प्रसारित होती हैं ।

(५) धुँधला दिखलाई देता है ।

(६) तापक्रम--साधारण से कम हो जाता है ।

(७) नाड़ी—दुर्बल और तीव्र होती है ।

(८) श्वास-क्रिया—साँय साँय के साथ होती है ।

(९) हृदयावरोध होकर मृत्यु हो जाती है ।

चिकित्सा:—

(१) उष्ण उपचार करना चाहिये ।

(२) उष्णोदक से स्नान कराना चाहिये ।

(३) वक्ष पर राई का पलास्तर चढ़ाना चाहिये ।

(४) उत्तेजना के लिये स्ट्रिकनीन का इन्जेक्शन लगाना चाहिये ।

[३] Thermic fever:--

कारण:—

इसका कारण किसी छोटे बन्द कमरे में आग के सामने काम करना है, जैसे काँच के कारखानों में ।

लक्षण:—

(१) श्रम और दुर्बलता मालूम होती है ।

(२) तीव्र शिरः शूल होने लगता है ।

(३) प्रकाश और ध्वनि का ज्ञान नहीं होता।

(४) तापक्रम—अधिक, १०३° फा० से १०४° फा० तक।

(५) त्वचा--शुष्क और उष्ण हो जाती है।

(६) श्वास-क्रिया में कठिनता होती है।

(७) सरसामावस्था उत्पन्न हो जाती है।

(८) सन्यास से मृत्यु होती है।

मृत्यूत्तर रूपः—

(क) बाह्यः—

मृत्यूत्तर-संकोच और सड़न क्रिया शीघ्र प्रारम्भ हो जाती है।

(ख) आभ्यन्तरिकः--

फुफ्फुस, मस्तिष्क और औदरीय अवयव-रक्तिमा युक्त होते हैं।

नौवां अध्याय

अग्नि से जलने और दाग़ने से मृत्यु
तथा
विद्युत्पात और विद्युत-स्पर्श से मृत्यु

परिभाषाः—

दाह या जलना[1]:—

वह आघात है जो कि लपट, विकर्णित (Radiant) ताप अथवा किसी अति उष्ण पदार्थ के शरीर की सतह पर लगने से होता है। व्यवहारायुर्वेद की दृष्टि से तड़ित (आकाशीय विद्युत), विद्युत, ऐक्स-किरणों और दाहक रासायनिक पदार्थों द्वारा जो आघात हो जाते हैं, उनको 'जलने' की संज्ञा दी जाती है।

दाग़ना या झुलसना[2]:—

यह वह आघात है जो क्वथनाँक पर के अथवा उनके निकटस्थ तापक्रम वाले

1 Burns. 2 Scalds.

गरम गरम द्रव अथवा उनके गैसीय रूप जैसे वाष्प आदि के शरीर पर लगने से उत्पन्न होता है ।

झुलसना जलने की अपेक्षा कम भयंकर होता है ।

जलने की अवस्थायें:—

(१) प्रथमावस्था:—

इसमें लपट अथवा क्वथनांक से बहुत कम तापक्रम वाले ठोस और द्रव वस्तुओं के शरीर पर क्षणिक स्पर्श से त्वचा पर रक्तिमा अथवा गण्ड उत्पन्न हो जाते हैं । ये मृदु-क्षोभक वस्तुओं से भी उत्पन्न हो सकते हैं । ये कुछ ही घण्टों में विलीन हो जाते हैं और मृत्यु के बाद दिखलाई नहीं पड़ते । इस तरह जलने से न तो धातुओं का नाश होता है और न इनके कारण शरीर पर किसी प्रकार का दाग़ या चिन्ह ही रह जाता है ।

(२) द्वितीयावस्था:—

इसमें त्वचा पर तीव्र प्रदाह और स्फोट उत्पन्न हो जाते हैं जिनका कारण लपट, क्वथनांक पर के द्रव अथवा जल के क्वथनांक से अधिक तापक्रम वाले ठोस पदार्थों का शरीर पर स्पर्श होना है । स्फोट तीव्र क्षोभक और स्फोटोत्पादक पदार्थों द्वारा भी उत्पन्न हो जाते हैं । इस अवस्था में त्वचा कृष्ण वर्ण की हो जाती है और केश झुलस जाते हैं, किन्तु इनके कारण किसी प्रकार के चिन्ह या दाग़ अवशेष नहीं रहते फिर भी त्वचा में कुछ वैवर्ण्य पाया जा सकता है ।

(३) तृतीयावस्था:—

इसमें त्वचा के स्तर नष्ट हो जाते हैं जो देखने में शृङ्गवत और कृष्णवर्ण के होते हैं । इनमें पीड़ा अधिक होती है और इससे एक चिन्ह बन जाता है जो कि अच्छा हो जाने पर वास्तविक त्वचा की भाँति होता है ।

(४) चतुर्थावस्था:—

इसमें सम्पूर्ण त्वचा नष्ट हो जाती है । इसके ऊपर पीत-कपिल वर्ण की Sloughs (मुर्दा खाल) बन जाती हैं जो कि ४ से ६ दिन में पृथक हो जाती हैं और एक व्रण-युक्त सतह रह जाती है जो कि धीरे धीरे अच्छी होती है ।

फिर इस पर सौत्रिक तन्तु की एक मोटी तह बन जाती है जो कि उस स्थान में वक्रता उत्पन्न कर देती है।

(५) पंचमावस्थाः—

इसमें माँसधरा कला (Deep fascia) और पेशियाँ प्रभावित हो जाती हैं जिसके कारण दाग़ बड़े होते हैं और वक्रता अधिक होती है।

(६) षष्ठाऽवस्थाः—

इसमें अस्थियों तक के सब भाग जल जाते हैं। प्रायः तत्काल मृत्यु हो जाती है।

जलने के प्रभावः—

यह निम्नलिखित ६ बातों पर निर्भर हैः—

(१) ताप की मात्राः—

यदि प्रयुक्त ताप की मात्रा अत्यधिक है, तो प्रभाव तीव्रतम होगा।

(२) जलने का समयः—

यदि अधिक समय तक ताप का सतत प्रयोग किया जाय, तब भी प्रभाव तीव्र होता है।

(३) ताप से प्रभावित स्थान की मापः—

शरीर की त्वचीय सतह का $\frac{1}{2}$ से $\frac{1}{3}$ भाग जल जाने पर प्रायः मृत्यु हो जाती है।

(४) जलने का स्थानः—

मध्य शरीर के दाह चाहे वे त्वचा में ही क्यों न स्थित हों, हाथ और पैरों के दाह की अपेक्षा अधिक भयंकर होते हैं। जननेन्द्रिय और उदर के नीचे के भाग में जलने पर प्रायः मृत्यु हो जाती है।

(५) व्यक्ति की आयुः—

बच्चों में दाह अधिक भयंकर होता है। वृद्ध पुरुष दाह को विशेष रूप से सहन कर सकते हैं।

(६) लिङ्गः—

पुरुषों में स्त्रियों की अपेक्षा दाह की सहन-शक्ति अधिक होती है।

मृत्यु के कारणः—

(१) स्तब्धताः—

बहुत ज्यादा जल जाने पर तीव्र पीड़ा के कारण नाड़ी-संस्थान में स्तब्धता उत्पन्न हो जाती है। फल स्वरूप नाड़ी—मन्द और त्वचा—शीतल और पीत वर्ण की हो जाती है। तदनन्तर हृदयावसाद होकर मृत्यु हो जाती है। इसमें तत्काल या २४ घण्टे के अन्दर मृत्यु होती है।

(२) दम घुटनाः—

जब मकानादि में आग लग जाती है, तब पदार्थों के जलने से उत्पन्न धुयें और कार्बन द्विओषित आदि गैसों के कारण दम घुटकर मृत्यु हो जाती है।

(३) आकस्मिक आघातः—

आग लग जाने पर भागते समय दीवार आदि से टकरा जाने के कारण आघात होकर मृत्यु हो सकती है।

(४) शोथः—

आभ्यन्तरिक अङ्गों में शोथ जैसे मस्तिष्कावरण-शोथ, उदरावरण-शोथ, श्वास-प्रणाली शोथ, न्यूमोनिया और प्ल्यूरिसी आदि होकर मृत्यु हो सकती है।

(५) (Exhaustion):—

दग्ध स्थान से कुछ सप्ताह अथवा मास तक पूय-स्राव होने के कारण शारीरिक क्लान्ति के कारण मृत्यु हो जाती है।

(६) विसर्प, धनुर्वात आदि।

मृत्यु-कालः—

प्रायः ७ दिन में मृत्यु हो जाती है। दम घुटने आदि के कारण २४ से ४८ घण्टे में मृत्यु हो जाती है किन्तु पूय-स्राव होने की अवस्था में ५ या ६ सप्ताह में मृत्यु हो सकती है।

मृत्यूत्तर रूपः—

(क) बाह्यः—

यह जलाने वाली वस्तु की प्रकृति के ऊपर निर्भर है।

(I) विकर्णित ताप से जलने पर त्वचा श्वेत वर्ण की हो जाती है।

(II) लपट के कारण केश झुलस जाते हैं और त्वचा कृष्ण वर्ण की हो जाती है।

(III) पिघली हुई धातु या बहुत ज्यादा गरम किये हुये ठोस पदार्थ के थोड़ी देर तक शरीर के सम्पर्क में आने पर केवल फ़फोला पड़ जाता है।

(IV) बारूद की लपट लगने से त्वचा कृष्ण वर्ण की हो जाती है।

(V) मिट्टी के तेल से जलने पर उसमें तेल की गन्ध आती है और सम्पर्क में आने वाले भाग पर करखा लग जाने के कारण कृष्ण वर्ण हो जाता है।

(VI) क्वथित जल अथवा वाष्प के कारण फफोले पड़ जाते हैं। और त्वचा ठिठुर जाती है जिसका रंग धुँधला-सफेद होता है।

(VII) जब शरीर को उच्चतम ताप में रक्खा जाता है तो वह दृढ़ पड़ जाता है, ऊर्ध्व और अधो शाखायें संकुचित हो जाती हैं। इसका कारण एलब्यूमिन का जमना है।

(VIII) ऐक्स-किरण से जलने पर त्वचा रक्तिमा युक्त हो जाती है।

(IX) दाहक पदार्थों से जले हुये स्थान का रंग सब जगह एक सा होता है और उसके बाद जो चिन्ह या दाग़ रह जाते हैं, वे कोमल होते हैं और उनमें कुछ नमी होती है। इसके कारण न तो छाले पड़ते हैं और न केश ही झुलसते हैं।

(X) खनिज अम्लों से वस्त्र और त्वचा पर वैवर्ण्य उत्पन्न हो जाता है।

(ख) **आभ्यन्तरिकः—**

(I) अत्यधिक ताप से कपालास्थियों का अस्थि-भग्न हो जाता है या वे फूट जाती हैं।

(II) यदि मृत्यु का कारण दम घुटना है तो श्वास-नलिका और श्वास-प्रणाली में कृष्ण वर्ण का झाग पाया जा सकता है।

(III) फुफ्फुस—रक्तिमायुक्त और संकुचित होते हैं।

(IV) फुफ्फुसावरण—रक्तिमायुक्त अथवा शोथ युक्त होते हैं।

(V) रक्त—गहरे लाल रंग का होता है (दम घुटने से हुई मृत्यु में)

(VI) औदरीय अवयव—रक्तिमां युक्त होते हैं।

(VII) **आँतें**—व्रण युक्त पायी जातीं हैं। यह स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा अधिक मिलता है।

मृत्यु से पूर्व और मृत्यु के पश्चात जलने में भेद:—

मृत्यु से पूर्व	मृत्यु के पश्चात
(१) जले हुये स्थान के चारो ओर स्थायी रूप से रक्तिमायुक्त रेखा बन जाती है।	(१) इस प्रकार की कोई रेखा नहीं होती।
(२) जलने से जो फफोला पड़ता है, उसमें क्लोराइड्स और एलब्यूमिन मिश्रित द्रव भरा रहता है। फफोले का आधार रक्त वर्ण का और शोथयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त उसके चारो ओर की त्वचा चमकीले रक्त वर्ण की अथवा ताम्र वर्ण की होती है।	(२) इसमें जो फफोला पड़ता है, उसके अंदर केवल वायु होती है, क्लोराइड्स नहीं होते किन्तु उसमें कुछ एलब्यूमिन पायी जा सकती है। फफोले का आधार कड़ा, श्रृंगवत और पीत वर्ण का होता है।
(३) इसमें आरोहण-चिह्न जैसे शोथ, पूय आदि पाया जायेगा।	(३) इसमें जला हुआ स्थान धुंधला श्वेत वर्ण का होता है और स्लेटी रंग के त्वगीय ग्रन्थियों के छोटे छोटे छिद्र दिखलाई देते हैं।

जलने के समय का निर्णय:—

निम्नलिखित बातों का देखकर जलने के समय का निर्णय किया जाता हैं:—

(१) तत्काल अथवा दो या तीन घंटे के अन्दर जलने के स्थान पर रक्तिमा मालूम होती हैं और फफोला पड़ जाता है।

(२) २ या ३ दिन के अन्दर पूय उत्पन्न हो जाती है, ३६ घंटे से पूर्व ऐसा नहीं हो सकता।

(३) आरोहण के कणों (Granulation) का बनना और सड़े हुये श्लैष्मिक तन्तुओं (Sloughs) का निर्माण होता है और उस स्थान पर विकृति या वक्रता (Deformity) अवशिष्ट रह जाती है।

स्वकृत, परकृत अथवा आकस्मिक जलने का निर्णयः—

(क) **स्वकृतः**—यह बहुत कम देखने में आता है। निम्नलिखित परिस्थितियों में ऐसा होता भी हैः—

(I) निर्धनता—अविवाहिता युवतियाँ दहेज़ आदि की कुरीतियों के कारण माता पिता को कष्ट में देखकर अपने वस्त्रों पर मिट्टी का तेल छिड़क कर प्राणान्त कर लेती हैं।

(II) निराशा—कभी कभी युवतियाँ अपने प्रेमी को न पाने पर निराश होकर ऐसा कर बैठती हैं।

(III) कभी कभी दूसरों पर असत्य दोषारोपण के हेतु कुछ धूर्त अपने ही शरीर के किसी भाग को जलाकर न्यायालय में मामला पेश कर देते हैं।

(ख) **परकृतः**—

(I) भारतवर्ष में यह अधिकता के साथ देखने में आता है। व्यभिचारिणी युवतियों को दण्ड देने के लिये घर की अन्य स्त्रियाँ गरम गरम चिमटे आदि से दाग़ देती हैं।

(II) डाकू और लुटेरे गरम गरम लोहे की चीजों जैसे तावा, चिमटा आदि का भय दिखला कर धन का पता पूछते हैं और न बतलाने पर उन्हें दाग़ देते हैं।

(ग) **आकस्मिक**—स्त्रियों और बच्चों में अधिकता से देखने में आता है क्योंकि प्रायः वे ढीले वस्त्रों को पहन कर जलते हुये चूल्हे अथवा अँगीठी आदि के पास बैठते हैं जिससे उनके वस्त्रों में आग लग जाती है और उसके फल स्वरूप मृत्यु तक हो सकती है।

विद्युत्पात[1]

विद्युत्पात में वर्षा, तूफान आदि का सदैव इतिहास मिलेगा। इससे प्रायः आकस्मिक मृत्यु होती है।

लक्षणः—

प्रायः स्तब्धता के कारण सद्यः मृत्यु हो जाती है। किन्तु यदि रोगी बच

---

1 Lightning

जाता है तो दाह (Burns) और उधड़न (Lacerations) के प्रभाव से कालान्तर में कुछ दिवस अथवा सप्ताह के बाद मृत्यु होती है। यदि रोगी बच जाता है, तो निम्नलिखित लक्षण उत्पन्न हो सकते हैः—

(१) शिरोभ्रम ।
(२) शिरः शूल ।
(३) कर्णनाद ।
(४) स्मरण-शक्ति का नाश ।
(५) पक्षाघात ।
(३) आक्षेपण—धनुर्वात की भाँति ।
(७) हृद-रोग ।
(८) बधिरता ।
(६) अन्ध्यत्व ।

मृत्यूत्तर रूप—

(क) **बाह्यः--**

(I) पिच्चन, उधड़न आदि पाये जा सकते हैं ।
(II) अस्थिभग्न हो सकता है ।
(III) केश—झुलसे हुये पाये जायेंगे ।
(IV) वस्त्र फटे हुये हो सकते हैं ।
(V) जूते आदि जले हुये मिलेंगे ।
(IV) धात्वीय वस्तुयें—पिघली हुई होंगी ।
(VII) फौलाद की वस्तुओं में चुम्बकत्व आ जाता है ।

(ख) **आभ्यन्तरिकः--**

(I) मस्तिष्क से अत्यधिक रक्तस्राव होता है ।
(II) रक्त—तरलावस्था में मिलेगा ।
(III) रक्तवाहिनियां—विदीर्ण होंगी ।
(IV) आभ्यन्तरिक अवयव—फटे हुये होंगे ।

विद्युत-स्पर्श[1]

विद्युत-स्पर्श से मृत्यु आकस्मिक होती है।

मृत्यु के कारण:—

(१) स्तब्धता।

(२) हृदय का अकस्मात् रुक जाना।

(३) श्वास-क्रिया के अवयवों का पक्षाघात।

चिकित्सा:—

(१) रोगी को उष्णता पहुँचानी चाहिये। एतदर्थ उष्ण परिषेक, उष्णोदक से भरी बोतलों का प्रयोग आदि उष्णोपचार करना चाहिये।

(२) उत्तेजना पहुँचानी चाहिये। एतदर्थ गरम चाय, कॉफ़ी आदि को पिलाना चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर स्ट्रिकनीन आदि के इन्जेक्शन भी दिये जा सकते हैं।

(३) कृत्रिम-श्वास क्रिया करनी चाहिये।

(४) शिरावेध के द्वारा रक्तमोक्षण करना चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप—

(क) **बाह्य:—**

(I) सम्पर्क में आने वाले भागों का जलना।

(II) व्रणोत्पत्ति।

(III) धात्वीय वस्तुओं का पिघलना।

(IV) फौलाद की बनी हुई वस्तुओं में चुम्बकत्व पाया जाना।

(ख) **आभ्यन्तरिक:—**

(I) आभ्यन्तरिक अंगों में रक्तिमा पायी जायेगी।

(II) फुफ्फुसावरण और हृदयावरण में रक्त की छोटी छोटी बुन्दियाँ (Tardieu' spots) पायी जाती हैं।

---

1. Electricity

दसवाँ अध्याय

नपुंसकता[1] और बन्ध्यत्व[2] की परीक्षा

(१) नपुंसकता—

मैथुन-सम्पादन क्रिया में अयोग्यता का होना नपुंसकता कहलाता है।

(२) बन्ध्यत्व—

सन्तानोत्पत्ति में अयोग्यता का होना बन्ध्यत्व कहलाता है।

इनका प्रश्न निम्नलिखित अवस्थाओं में उठता है:—

(१) **ब्याह** (Marriage)
(२) **बलात्कार** (Rape)
(३) **व्यभिचार** (Adultery)
(४) **तलाक़** (Divorce)
(५) **धन सम्बन्धी मामले** (Inheritance)

पुरुषों में नपुंसकता के कारण:—

(१) **यौवन प्राप्तिः—**

(I) भारतवर्ष में ७ वर्ष तक की आयु के बालक बलात्कार न कर सकने के कारण दण्डित नहीं किये जा सकते।

(II) ७ वर्ष से १२ वर्ष तक की आयु वाले बालकों के सम्बन्ध में न्यायालय निर्णय करता है।

(III) १४ वर्ष की आयु से पूर्व बलात्कार किया जा सकता है किन्तु संन्तानोत्पत्ति इससे पूर्व नहीं की जा सकती।

(२) **वृद्धावस्थाः—**

यह नपुंसकता और बन्ध्यत्व दोनों का कारण हो सकता है किन्तु १०० वर्ष की आयु में भी सन्तानोत्पत्ति होते देखी गई है।

---

1. Impotency, 2. Sterility.

(३) विकृतिः—

केवल निम्नलिखित परिस्थितियों को छोड़कर नपुंसकता या बन्ध्यत्व का सम्पूर्ण कारण इसको नहीं बतलाया जा सकता हैः—

(I) शिश्न की पूर्ण अनुपस्थिति ।

(II) दोनों अण्डों (Testicles) की अनुपस्थिति ।

(४) व्याधियाँः—

निम्नलिखित व्याधियों के कारण नपुंसकता हो सकती हैः—

स्थानिक व्याधियाँ	सर्वाङ्गिक व्याधियाँ
(I) श्लीपद } अस्थायी नपुंसकता	(I) राजयक्ष्मा } अस्थायी
(II) Large—Hydrocele } अस्थायी नपुंसकता	(II) मधुमेह } अस्थायी
(III) अण्डों के जीर्ण रोग—स्थायी	(III) मस्तिष्क और सुषुम्ना पर आघात ।
	(IV) Paraplegia
	(V) सुषुम्ना के रोग ।
	(VI) मद्य, अहिफेन, भांग, तमालपत्र आदि विषों का अत्यधिक सेवन।

(५) मानसिक कारणः—

अत्यधिक भय, क्रोध आदि—अस्थायी नपुंसकता ।

(६) औषधिः—

मद्य—अस्थायी ।

स्त्रियों में बन्ध्यत्व का कारणः—

(१) यौवन प्राप्तिः—

मासिक-धर्म प्रायः १२ वर्ष की आयु से प्रारम्भ हो जाता है ।

(२) अधिक आयुः—

प्रायः ५० वर्ष की आयु तक मासिक धर्म होता है ।

(३) विकृतिः—

(I) योनि की पूर्ण अनुपस्थिति।

(II) गर्भाशय या डिम्ब की अनुपस्थिति—असाध्य वन्ध्यत्व।

(४) व्याधियाँः—

(I) योनि में अत्यधिक क्षोभ।

(II) मूलाधार पीठ का विदीर्ण होना।

(III) डिम्ब के रोग।

(IV) गर्भाशय या योनि से अम्लीय स्राव होना।

(V) गर्भाशयस्थानापसरण।

(VI) Recto-Vaginal fistula. (योनि-मलाशयिक भगन्दर)

(VII) बीजवाहनियों का Obstruction.

(५) मानसिक कारणः—

क्रोध, घृणा, भय आदि से—अस्थायी वन्ध्यत्व।

कौमार्य[1] की परीक्षा

परिभाषाः—

'कौमार्य' स्त्री की उस अवस्था को कहते हैं जिसके साथ कभी व्यवाय न किया गया हो।

इसका प्रश्न निम्नलिखित अवस्थाओं में उठता हैः—

(१) ब्याह।

(२) बलात्कार।

(३) तलाक़।

(४) अपमान[2]।

कौमार्य के लक्षणः—

(१) स्तनः—अर्धचन्द्राकार, भरे हुये और स्थिति-स्थापक होते हैं।

(२) चूचुकः—छोटे और नुकीले होते हैं।

---

1. Virginity 2. Defamation,

(३) योनिच्छदः—विदीर्ण नहीं होता।

(४) भगशिश्निकाः—बढ़ा हुआ नहीं होता।

(५) लघुभगोष्ठः—गुलाबी रंग का, स्थिति-स्थापक और पास-पास स्थित होता है।

(६) मूलाधार पीठ पूरा होता है।

(७) दीर्घ-भगोष्ठः—

(I) गोलाकार और उभरा हुआ होता है।

(II) पास-पास स्थित होता है।

(III) योनि-छिद्र—दीर्घ भगोष्ठ से पूर्णतया ढका रहता है और जाँघों के फैलाने पर भी नहीं फैलता।

(८) योनिः—

(I) योनि तंग होती है जिसमें एक लम्बा छिद्र होता है।

(II) योनि की श्लैष्मिक कला—झुर्रीदार और गुलाबी रंग की होती है।

(९) पूर्व सन्तानोत्पत्ति के चिन्ह—नहीं मिलते।

योनिच्छदः—

इससे योनि-छिद्र ढका रहता है और बच्चों में प्रायः उठा हुआ होता है। अधिकतर प्रथम व्यवाय के समय यह फट जाता है।

व्यवाय के पश्चात योनिच्छद में होने वाले परिवर्तनः—

प्रायः मैथुन से योनिच्छद एक या अनेक स्थानों पर फट जाता है किन्तु ऐसा सदैव नहीं होता। फटे हुये किनारे प्रायः ७ दिन में अच्छे हो जाते हैं।

योनि-नलिका के तंग होने तथा योनिच्छद के गहराई में स्थित होने के कारण बालिकाओं में यदि बलात्कार के लिये प्रयत्न किया गया होगा तो यह फटा हुआ मिलेगा।

योनिच्छद का फटनाः—

व्यवाय के अतिरिक्त निम्नलिखित कारणों से भी योनिच्छद फट सकता हैः—

(I) बाह्य पदार्थ जैसे छड़ी, शलाका, डण्डे, बेंत आदिके योनि में प्रवेश करने से।

(II) नुकीली वस्तुओं पर योनि के बल गिर पड़ने से ।

(III) डिप्थीरिया के कारण उत्पन्न हुये व्रणों से ।

(IV) शल्य-कर्म से ।

गर्भ की परीक्षा

गर्भ के परीक्षण की आवश्यकता निम्निलिखित अवस्थाओं में पड़ती है:—

(१) यदि किसी स्त्री को फाँसी की सज़ा दी जाने की घोषणा कर दी जाये और वह स्त्री गर्भवती हो, तो जब तक गर्भ का जन्म न हो जाये तब तक उसे फाँसी अथवा अन्य कोई कठिन दण्ड नहीं दिया जा सकता ।

(२) यदि कोई व्यक्ति सम्पत्ति छोड़कर मृत्यु को प्राप्त हो जाये और उसके कोई सन्तान न हो तो उस अवस्था में सम्भव है कि उसकी स्त्री गर्भ बती हो अथवा किसी दूसरे के हाथ में सम्पत्ति न जाने देने के लिये वह स्त्री गर्भवती होने का बहाना भी कर सकती है, ऐसी परिस्थिति में उस स्त्री का सम्यकतया परीक्षण करना चाहिये कि यह बात कहाँ तक सत्य है ।

(३) रेल आदि की दुर्घटना के कारण जब किसी स्त्री के पति की मृत्यु हो जाये और वह विधवा स्त्री हर्जाने के रूप में अधिक धन माँगती हो ।

(४) तलाक़ के मामले में जब कि स्त्री अपने को गर्भवती बतलाती हो ।

(५) पति से दूर रहकर जब उसकी स्त्री गर्भवती हो जाये और वह व्यक्ति तलाक़ देना चाहता हो ।

(६) जब किसी अविवाहिता स्त्री अथवा विधवा पर गर्भबती होने का सन्देह किया जाये ।

(७) अपराध युक्त गर्भपात के लिये प्रयत्न करने पर ।

(८) विधवा अथवा अविवाहिता स्त्री का गर्भवती हो जाने पर लज्जा और अपमान से बचंने के हेतु आत्महत्या के लिये प्रयत्न करने पर ।

गर्भस्थिति (गर्भधारणा) के चिह्न[1]

गर्भस्थिति के चिह्न २ प्रकार के होते हैं:—

[१] अनिश्चित चिह्न और [२] निश्चित चिह्न

[१] अनिश्चित चिन्ह:—

(१) आर्तवादर्शन:—

गर्भावस्था में स्त्री का मासिक-धर्म बन्द हो जाता है। किन्तु इस चिह्न पर अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता क्योंकि इसके अतिरिक्त किसी अन्य कारण से भी आर्तवादर्शन हो सकता है।

(२) Morning sickness:—

गर्भस्थिति होने के दो मास बाद जी मचलाना, मुँह में पानी आना और छर्दि—ये लक्षण उत्पन्न होते हैं, इसको 'मार्निङ्ग सिक्नेस' कहते हैं। इस पर भी अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता क्योंकि आर्तवादर्शन की भाँति यह भी किसी अन्य कारण से हो सकता है।

(३) स्तनगत परिवर्तन:—

(I) गर्भस्थित के तृतीय मास के प्रारम्भ में चूचुक मोटे हो जाते हैं और उनके चारो ओर का मण्डल उभर आता है। यह मण्डल किंचित कृष्ण वर्ण का हो जाता है।

(II) तृतीय मास के अन्तमें स्तनों को दबाने से दुग्ध निकलनेंलगता है।

(III) स्तन-मण्डल में स्थित (Montgomery's follicles) प्राय: गर्भावस्था में उभर आती हैं। प्राथमिक (Primary) और द्वितीयक (Secondary) मण्डल भी कुछ उभर आते हैं।

(४) गर्भाशय वृद्धि:—

(I) गर्भस्थिति होने के बाद ३ मास तक गर्भाशय श्रोणिगुहा में रहता है।

---

1. **Signs of Pregnancy**

(II) चौथे महीने के अन्त में भगास्थि से ऊपर आ जाता है।

(III) पाँचवें महीने के अन्त में नाभि और भगास्थि के बीच में होता है।

(IV) छठे महीने के अन्त में नाभि तक पहुंच जाता है।

(V) सातवें महीने के अन्त में नाभि और उरःफलकाग्र-पत्र तक पहुँच जाता है।

(५) हेगर (Hegar) का चिह्नः—

यह चिह्न छठे से बारहवें सप्ताह तक मिलता है। इस काल में गर्भाशय शरीर के नीचे के भाग के अत्यन्त मृदु हो जाने के कारण परीक्षण के समय जब योनि के भीतर गर्भाशय ग्रीवा के ऊपर के भाग में अंगुली डालकर और बाहर से दूसरे हाथ की अंगुलियों से गर्भाशय का निचला भाग टटोला जाता है तो दोनों हाथ की अंगुलियां बिलकुल मिली हुई सी प्रतीत होती हैं।

(६) गर्भस्पन्दनप्रतीतिः—

यह एक प्रकार की गर्भ की फड़कन है जिसे अंग्रेजी में Quickening कहते हैं। गर्भिणी स्त्री को १८ वें सप्ताह के लगभग इसका ज्ञान होता है।

[२] निश्चित चिन्हः—

(१) गर्भहृत्स्पन्दनः—

गर्भस्थिति का यह एक विश्वसनीय चिन्ह है। लगभग १८ वें सप्ताह में गर्भहृच्छन्द सुनाई देने लगता है किन्तु स्त्री को स्थूलता, जलोदर आदि रोग होने के कारण अथवा गर्भमृत्यु के कारण वह शब्द नहीं सुनाई देता।

(२) गर्भ के अङ्गः—

अन्तिम चार मास में गर्भिणी स्त्री के उदर को टटोलने पर गर्भ के भिन्न भिन्न अङ्गों का पता चल सकता है। इसके अतिरिक्त उदर पर हाथ रखने से गर्भ की गतियों का भी ज्ञान हो सकता है।

(३) ऐक्स-किरण द्वारा परीक्षणः—

चतुर्थ मास में ऐक्स-किरण द्वारा परीक्षा करने पर गर्भास्थियों की उपस्थिति का ज्ञान हो जाता है जो कि गर्भस्थिति का एक विश्वसनीय चिन्ह है

(४) गर्भाशय में भ्रूण या गर्भ का पाया जाना।

(५) बीजकोष में बीज किणपुट (Corpus leutum) **का पाया जाना।**

प्रसव की परीक्षाः—

प्रसव की तीन अवस्थायें होती हैं:[1]—

(१) प्रसरणावस्था।

(२) गर्भजन्मावस्था।

(३) अपराजन्मावस्था।

लक्षणः—

(१) प्रसरणावस्था के लक्षणः—

(I) गर्भाशय के आकुञ्चनों के कारण प्रसव वेदना होती है। यह वेदना पीठ के नीचे के भाग में होती है।

(II) गर्भाशयमुख विस्तृत हो जाता है।

(III) योनि से रक्तमिश्रित श्लेष्मा निकलती है।

(IV) गर्भशिर वस्ति-गह्वर के किनारे पर दृढ़ हो जाता है।

(V) गर्भाशयमुख-विस्तृति के कारण उसके सामने की जरायु विदीर्ण हो जाती है।

इस अवस्था में ६ से १२ घण्टे लगते हैं।

(२) गर्भजन्मावस्था के लक्षणः—

(I) प्रसव वेदना—निरन्तर और अत्यन्त पीड़ाकर होती है।

(II) त्वचा—स्वेदयुक्त होती है।

(III) नाड़ीगति—तीव्र होती है।

(IV) श्वास-क्रिया—जल्दी जल्दी होती है।

इस अवस्था में $\frac{3}{4}$ से २ घण्टे लगते हैं।

---

१ विस्तार पूर्वक जानने के लिये सुश्रुत शारीर—डा० घाणेकर का देखो।

(३) अपराजन्मावस्था के लक्षण:—

(I) नाभि-नाड़ी अधिक लम्बी हो जाती है।

(II) गर्भाशय उदर-गुहा में ऊपर की ओर नाभि या उससे कुछ अधिक ऊँचाई तक चढ़ जाता है।

(III) श्रोणिगुहा से गर्भाशय के ऊपर चढ़ने के कारण नाभि के पास उदर प्राचीरा में कुछ उभार दिखाई देने लगता है।

(IV) इस समय गर्भाशय में स्थिरता कम होती है और उसे हाथ से इधर उधर हिलाया जा सकता है।

ग्यारहवाँ अध्याय

बलात्कार

परिभाषा:—

किसी पुरुष का, १३ वर्ष से कम आयु वाली अपनी स्त्री अथवा १४ वर्ष से कम आयु वाली किसी अन्य बालिका के साथ सम्भोग करना बलात्कार कहलाता है। अपनी स्त्री को छोड़कर १४ वर्ष से ऊपर की आयु वाली किसी स्त्री के साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध, उसकी स्वतन्त्रता से दी गई स्वीकृति के बिना अथवा अन्याय पूर्ण रीतियों से स्वीकृति लेकर सम्भोग करना भी बलात्कार कहलाता है।

वलात्कार करते समय चाहे वीर्य निकले या न निकले, केवल भग के अन्दर शिश्न का प्रवेश मात्र ही बलात्कार समझा जाता है।

निम्नलिखित अवस्थाओं में स्त्री की स्वीकृति मान्य नहीं समझी जाती:—

(१) यदि स्त्री किसी बात को यथार्थ में न समझती हो, जैसे कुछ लोगों का यह अन्ध विश्वास है कि कुमारी के साथ सम्भोग करने से पूयमेह और उपदंश व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं।

(२) यदि स्त्री मस्तिष्क जन्य विकृति अथवा विषप्रयोग के कारण जिस

कार्य के लिये वह स्वीकृति दे, उसकी प्रकृति और परिणाम को समझने से असमर्थ हो।

(३) यदि उसको मृत्यु आदि का भय दिखलाकर उसकी स्वीकृति प्राप्त की गई हो।

(४) यदि स्त्री को उन्माद हो गया हो और उसके साथ सम्भोग करने वाला व्यक्ति यह जानता हो कि उस स्त्री को उन्माद है।

(५) यदि स्त्री 'स्वीकृति देने की आयु' से कम उम्र वाली हो।

स्वीकृति देने की आयु:—

भारतवर्ष में १४ वर्ष की आयु पूर्ण करने के पश्चात स्त्री सम्भोग के लिये स्वीकृति दे सकती है और वह स्वीकृति मान्य होती है।

पुरुष की परीक्षा:—

पुरुष की परीक्षा करने से पूर्व उसकी लिखित स्वीकृति ले लेनी चाहिये और स्वीकृति लेने से पहले उसे यह बतला देना चाहिये कि डाक्टरी-परीक्षा फल उसके विरुद्ध हो सकता है।

परीक्षा करते समय निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिये:—

(१) परीक्षण का ठीक ठीक समय, तिथि, मास और वर्ष।

(२) व्यक्ति की आयु, उत्पादक अंगों का वृद्धि-क्रम और बालात्कार की हुई स्त्री की अपेक्षा पुरुष का शारीरिक बल।

(३) वस्त्रों पर कीचड़, रक्त अथवा शुक्र के धब्बे।

(४) मुख, हाथ, जाँघ और उत्पादक अंगों पर खुरेचन आदि लड़ाई झगड़े के चिन्हों की उपस्थिति।

(५) शुक्रस्राव के कारण गुह्य-प्रदेश के बाल आपस में चिपटे हुये पाये जा सकते हैं।

(६) स्त्री के सिर के बाल पुरुष के शरीर पर पाये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त स्त्री के गुह्य प्रदेश के बाल पुरुष के शिश्न, अण्डकोष अथवा उनके आस पास कहीं पर पाये जा सकते हैं।

(७) पूयमेह अथवा उपदंश के चिन्ह पाये जायेंगे। एतदर्थ इन रोगों

के सम्प्राप्ति-काल[1] तक प्रतीक्षा करनी चाहिये और तब स्त्री की परीक्षा करनी चाहिये।

(८) घटना-स्थल का भी निरीक्षण करना चाहिये। वहां पर रक्त के धब्बे, फटे हुये वस्त्रों के टुकड़े, ज़मीन पर शारीरिक चिह्न अथवा उस स्थान की घास दबी हुई पायी जा सकती है।

स्त्री की परीक्षाः—

स्त्री की परीक्षा करने से पूर्व स्त्री को इस मामले को स्वयं बतलाने देना चाहिये। इस बीच में उससे किसी भी प्रकार का कोई प्रश्न नहीं करना चाहिये। परीक्षा करने से पूर्व यदि स्त्री नाबालिग़ है तो उसके पिता अथवा संरक्षक की स्वीकृति और यदि वह बालिग़ है तो उसकी लिखित स्वीकृत ले लेना अनिवार्य है। स्वीकृति के बिना स्त्री की परीक्षा करना कानून की दृष्टि से अपराध है। चिकित्सक को स्त्री के वस्त्रों को नहीं उतारना चाहिये अपितु स्त्री से कहना चाहिये कि वह अपने वस्त्रों को उतार दे।

परीक्षा करते समय तिथि, स्थान और ठीक ठीक समय देखकर निम्नलिखित क्रम से कार्यारम्भ करना चाहियेः—

(१) वस्त्रः—यदि स्त्री उन्हीं वस्त्रों को पहने हुये हो जिन्हें कि बलात्कार के समय पहने हुये थी तो उन वस्त्रों की सम्यकतया परीक्षा करनी चाहिये। उनमें शुक्र अथवा रक्त के धब्बे पाये जा सकते हैं। शुक्र के धब्बे प्रायः आगे की ओर और रक्त के धब्बे प्रायः पीछे की ओर होते हैं। इसके अतिरिक्त वस्त्र फटे हुये अथवा कीचड़ से सने हुये भी पाये जा सकते हैं।

(२) मुख, हाथ, पैर, छाती और पीठ पर लड़ाई झगड़े के कारण-खुरेचन आदि के चिन्ह पाये जायेंगे। इस प्रकार के चिन्ह युवतियों में अधिक पाये जाते हैं क्योंकि वे अपनी रक्षा के लिये पूर्ण यत्न करती हैं। बालिकाओं में लड़ाई झगड़े के चिन्ह बहुत कम मिलते हैं क्योंकि वे अपनी रक्षा ठीक प्रकार से नहीं कर सकतीं। कभी कभी किसी व्यक्ति पर असत्य दोषारोपण करने के लिये युवतियाँ अपने शरीर पर स्वयं इस प्रकार के चिन्ह बना लेती हैं, अतएव ये चिन्ह स्वकृत हैं अथवा परकृत—इसको भी मालूम करना चाहिये।

---

1. Incubation period,

इन चिन्हों के अतिरिक्त एक विशेष बात यह भी है कि स्त्री को चलने में कष्ट होता है और मल-त्याग अथवा मूत्र-विसर्जन के समय पीड़ा होती है।

(३) जननेन्द्रियाँ:—बलात्कार के मामले में जननेन्द्रिय की परीक्षा करते समय स्त्री को ठीक से लिटा कर उसकी जाँघों को अच्छी तरह फैलाकर रखना चाहिये। परीक्षा के समय पर्याप्त प्रकाश का होना भी आपेक्षित है । इसमें निम्नलिखित बातों को ध्यानपूर्वक देखना चाहिये:—

(I) यदि गुह्य-प्रदेश के बाल शुक्र की उपस्थिति के कारण आपस में चिपट गये हों तो कुछ बालों को काट कर शुक्राणु की उपस्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के हेतु परीक्षण के लिये सुरक्षित रखना चाहिये।

(II) उत्पादक अङ्गों पर अथवा उसके आस पास शुष्क अथवा आर्द्र रक्त पाया जा सकता है। यदि योनि पर आघात न हो तो योनि से प्रायः बहुत कम रक्त-स्राव होता है । यह रक्तस्राव आर्तव-शोणित (Menstrual blood) के कारण भी हो सकता है अथवा किसी व्यक्ति पर असत्य दोषारोपण के उद्देश्य से स्त्री अपने उत्पादक अङ्गों और वस्त्रों को रक्त से गीला कर सकती है।

(III) बाह्य जननेन्द्रियों पर रक्तिमा, शोथ, खुरेचन और उधड़न पाये जा सकते हैं।

(IV) कुमारी बालिकाओं में पूर्ण सम्भोग करने के परिणाम स्वरूप योनिच्छद प्रायः उधड़ जाती है, और फटकर उसके कई एक टुकड़े हो जाते हैं जिनके किनारे रक्तिमायुक्त, शोथ युक्त और पीड़ा युक्त होते हैं। बलात्कार के एक या दो दिन के बाद परीक्षा करने पर जब योनिच्छद को स्पर्श किया जाता है तो उसमें से रक्तस्राव होने लगता है । ये फटे हुये टुकड़े ५ या ६ दिन में अच्छे हो जाते हैं और ८ या १० दिन में संकुचित होकर तन्तुओं के नन्हें नन्हें कणों की तरह मालूम पड़ते हैं। कभी कभी सम्भोग करने पर योनिच्छद पूर्णतया नष्ट हो जाती है। यदि योनिच्छद अपनी वास्तविक अवस्था में हो और उसमें उधड़न न हो तब योनि-छिद्र के विस्फार की ओर ध्यान देना चाहिये। यदि योनि-छिद्र बहुत बड़ा हो तो योनिच्छद के बिना फटे हुये भी स्त्री के साथ

सम्भोग किया जा सकता है। छोटी छोटी बालिकाओं में बलात्कार से प्रायः योनिच्छद विदीर्ण नहीं होता अपितु उसमें रक्तिमा और शोथ उत्पन्न हो जाते हैं। मैथुन-कर्म की अभ्यस्त सयानी विवाहित स्त्रियों की बाह्य जननेन्द्रियों, मूलाधार पीठ, उदर, जाँघ, हाथ और ग्रीवा पर खुरचने और छिलने के चिह्न पाये जा सकते हैं।

(V) योनि में एक काँच की शलाका प्रवेश करके योनिगत श्लैष्मिक स्राव को प्राप्त करना चाहिये। तदनन्तर उसमें शुक्राणु की उपस्थिति की जाँच करनी चाहिये। यदि उसमें शुक्राणु उपस्थित हों तो यह बालिकाओं और कुमारियों में बलात्कार किये जाने का एक ठोस प्रमाण है किन्तु सयानी विवाहित स्त्रियों के योनिगत श्लैष्मिक स्राव में शुक्राणु के उपस्थित होने पर यह आवश्यक नहीं है कि उनके साथ बलात्कार ही किया गया हो किन्तु यह पूर्व-सम्भोग किये जाने का प्रमाण है।

(VI) उपदंश और पूयमेह के संक्रमण के चिन्हों को भी देखना चाहिये।

व्यवहारायुर्वेद सम्बन्धी महत्वः—

(१) स्त्री की पूर्ण चेतनावस्था में कोई भी व्यक्ति बिना किसी सहायता के पूर्ण सम्भोग नहीं कर सकता। यदि पुरुष स्त्री की अपेक्षा सबल हो और दूसरे लोग बलात्कार करते समय अधिक काल तक न जान पायें तो पुरुष स्त्री के साथ भली प्रकार मैथुन कर भी सकता है।

(२) क--कुमारी के साथ उसकी स्वभाविक निद्रा के समय पूर्ण सम्भोग करना असम्भव है क्योंकि प्रथम बार मैथुन करने से उत्पन्न हुई पीड़ा के कारण वह अवश्य जाग जायेगी।

ख—भग के अन्दर शिश्न का प्रवेश कुमारी को बिना जगाये हुये किया जा सकता है।

ग--जिस स्त्री के साथ पहले भी बहुत बार मैथुन किया जा चुका हो अर्थात् जो मैथुन की अभ्यस्त हो, उसके साथ बिना उसके जगे ही सम्भोग किया जा सकता है।

(३) स्त्री की अचेतनावस्था में बलात्कार किया जा सकता है।

(४) बलात्कार से गर्भ-धारण हो सकती है।

(५) बलात्कार के परिणाम स्वरूप मृत्यु भी हो सकती है:—

यदि पुरुष, जिसका शिश्न बहुत बड़ा हो—किसी ऐसी स्त्री के साथ जिसकी योनि, योनिनलिका, आदि बहुत तंग हों, बलपूर्वक बलात्कार करे तो स्त्री के अंगों के उधड़ जाने के परिणाम स्वरूप रक्तस्राव और स्तब्धता होकर मृत्यु हो सकती है।

किसी एक ही स्त्री के साथ बहुत से व्यक्तियों के बार बार मैथुन करने से Exhaustion के परिणाम स्वरूप प्रायः मृत्यु हो जाती है।

पुरुष की आयुः—

किस आयु तक कोई व्यक्ति बलात्कार करने में असमर्थ होता है इसकी कोई सीमित आयु भारतीय कानून में नहीं मानी गयी है। एतदर्थ इङ्गलैण्ड के कानून में १४ वर्ष से कम आयु की सीमा निर्धारित की गई है। भारतवर्ष में किसी भी आयु के व्यक्ति को बलात्कार के सिद्ध हो जाने पर न्यायालय द्वारा दण्ड दिया जा सकता है।

स्त्री की आयुः—

किसी भी आयु की स्त्री के साथ बलात्कार किया जा सकता है। किन्तु कुमारी बालिकाओं के साथ बलात्कार होते हुये अधिक देखा जाता है, इसके दो कारण हैं:—

(I) बहुत से लोगों का यह अन्ध विश्वास है कि पूयमेह और उपदंश व्याधियाँ कुमारी के साथ सम्भोग करने से दूर हो जाती हैं लेकिन वास्तव में यह बात असत्य है।

(II) बालिकाओं में अपनी रक्षा करने की शक्ति नहीं होती, यदि होती भी है तो बहुत कम।

बारहवाँ अध्याय

अस्वभाविक मैथुन सम्बन्धी अभियोग

इन्डियन पेनेल कोड की धारा ३७७ में उन अभियोगों का, जो कि प्रकृति के नियम के विरुद्ध किसी पुरुष, स्त्री अथवा पशु के साथ शारीरिक मैथुन से सम्बन्ध रखते हैं, वर्णन मिलता है। शारीरिक मैथुन का अभियोग लगाने के लिये केवल शिश्न का प्रवेश मात्र ही पर्याप्त है।

अस्वाभाविक मैथुन के प्रकारः—

(१) **गुद मैथुन** (Sodomy)
(२) **हस्त मैथुन** (Masturbation)
(३) **एक स्त्री का दूसरी स्त्री के साथ मैथुन** (Tribadism)
(४) **पशु मैथुन** (Bestiality)

गुद-मैथुन

किसी पुरुष का पुरुष, स्त्री अथवा बच्चे के साथ गुदा में मैथुन करना गुदमैथुन कहलाता है। यदि स्वीकृति लेकर गुदमैथुन किया गया हो तो इन्डियन पेनेल कोड की धारा ३७७ के अनुसार दोनों को न्यायालय की ओर से दण्ड मिलता है। प्रायः सभी देशों में गुद मैथुन प्रचलित है। इसमें कर्ता और कर्म दोनों के परीक्षण की नितान्त आवश्यकता है। निद्रा की अवस्था में किसी के साथ बिना जगाये हुये गुद मैथुन नहीं किया जा सकता।

गुद-मैथुन के चिन्हः—

जिसके साथ गुद मैथुन किया जाये अर्थात् कर्म (Passive agent) में और जों व्यक्ति गुद मैथुन करे अर्थात् कर्त्ता (Active agent) में निम्नलिखित चिन्ह पाये जायेंगेः—

अभ्यस्त कर्म में[1] —

(१) नितम्ब से गुदा की ओर को कीप की तरह आकृति।

---

1 Habitual passive agent

(२) गुदा और उसके समीपस्थ प्रान्त में पूर्व खुरेचन और उधड़न के रोपण-तन्तुओं का होना।

(३) पूयस्राव, Chancre अथवा Condyloma की उपस्थिति।

(४) गुदप्रदेश में विकृति।

अनभ्यस्त कर्म में:—

(१) गुद प्रदेश की त्वचा का छिला हुआ अथवा खुरचा हुआ होना।

(२) गुदा की आभ्यन्तरिक श्लैष्मिक कला की प्रकृति त्रिभुजाकार होती है जिसका आधार गुदा की ओर और भुजायें मलाशय की ओर को होती हैं।

(३) गुदा के आस पास, मूलाधार पीठ, जांघ और वस्त्रों पर रक्त अथवा उसके धब्बे पाये जा सकते हैं।

(४) गुदा में और उसके आस पास तथा वस्त्रों पर शुक्र अथवा उसके धब्बे पाये जा सकते हैं।

(५) यदि गुद-मैथुन बिना स्वीकृति के किया गया हो औ कर्म-पुरुष-कोई युवक हो तो उसके शरीर पर लड़ाई झगड़े के चिन्ह मिलेंगे।

(६) गुदभ्रंश।

(७) पूय-स्राव अथवा उपदंश के व्रण पाये जा सकते हैं।

(८) गुदा के आस पास पुरीषाँश हो सकता है।

कर्त्ता में:—

(१) शिश्न, भगास्थि-प्रदेश, जाँघ अथवा वस्त्रों पर शुक्र अथवा उसके धब्बे और पुरीषाँश पाया जा सकता है।

(२) यदि गुद मैथुन बिना स्वीकृति के किया गया हो और कर्म पुरुष कोई युवक हो तो कर्ता में भी लड़ाई झगड़े के चिह्न मिलेंगे।

(३) यदि कर्ता गुद मैथुन करने का अभ्यस्त हो तो कभी कभी शिश्न साधारण लम्बाई से कुछ अधिक लम्बा होता है, और शिश्न, मुण्ड से कुछ दूरी पर सिकुड़ा हुआ होता है।

हस्त-मैथुन

न्यायालय की ओर से हस्त-मैथुन करने वाले पुरुषों और स्त्रियों को दण्ड नहीं दिया जाता। यह प्रायः उन व्यक्तियों में पाया जाता है जो कि बहुत समय

से मैथुन न कर सके हों और परिणाम स्वरूप कामेच्छा इतनी प्रबल और भयंकर हो गयी हो कि उन्हें हस्त-मैथुन करने के लिये बाध्य होना पड़ा हो। किन्तु इस प्रकार की आदत सदैव कुसंगति और बुरी शिक्षा के कारण ही पड़ती है। स्त्रियों में हस्त मैथुन कम देखा जाता है। चिरकाल से हस्त मैथुन करने वाले व्यक्तियों में निम्नलिखित लक्षण पाये जाते हैं:--

(१) मानसिक दौर्बल्य-प्रायः स्मरण और मनन शक्ति बहुत कम हो जाती है

(२) बार बार मूत्र-विसर्जन करना।

(३) अण्डों का लटका हुआ होना।

(४) शिश्न मुण्ड रक्त वर्ण का हो जाता है।

(५) नेत्र—गड्ढों में चले जाते हैं और उनके नीचे का प्राँन्त कृष्ण वर्ण की रेखाओं से युक्त होता है।

एक स्त्री का दूसरी स्त्री के साथ मैथुन

यह मानसिक विप्रकृति का एक रूप है जिसे कि एक स्त्री दूसरे के साथ करती है। इसमें स्त्रियाँ कामेच्छा को बढ़ाने के लिये शारीरिक सम्पर्क के द्वारा जननेन्द्रियों को परस्पर रगड़ती हैं।

पशु-मैथुन

मनुष्य के द्वारा पशुओं के विरुद्ध लिङ्ग के साथ मैथुन करने को पशु मैथुन या तिर्यग्योनिगमन कहते हैं। एतदर्थ कुत्ता, बिल्ली, गाय, गधी, घोड़ी, बकरी इत्यादि पशुओं का अधिक उपयोग किया जाता है।

पशु-मैथुन के चिन्हः—

पशु मेंः—

(१) योनि नलिका में मानव-शुक्राणु की उपस्थिति।

(२) जननेन्द्रियों में उधड़न—कभी कभी।

(३) रक्तस्राव—कभी कभी।

मनुष्य मेंः—

(१) पशु के बाल मनुष्य के शरीर अथवा वस्त्रों पर पाये जा सकते हैं। ये बाल विशेषतया पशु के जननेन्द्रिय के होते हैं।

(२) उत्पादक अङ्गों में खुरेचन।

तेरहवाँ अध्याय

गर्भपात[1] और भ्रूणहत्या[2]

गर्भपात

व्यवहार में मैथुन जन्य पदार्थ —भ्रूण अथवा गर्भ को समय से पूर्व गर्भाशय से निकाल देने को 'गर्भपात' कहते हैं। किन्तु व्यवहारायुर्वेद में गर्भ की अवस्था के अनुसार इसके लिये तीन शब्दों का प्रयोग किया जाता है:—गर्भ-स्राव, गर्भपात और पूर्वप्रसव।

गर्भस्राव[3]:—

गर्भावस्था के प्रथम तीन मास में अपरा के बनने से पूर्व गर्भ का बाहर निकलना 'गर्भस्राव' कहलाता है।

गर्भपात[4]:—

गर्भावस्था के चौथे और सातवें मास के बीच में जीवित रहने योग्य अवस्था (Stage of viability) तक पहुँचने से पूर्व गर्भ का बाहर निकलना 'गर्भपात' कहलाता है।

पूर्वप्रसव[5]:—

गर्भावस्था के आठवें और नवें महीनों में जीवित रहने योग्य (Viable) होने के बाद किन्तु पूर्णतया प्रगल्भ (Mature) होने से पूर्व शिशु का बाहर निकलना 'पूर्व प्रसव' कहलाता है।

गर्भधारण की कोई भी अवस्था हो अथवा भ्रूण की आयु चाहे जितनी हो, व्यवहारायुर्वेद की दृष्टि से—"माता की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति से, प्रकृति-विरुद्ध, अन्याय पूर्वक और बलात् मैथुन जन्य पदार्थ को गर्भाशय से बाहर निकालना 'गर्भपात' कहा जाता है।"

---

1. Abortion, 2. Foeticide, 3. Abortion,
4. Miscarriage, 5. Premature delivery,

भ्रूणहत्या

गर्भ के उत्पन्न होने से पूर्व अन्याय से गर्भ के जीवन को नष्ट कर देना भ्रूणहत्या या गर्भहत्या कहलाता है ।

गर्भपात के भेदः—

[१] प्राकृतिक गर्भपात
[२] कृत्रिम गर्भपात

[१] प्राकृतिक गर्भपातः—

यह अधिकतर गर्भावस्था के प्रारम्भिक महीनों में हुआ करता है । इसका कारण माता अथवा भ्रूण से सम्बन्धित है ।

मातृ सम्बन्धी कारणः—

पाण्डु, कामला, जीर्ण ब्राइट्स डिज़ीज़, हृदय और फुफ्फुस के रोग, प्लेग, इन्फ्लूएँन्ज़ा, विषम ज्वर, विशूचिका, उपदंश, मसूरिका, गर्भाशय के रोग, तीव्र आघात और पेट पर पेटी आदि का कसना, मानसिक व्याधियाँ जैसे आकस्मिक स्तब्धता, भय, शोक, उत्तेजना आदि ।

गर्भ सम्बन्धी कारणः—

(१) गर्भ की मृत्यु ।
(२) भ्रूण अथवा गर्भ के रोग ।

[२] कृत्रिम गर्भपातः—

(क) न्यायपूर्ण

(१) माता के जीवन की रक्षा के लिये यदि गर्भपात कराया जाये ।

(ख) अपराधजन्य

(१) गर्भधारणा के समय किसी भी अवस्था में गर्भाशय से मैथुन जन्य पदार्थ को अन्याय से बाहर निकालना 'अपराध जन्य गर्भपात' कहलाता है ।

(क) न्यायपूर्ण	(ख) अपराधजन्य
(२) यदि गर्भपात के विशेषज्ञ चिकित्सक की सलाह पर ही गर्भपात कराया जाये।	(२) स्त्री सगर्भा है या नहीं, इसे ध्यान में रखते हुये गर्भपात या गर्भ-स्राव कराना या उसके लिये यत्न करना व्यवहारायुर्वेद की दृष्टि से दण्डनीय है। किन्तु यदि माता के जीवन की रक्षा के लिये ऐसा किया जाता है, तो वह दण्ड का भागी नहीं होगा।
(३) यदि स्त्री और उसके पति अथवा संरक्षक की स्वीकृति पर ही गर्भपात कराया जाये।	

अपराधजन्य गर्भपात के कारणः—

(१) कानून के विरुद्ध सम्भोग करने के कारण अविवाहिता अथवा विधवा स्त्री का सगर्भा हो जाना।

(२) कानून के विरुद्ध सम्भोग करने के कारण विवाहिता स्त्री का अपने पति से पृथक रहकर सगर्भा हो जाना।

(३) पैतृक निर्धनता।

(४) धन सम्बन्धी मामले।

व्यवहारायुर्वेद सम्बन्धी महत्वः—

(१) स्त्री सगर्भा थी या नहीं? वास्तविक गर्भपात में इसके जानने की आवश्यकता पड़ती है।

(२) स्त्री को गर्भ-स्पन्दन (Quickening) का ज्ञान हो चुका था या नहीं? यदि ज्ञान हो चुका था तो दण्ड अधिक होगा।

(३) गर्भपात अथवा गर्भपात के लिये प्रयत्न स्त्री की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति से किया गया? क्योंकि यदि स्त्री की स्वीकृति लेकर गर्भपात किया गया होगा तो दण्ड कम हो जायेगा।

(४) क्या गर्भपात अथवा गर्भपात के प्रयत्न से स्त्री की मृत्यु हुई है?

(५) क्या शिशु की मृत्यु का कारण उसकी उत्पत्ति से पूर्व उसको मार डालने की क्रिया है ?

गर्भपात का प्रमाणः—

गर्भपात की सिद्धि के लिये सावधानी के साथ खोज करने की आवश्यकता है । इसमें निम्नलिखित बातें देखनी चाहियें:—

[१] स्त्री, जिसका गर्भपात हुआ ।
[२] गर्भपात में गर्भाशय से निकले हुये पदार्थ ।
[३] गर्भपात कराने के साधन ।

[१] स्त्री, जिसका गर्भपात हुआः—

(क) जीवितावस्था मेंः—

(१) तात्कालिक प्रसव के चिन्ह पाये जायेंगे । ये गर्भधारणा की अवस्था और प्रसव के बाद परीक्षण से पूर्व तक के समय के अनुसार होते हैं:-

(I) इतिहासः—

1. जिस स्त्री का गर्भपात हुआ, उसका बयान ।
2. गर्भपात से पूर्व उस स्त्री के स्वास्थ्य का विवरण ।
3. गर्भपात का स्वीकृत कारण ।
4. पूर्व-गर्भपात का इतिहास, आदि ।

(II) उत्पादक अङ्गों में परिवर्तनः—

इसका कारण अप्राकृतिक साधनों के द्वारा बलात् प्रसवः कराना है । इसमें बाह्य उत्पादक अङ्ग—शोथयुक्त, विदीर्ण अथवा स्रावयुक्त हो सकते हैं । गर्भाशय विस्फारित होता है ।

(III) उदर प्रदेश में परिवर्तनः—

1. औदरीयभित्ति ढीली पड़ जाती है ।
2. श्वेत रेखायें स्पष्टतया दिखलाई देती हैं ।
3. भगास्थि से नाभि तक एक काली रेखा दिखलाई पड़ती है जिसे Linea nigra कहते हैं ।

(IV) छाती में परिवर्तनः—

१. स्तन पूर्ण और उभरे हुये होते हैं।

२. चूचुक को दबाने पर दूध निकलता है।

३. चूचुक के चारों ओर का मण्डल स्पष्टतया मालूम होता है।

तात्कालिक प्रसव के सम्बन्ध में जब तक कि स्त्री में अधिकांश चिन्ह न पाये जायें तब तक कुछ निश्चयात्मक रूप से सम्मति नहीं दी जा सकती है क्योंकि उनमें से कई एक गर्भाशय अथवा डिम्ब ग्रंथियों के रोगों से उत्पन्न हो सकते हैं। तात्कालिक प्रसव के चिन्ह प्रायः ८ या १० दिन में लुप्त हो जाते हैं।

(२) गर्भपात में प्रयुक्त साधन के अवशिष्ट चिह्नः—

(I) उदर पर खरोचन, आदि।

(II) उत्पादक अङ्गों पर आघात।

(III) योनि में बाह्य वस्तुओं की उपस्थिति।

(ख) मृतावस्था मेंः—

(I) प्रयुक्त साधन के प्रभाव और चिह्नः—

१. बाह्य वस्तु के प्रयोग के कारण उत्पन्न आभ्यन्तरिक व्रण।

२. गर्भाशय में बाह्य वस्तु का उपस्थित होना।

३, आमाशय, पक्वाशय, आँत आदि में विष की उपस्थिति।

(II) तात्कालिक प्रसव के चिह्नः—

१. गर्भाशयः—इसका आकार, जितने समय तक गर्भ गर्भाशय में रह-कर बाहर निकलता है, उसके उपर निर्भर है।

यदि ९ या १० महीने के बाद प्रसव हुआ है तो प्रसव के होने के एक या दो दिन बाद परीक्षा करने परः—

गर्भाशय की लम्बाई	७ से ८ इञ्च तक
,, चौड़ाई	४ इञ्च
,, भार	१½ पौंड

प्रसव के १५ दिन बाद परीक्षा करने परः—

गर्भाशय की लम्बाई ५ इञ्च

,, का भार $\frac{3}{4}$ पौंड

यदि ५ मास में प्रसव हुआ हो, तो—

प्रसव के तत्काल बाद परीक्षा करने परः—

गर्भाशय की लम्बाई ५ इञ्च

,, चौड़ाई २$\frac{3}{4}$ इञ्च

प्रसव के १४ दिन बाद परीक्षा करने परः—

गर्भाशय की लम्बाई ४$\frac{1}{2}$ इञ्च

,, चौड़ाई २$\frac{3}{4}$ इञ्च

गर्भाशय में आभ्यन्तरिक परिवर्तनः—

९ या १० मास में प्रसव होने की अवस्था में कुछ घंटे के अन्दर परीक्षा करने पर गर्भाशय के अन्दर निम्नलिखित परिवर्तन पाये जायेंगेः—

(१) गर्भाशय के अन्दर रक्तमिश्रित तरल पदार्थ मिलेगा।

(२) गर्भाशय का आभ्यन्तरिक तल बहुत गहरे रंग का—प्रायः कृष्ण वर्ण का होता है।

(३) अपराध जन्य गर्भपात में कभी कभी गर्भाशय के अन्दर बेंत, छड़ी अथवा डन्डा पाया जाता है।

चौदहवाँ अध्याय

शिशु-हत्या

परिभाषाः—

नवजात शिशु के उत्पन्न होने के समय से लेकर १५ दिन तक के अन्दर उसके जीवन को नष्ट कर देना शिशुहत्या कहलाता है। कानून में इसे परहत्या ही माना जाता है और इसमें इण्डियन पेनल कोड की धारा ३०२ के अनुसार अपराधी को दण्ड दिया जाता है। भारतवर्ष में शिशु के किसी भी भाग का

भाग का माता के शरीर से बाहर निकल आने पर यदि शिशु को मार डाला जाये तो उसे शिशुहत्या ही समझा जाता है।

शिशु-हत्या के कारण:—

(१) अविवाहिता स्त्रियाँ जब दुराचार के कारण शिशु को जन्म देती हैं, तो लज्जा और अपमान से अपनी रक्षा करने के लिये शिशुहत्या कर डालती हैं।

(२) इसी प्रकार विधवा स्त्रियाँ भी जिनको पुनः व्याह करने से रोका जाता है, जब दुराचार के कारण शिशु को जन्म देती हैं तो लज्जा और अपमान के भय से शिशुहत्या करती हैं।

(३) कभी कभी विवाहित स्त्रियाँ भी, जब वे अपने पति से पृथक् रहकर दुराचार के कारण शिशु को जन्म देती हैं, तब वे उत्पन्न हुये शिशु की हत्या कर डालती हैं।

(४) दहेज़ की प्रथा के कारण कुछ लोग अपनी लड़कियों की शादी करने में असमर्थ होते हैं, अतः इस बडे खर्चे को सहन न कर सकने के कारण वे उत्पन्न हुई बालिकाओं का प्राणान्त कर देते हैं।

व्यवहारायुर्वेद सम्बन्धी प्रश्न:—

(१) क्या शिशु मृतगर्भ (Still born) अथवा मृत प्रसव (Dead born) था?

(२) क्या शिशु जीवित उत्पन्न हुआ था?

(३) यदि जीवित उत्पन्न हुआ, तो कितने समय तक जीवित रहा?

(४) शिशु की मृत्यु का कारण क्या था?

(१) क्या शिशु मृत-गर्भ अथवा मृत-प्रसव था?

व्याख्या—

मृतगर्भ:—

जो गर्भधारण होने के २८ वें सप्ताह के बाद उत्पन्न हुआ हो और जिसमें माता से पूर्ण स्वतन्त्र होने के बाद जीवन के चिन्ह जैसे श्वास-क्रिया आदि कभी दिखलाई न पड़े हों, वह मृतगर्भ कहलाता है।

मृतप्रसवः—

जिस शिशु की गर्भाशय में ही मृत्यु हो गयी हो, उसे मृत-प्रसव कहते हैं। माता से पूर्ण स्वतन्त्र होने के बाद इसमें निम्नलिखित चिन्हों में से कोई भी पाया जा सकता है:—

(I) उत्पत्ति के समय 'प्रसव-पूर्व मृत्यूत्तर संकोच' (Anti-partum rigor mortis) के चिन्ह।

(II) मेकरेशन (Maceration) के चिन्ह--इसमें गर्भ का शरीर ढीला, श्लक्ष्ण और मृदु होता है। इसके अतिरिक्त इसमें एक प्रकार की मीठी मीठी अरुचिकर गन्ध भी होती है जो किं सड़न से उत्पन्न हुई दुर्गन्धि से बिलकुल भिन्न होती है। इसमें त्वचा रक्तिमायुक्त अथवा ताम्र वर्ण की हो जाती है जबकि कोथ में त्वचा हरित वर्ण की होती है।

(III) ममीफिकेशन के चिन्ह (Mnmification)

(२) क्या शिशु जीवित उत्पन्न हुआ था ?

जीवित शिशु-उत्पत्ति के प्रमाणः—

दीवानी मामलों में:—

(I) शिशु का चिल्लाना।

(II) हृदस्पन्दन का स्पर्शन, श्रवण अथवा दर्शन।

(III) पेशियों में गति होना।

अपराध जन्य मामलों में—

इस में न्यायधीश चिकित्सक की सहायता लेता है। मृत्यूत्तर-परीक्षा करके चिकित्सक को यह प्रमाणित करना होता है कि माता से स्वतन्त्र होने के बाद शिशु में जीवन के चिन्ह उपस्थित थे या नहीं। इसके लिये 'श्वास क्रिया का होना' एक उत्तम चिन्ह समझा जाता है। एतदर्थ वक्ष और फुफ्फुसों की परीक्षा की जाती है। इसमें वक्ष की आकृति, महाप्राचीरा की स्थिति, फुफ्फुस गत परिवर्तन; आमाशय, अन्त्र, वृक्क, मूत्राशय आदि के परिवर्तनों को देखा जाता है।

(I) वक्ष की आकृतिः—

श्वास-क्रिया से पूर्व छाती चपटी होती है किन्तु श्वास-क्रिया करने के बाद यह प्रसारित होकर कुछ फूल जाती है।

(II) महाप्राचीरा की स्थितिः—

श्वास-क्रिया से पूर्व महाप्राचीरा के नतोदर तोरण का सबसे ऊपर का भाग चौथी अथवा पाँचवीं पर्शुका के समतल में पाया जाता है किन्तु श्वास-क्रिया होने के पश्चात यह तोरण चपटा हो जाता है और छठी अथवा सातवीं पर्शुका की सीध में आ जाता है।

(III) फुफ्फुसगत परिवर्तनः—

श्वास-क्रिया होने से पूर्व फुफ्फुसों का आयतन कम होता है और उनके किनारे नुकीले होते हैं। श्वास क्रिया होने के पश्चात फुफ्फुसों के आकार में अत्यधिक वृद्धि होती है और उनके किनारे गोल हो जाते हैं। श्वास-क्रिया होने से पूर्व फुफ्फुस घन और दृढ़ होते हैं किन्तु श्वास-क्रिया होने के पश्चात वे स्थिति-स्थापक और स्पन्ज की तरह हो जाते हैं। श्वास-क्रिया होने से पूर्व फुफ्फुस रक्त कपिल अथवा चमकदार रक्त वर्ण के होते हैं और काटने पर उनमें से बहुत थोड़ा रक्त निकलता है जिसमें झाग नहीं होता किन्तु श्वास-क्रिया होने से पश्चात फुफ्फुस में गुलाबी रंग के चकत्ते पड़ जाते हैं और काटने पर उसमें से झागदार रक्त निकलता है। फुफ्फुसीय शिराओं और धमनियों में बन्धन बाँधकर फुफ्फुस को श्वास-प्रणाली (Trachea) और वायु नलिकाओं (Bronchi) के सहित प्रथक करके तौलना चाहिये। श्वास-क्रिया होने से पूर्व यह भार २ तोले ४$\frac{4}{5}$ माशे से ३ तोले १$\frac{1}{2}$ माशे तक होता है किन्तु श्वास-क्रिया होने के पश्चात इसका भार ४ तोले ८$\frac{3}{4}$ माशे से ५ तोले २$\frac{1}{2}$ माशे तक होता है। फुफ्फुसों का विशिष्ट घनत्व श्वास-क्रिया होने से पूर्व १०४० से १०५६ तक और श्वास-क्रिया होने के पश्चात् ९४० हो जाता है। श्वास क्रिया होने के पश्चात् फुफ्फुस जल में तैरता रहता है, किन्तु यह भी स्मरण रखना चाहिये कि निमोनिया, पैतृक राजयक्ष्मा और पैतृक उपदंश में फुफ्फुस जल में डूब जाता है और कोथोत्पादक गैसों की उपस्थिति के कारण फुफ्फुस जल में

तैरता रहता है। अतएव परीक्षा करते समय इन बातों को भी सावधानी के साथ देखना चाहिये।

(IV) आमाशय और आँतों में होने वाले परिवर्तनः—

परीक्षा करते समय आमाशय और आँतों के दोनों सिरों पर बंधन बाँध कर पृथक करके तब परीक्षा करनी चाहिये। श्वास-क्रिया होने से पूर्व ये जल में डूब जाते हैं और आमाशय में श्लेष्मा होती है। श्वास-क्रिया होने के पश्चात् ये जल में तैरते हैं और आमाशय में श्लेष्मा, लाला रस और वायु के बुलबुले होते हैं; आमाशय में रक्त, आमाशयगत मल, गर्भोदक, दुग्ध अथवा तरल आहार पाया जा सकता है।

(३) यदि शिशु जीवित उत्पन्न हुआ, तो कितने समय तक जीवित रहा?

इसका ठीक ठीक निर्णय करना असम्भव है किन्तु निम्नलिखित बाह्य और आभ्यन्तरिक परिवर्तनों पर विचार करने से किसी हद तक अनुमान किया जा सकता है।

(I) त्वचा में परिवर्तनः—

नवजात शिशु की त्वचा चमकोले रक्त वर्ण की होती है और उस पर एक चिकना पदार्थ 'वरनिक्स कैसिओसा' (Vernix caseosa) रहता है जो कि ग्रीवा, कुक्षि और वंक्षण पर विशेष रूप से पाया जाता है, यह उत्पत्ति के बाद एक या दो दिन तक रहता है। उत्पत्ति के दूसरे या तीसरे दिन त्वचा किंचित् कृष्ण वर्ण की हो जाती है, तदनन्तर ईंट की तरह लाल होकर अन्त में पीत वर्ण की हो जाती है। इस प्रकार लगभग सात दिन में त्वचा का साधारण वर्ण हो जाता है।

(II) नाभि-नाड़ी में परिवर्तनः—

शिशु उत्पत्ति के समय जब नाड़ीच्छेदन किया जाता है, तब कटे हुये सिरे की ओर से नाभि नाड़ी में परिवर्तन होना शुरू हो जाता है। नाड़ी का वह भाग जो कि गर्भ से नाभि पर जुड़ा रहता है, सिकुड़ने लगता है और २४ घंटे के अन्दर सूख जाता है। नाभि-नाड़ी के आधार पर ३६ से ४८ घंटे के अन्दर रक्त वर्ण का एक छल्ला सा बन जाता है। दूसरे या तीसरे दिन नाड़ी

ठिठुर जाती है और उसमें ममीफिकेशन (Mumification) होता है। पाँचवें या छठे दिन नाड़ी नाभि से पृथक हो जाती है। और वहाँ पर एक व्रण युक्त सतह रह जाती हैं। धीरे धीरे व्रण अच्छा होने लगता है और इस व्रण युक्त सतह का १० या १२ दिन में रोहण हो जाता है। इस प्रकार से नाड़ी का नाभि से पृथक हो जाना और नाभि पर बची हुई व्रण युक्त सतह का रोहण होना—'उत्पत्ति के बाद शिशु कुछ काल तक जीवित रहा'--इस बात का विश्वसनीय चिह्न है।

(III) रक्त परिभ्रमण में परिवर्तनः—

सेतु सिरा[1] (शिरीय नलिका), सेतु-धमनी[2] (धमनीय नलिका), नाभि शिरा और धमनी (Umbilical vessels) तथा शुक्तिच्छिद्र (Foramen ovale)—ये गर्भावस्था में गर्भ के अन्दर रक्तपरिभ्रमण में विशेष भाग लेते हैं, किन्तु शिशु-उत्पत्ति के बाद इनकी अवश्यकता नहीं रहती है। अतएव शिशु-उत्पत्ति के बाद वह कितने समय तक जीवित रहा, इसका निर्णय करने में निम्न-लिखित रक्तपरिभ्रमण गत परिवर्तन विशेषरूप से सहायक होते हैं:--

[I] उत्पत्ति के बाद ३ दिन के अन्दर—नाभि धमनियाँ बन्द हो जाती हैं।

[II] उत्पत्ति के बाद ४ या ५ दिन में—नाभि-सिरा और सेतु-सिरा लुप्त हो जाती हैं।

[III] ७ से १० दिन के अन्दर-सेतु-धमनी बन्द हो जाती है।

[IV] प्रायः ८ से १० दिन के अन्दर—शुक्तिच्छिद्र बन्द हो जाता है।

(४) शिशु की मृत्यु का क्या कारण था ?

शिशु की मृत्यु के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं:--

(१) प्राकृतिक (२) आकस्मिक और (३) अपराधजन्य

(१) प्राकृतिक कारणः—

(I) अप्रगल्भता।

(II) शारीरिक दुर्बलता।

---

1. Ductus venosus, 2. Ductus arteriosus,

(III) जातज रोग—उपदंश, मसूरिका आदि ।

(IV) रक्तस्राव ।

(V) विकृताकार—राक्षस (विकृत गर्भ) आदि ।

(२) आकस्मिक कारण:--

उत्पत्ति के समय:--

(I) प्रसव होते समय अधिक विलम्ब का होना ।

(II) नाभिनाड़ी-भ्रंश अथवा नाभि नाड़ी पर दबाव पड़ना ।

(III) गर्भोत्पत्ति के समय गर्भ की ग्रीवा में नाभि-नाड़ी का लिपटा हुआ होना अथवा नाड़ी में गाँठों का पड़ जाना ।

(IV) आघात—गर्भिणी स्त्री के उदर-प्रदेश में विभिन्न प्रकार के आघातों का लगना अथवा उसका किसी बहुत ऊँचे स्थान से गिर पड़ना ।

(V) माता की मृत्यु:—प्रसव से पूर्व यदि माता की मृत्यु हो जाये तो शिशु की भी मृत्यु हो सकती है ।

उत्पत्ति के बाद:—

(I) **दम घुटना:—**

शिशु की ग्रीवा से ऊपर का समस्त भाग यदि किसी कला से ढका हुआ हो अथवा किसी अन्य कारण से उसकी नासिका और मुख बंद हो जायें तो दम घुटने के कारण शिशु की मृत्यु हो सकती है ।

(II) **साहस प्रसव:—**

कभी कभी बहुप्रसवा स्त्रियों में गर्भाशय के अत्यन्त संकुचित हो जाने पर गर्भ अत्यल्प काल में अकस्मात गर्भाशय से निकल कर शरीर के बाहर चला आता है । इस अवस्था में यदि स्त्री सीधी खड़ी हो तो शिशु ज़मीन पर गिर पड़ता है और उसके शिर की अस्थियों जैसे पुरः कपाल, पार्श्व कपाल, शंखास्थि आदि का अस्थिभग्न हो जाता है । इस अवस्था में उसके सिर पर मिट्टी, बालू, कीचड़ आदि पाये जा सकते हैं, नाभि-नाड़ी टूट जाती है और उससे रक्तस्राव होकर शिशु की मृत्यु हो सकती है । यदि स्त्री मल-मूत्र त्याग कर रही

हो और उस समय साहस प्रसव हो जाये तो शिशु मल मूत्र के पात्रों में गिर सकता है और दम घुट कर उसकी मृत्यु हो सकती है ।

(३) अपराध जन्य कारण:—

(I) दम घुटना ।

(II) गला घोटना ।

(III) जल में डुबोना ।

(IV) आघात पहुँचाना ।

(V) विष देना, आदि ।

पन्द्रहवाँ अध्याय

उन्माद (Insanity)

सुविधा के लिये मानसिक कार्यों को तीन भागों में विभाजित किया जाता है:-

(१) **जानना** (Cognition or knowing).

(२) **अनुभव करना** (Affection or feeling).

(३) **कर्म करना** (Conation or doing).

इस तीनों कार्य प्रणालियों में पृथक पृथक या सामूहिक रूप से विकृति (Disorder) उत्पन्न होने से मानसिक व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं ।

(१) ज्ञान सम्बन्धी विकृतिः—

[क] Disorders of perception:—

(I) Illuison (**साध्य मिथ्याज्ञान**):—

इसमें रोगी को किसी बाह्य वस्तु के लिये ज्ञानेन्द्रिय सम्बन्धी भ्रम उत्पन्न हो जाता है, जैसे वह सड़क पर पड़ी हुई किसी रस्सी को साँप समझने लगता है । किन्तु यदि रोगी को यह दिखला दिया जाये कि वह रस्सी ही है, सांप नहीं—तब रोगी का यह भ्रम दूर हो जाता है, इसीलिये इसे साध्य-मिथ्याज्ञान कहते हैं ।

(II) Hallucination (**मतिभ्रम**):—

इसमें रोगी को ज्ञानेन्द्रिय सम्बन्धी भ्रम उत्पन्न हो जाता है किन्तु यह भ्रम किसी बाह्य वस्तु के ऊपर आश्रित नहीं होता, जैसेः—

(क) **शब्द-भ्रम या श्रवण-भ्रम** (Hallucination of hearing):-

इसमें रोगी को, पूर्णशान्ति का वातावरण होते हुये भी ऐसा सुनाई देता है—मानो कोई बोल रहा है ।

(ख) **रूप-भ्रम** (Hallucination of sight):—

इसमें रोगी को, किसी के न होते हुये भी यह दिखलाई देता है कि मानो कोई खड़ा है ।

(ग) **ग्रंध-भ्रम** (Hallucination of smell):—

इसमें रोगी को सुगंधि या दुर्गन्धि मालूम होती है, यद्यपि उस समय कहीं पर किसी भी तरह की गंध नहीं होती ।

(घ) **रस-भ्रम** (Hallucination of taste):—

इसमें जो कुछ रोगी खाता है, वह रुचिकर नहीं मालूम होता और वह यह समझता है कि इसमें किसी ने विष मिला दिया है ।

(ङ) **स्पर्श-भ्रम** (Hallucination of touch):—

रोगी को ऐसा मालूम होता है कि मानों उसके शरीर पर बहुत से कीड़े, मच्छर या चीटियाँ रेंग रही हैं ।

(च) **व्यवाय-भ्रम** (Sexual hallucination):—

इसमें रोगी को ऐसा मालूम होता है मानोंवह सचमुच सम्भोग कर रहा है ।

[ख] Delusion (**असाध्य मिथ्या ज्ञान**):—

इसमें रोगी को जिस बात पर विश्वास हो जाता है, वह चाहे- वास्तव में असत्य ही क्यों न हो और उसको चाहे जितना तर्क आदि के द्वारा समझाया जाये, वह मान नहीं सकता । जैसे किसी रोगी को यह विचार उत्पन्न हुआ कि उसके सगे भाई या अन्य किसी सम्बन्धी ने भोजन में विष मिला दिया है तो फिर वह रोगी मान नहीं सकता कि हमारी बात ग़लत है, चाहे उस भोजन को

कोई स्वयं खाकर दिखला दे या और किसी तरह से उसे सिद्ध कर दे कि भोजन में विष नहीं है, परन्तु वह रोगी तब भी यही समझता रहता है कि भोजन में विष अवश्य मिला है, इत्यादि।

[ग] **विचार सम्बन्धी विकृतिः—**

(I) Ideation (**विचार तन्मयता**):—

साधारणतया जब कोई व्यक्ति विचार करने लगता है तो वह किसी विषय पर विचार करते करते उसके लक्ष्य तक पहुँच जाता है और तब फिर दूसरे विषय पर इसी भाँति विचार करता है। किन्तु इसमें रोगी किसी विषय को लेकर विचार करना शुरू करता है और बीच में ही दूसरे विषय पर विचार करने लगता है और फिर उसके बाद किसी और विषय पर विचार करना शुरू कर देता है। इस तरह वह एक विषय से दूसरे पर लाँघता रहता है किन्तु किसी लक्ष्य तक नहीं पहुँचता।

(II) Retardation of ideas (**विचारावरोधता**):—

इसमें रोगी किसी बात को बहुत धीरे धीरे सोंचता है और इसी कारण से उससे जो प्रश्न किये जाते हैं, उनका उत्तर शीघ्र नहीं दे पाता।

(III) Circumstantiality (**क्रमशः विचार**):—

इसमें रोगी जिस विषय को लेकर विचार करता है, उसके निष्कर्ष तक पहुँच जाता है।

[घ] **स्मृति सम्बन्धी विकृतिः—**

(I) Amnesia (**विस्मृति**):—

इसमें रोगी भूत काल की घटनाओं को भूल जाता है। या तो घटना को पूर्णतया भूल जाता है या घटना का कुछ अंश ही भूलता है। ऐसा भी हो सकता है कि कुछ समय तक घटना को भूल गया हो। यह प्रायः शराब, अफीम और भांग या गांजे के चिर काल तक सेवन करने से हो जाता है।

(II) Hyper-amnesia (**स्मृति सूक्ष्मता**):—

इसमें रोगी को घटना की सूक्ष्म से सूक्ष्म बात भी याद रहती है। जब कि एक स्वस्थ व्यक्ति इन बातों को भूल जाता है।

(III) Paramnesia (**विस्मृति समता**):—

इसमें रोगी ऐसी बातों को वर्णन करता है जो कि वास्तव में तत्सम्बन्धी घटना में थी ही नहीं।

(IV) Confabulation (**मिथ्या वार्ता**):—

इसमें रोगी असत्य और काल्पनिक कथाओं को कहता है ताकि लोग समझें कि वास्तव में इसे वह घटना नहीं मालूम है।

[ङ] Disorientation (**डिसोरियेन्टेशन**):—

इस अवस्था का रोगी यह नहीं बता सकता कि वह कहां पर है ? अपने परिचित और घनिष्ट मित्रों या व्यक्तियों को भी नहीं पहचान सकता और इसका रोगी यह भी नहीं बता सकता कि यह जाड़ा है या गर्मी, सुबह है या शाम, इत्यादि।

(२) अनुभव सम्बन्धी विकृतिः—

(I) Depression (**उदासीनता**):—

इसमें रोगी सदैव निराश रहता है। यह मिलेनकोलिया (Melancholia), डिमेन्शिया (Dementia) और कनफ्यूजनल इनसेनिटी (Confusional Insanity) में अधिक पाया जाता है।

(II) Exaltation (**प्रफुल्लता**):—

इसमें रोगी सदैव प्रसन्न और आनन्द पूर्वक रहता है।

(III) Excitement (**उत्तेजना**):—

इसमें रोगी बड़ा भयानक सा लगता है। सदैव उत्तेजित रहता है और हर समय लड़ने झगड़ने को तैयार रहता है। रोगी में बेचैनी बहुत होती है।

(IV) Apathy (**निर्वादता**):—

इसमें रोगी लापरवाह रहता है और उसके आस पास जो होता रहता है, उससे वह अपना कोई सम्बन्ध नहीं रखता और न उसकी ओर कोई ध्यान देता है।

(३) कर्म सम्बन्धी विकृतिः—

(क) आकस्मिक विचाराक्रमणः—

(I) किसी वस्तु को चुराने के लिये।

(II) किसी वस्तु में आग लगा देने के लिये ।

(III) शराब पीने के लिये ।

(ख) **सन्देहात्मक विकारः—**

इसमें रोगी सोंचता है कि मुझे यह काम कर डालना चाहिये था लेकिन मैंने उसे नहीं किया है ।

(ग) **भय सम्बन्धी विकारः—**

यह वह अवस्था है जिसमें रोगी किसी विशेष वातावरण से भयभीत हो जाता है, जैसेः—

(I) बंद कमरों या स्थानों से भय ।

(II) खुले हुये स्थानों से भय ।

(III) ऊँचे स्थानों से भय ।

(IV) अन्धकारयुक्त स्थानों से भय ।

(V) धूल आदि से भय—इसमें रोगी अपने आप को साफ रखने के लिये बार बार अपने शरीर को धोता है ।

(VI) जल से भय ।

(घ) **एप्रेक्सिया** (Apraxia):—

इसमें रोगी में किसी प्रकार की शारीरिक विकृति के न होते हुये भी, वह उस कार्य को नहीं करता —जिसके लिये कि उससे कहा जाये । यद्यपि जिस कार्य को करने के लिये उससे कहा जाता है, उसे वह भली प्रकार सुनता है और समझता भी है किन्तु उस कार्य को नहीं करता ।

(ङ) **आइडिएशनल इनर्शिया** (Ideational inertia):—

यह वह अवस्था है जिसमें रोगी किसी वस्तु को भली प्रकार पहचानता है और उसकी प्रयोग विधि भी जानता है किन्तु जब उसे कोई दूसरी वस्तु दे दी जाती है, तब भी वह उस वस्तु को पहली वस्तु की भाँति ही प्रयोग करता है, यद्यपि दूसरी वस्तु पहली वस्तु से पूर्णतया भिन्न होती है, जैसे—यदि इस प्रकार के रोगी को पेन्सिल देदी जाये तो वह उससे लिखने लगेगा और फिर उसे एक

लकड़ी या लोहे की शलाका दे दी जाये, तब भी वह उसे पेन्सिल समझ कर ही इधर उधर लिखने लगता है।

(च) गति अवरोधः—

इसमें रोगी जिस आसन से बैठा, लेटा या खड़ा होगा, उसी आसन में घंटों तक रहता है।

(छ) वरबीगरेशन (Verbigeration):—

इसमें रोगी बार बार कुछ विशेष शब्दों को जिनका कि कुछ भी तात्पर्य नहीं निकलता, दुहराता रहता है।

(ज) इकोललिआ (Echolalia):—

इसमें, रोगी से जो कुछ कहा जाता है, बस उसी को रोगी भी कहने लगता है, जैसे किसी ने रोगी से कह दिया—"तुम कहाँ रहते हो ?" इस पर रोगी 'तुम कहाँ रहते हो ?' 'तुम कहाँ रहते हो ?'—यही बार बार कहता है।

उन्माद की परिभाषाः—

इसकी कोई निश्चित परिभाषा नहीं कही जा सकती और न कानून में उन्माद की ठीक ठीक परिभाषा की आवश्यकता ही पड़ती है। जब किसी व्यक्ति के मन में विकार उत्पन्न हो जाता है अथवा किसी प्रकार की मानसिक व्याधि उत्पन्न हो जाती है और वह अपने कार्यों और व्यवहार को नियमित करने से असमर्थ होता है, तब साधारणतया उसे 'उन्मत्त' संज्ञा दी जाती है।

आयुर्वेदिक मतः—

चरक संहिता में उन्माद के लक्षण इस प्रकार दिये हैं:—

धीविभ्रमः सत्त्वपरिप्लवश्च पर्याकुला दृष्टिरधीरता च।
अबद्धवाक्त्वं हृदयं च शून्यं सामान्यमुन्मादगदस्य लिङ्गम्॥

अर्थात् बुद्धि का विभ्रम होना, मन का चञ्चल होना, नेत्रों का व्याकुल होना, धैर्य्य का नाश होना, वचनों का असम्बद्ध होना और हृदय का शून्य होना—ये उन्माद के सामान्य लक्षण हैं।

उन्माद के भेदः—

व्यवहारायुर्वेद की दृष्टि से उन्माद के निम्नलिखित भेद होते हैं:—

[१] Amentia [२] Dementia [३] तीव्रउन्माद [४] नाड़ियों की विकृति से उत्पन्न हुआ उन्माद [५] अन्य रोगों से उत्पन्न हुआ उन्माद।

[१] एमेन्टिया (Amentia):—

इसका कारण मस्तिष्क का ठीक से विकसित न होना है और यह विकार कुलज (Congenital) होता है। कभी कभी प्रारम्भिक बाल्यावस्था में विकासावरोध हो जाने से भी ऐसा हो जाता है।

इसके चार भेद हैं:—

(क) इडिओसी (Idiocy), (ख) इमबिसीलिटी (Imbecility), (ग) फिबिल माइन्डेडनेस (Feeble mindedness) और (घ) क्रिटीनिज्म (Cretinism),

(क) इडिओसी (I diocy):—

यह मस्तिष्क के विकास में विकृति उत्पन्न होने से होता है और इसका कारण कुल से सम्बन्धित होता हैं। इस प्रकार के उन्माद ग्रस्त व्यक्ति गन्दी आदतों वाले होते हैं। उन्हें खाने पीने की कोई चिन्ता नहीं रहती और उनमें स्मरण शक्ति तथा बुद्धि नहीं होती है।

(ख) इमबिसीलिटी (Imbecility):—

यह 'इडिओसी' और 'फीबिल माइन्डेडनेस' के बीच की अवस्था होती है। यद्यपि इस प्रकार के उन्माद ग्रस्त व्यक्ति मूर्ख होते हैं, किन्तु फिर भी ये किसी दूसरे व्यक्ति के साथ भली प्रकार वार्तालाप कर सकते हैं और इनमें स्मरण शक्ति भी अच्छी होती है। यदि इनको किसी तरह उकसाया जाये तो ये बड़ी जल्दी क्रोधित हो जाते हैं और आघात, जीवनापहरण इत्यादि अन्य अपराध कर सकते हैं।

(ग) फीबिल माइन्डेडनेस (Feeble mindedness):—

इनमें बहुत ज्यादा मानसिक विकृति नहीं होती है किन्तु फिर भी ये अपनी वा किसी अन्य व्यक्ति की रक्षा का किंचित् भी ध्यान नहीं रखते और ये अपनी

इच्छाओं को रोक नहीं सकते यहाँ तक कि ये बलात्कार, जीवनापहरण इत्यादि अपराध कर सकते हैं ।

(घ) **क्रिटिनिज्म** (Cretinism):—

प्रारम्भिक बाल्यावस्था में चुल्लिका ग्रन्थि (Thyroid gland) का ठीक प्रकार से विकास न हो सकने से यह अवस्था उत्पन्न होती है। इनमें अपूर्ण विकास, बौनापन, बुद्धिहीनता और मूर्खता के लक्षण मिलते हैं। इनके चलने की गति में भी विकार होता है ।

[२] **डिमेन्टिआ** (Dementia):—

यह उन्माद का वह भेद है जिसमें शरीर के पूर्ण विकसित हो जाने के बाद मानसिक अंगों में विकार उत्पन्न हो जाता है। जीवन की किसी भी अवस्था में यह उत्पन्न हो सकता है। इसके निम्नलिखित भेद होते हैं:—

(क) प्रारम्भिक डिमेन्टिआ (Primary dementia).

(ख) अप्रधान डिमेन्टिआ (Secondary dementia).

(ग) वृद्धावस्था की डिमेन्टिआ (Senile dementia).

(घ) ऐन्द्रिक डिमेन्टिआ (Organic dementia).

(क) प्रारम्भिक डिमेन्टिआ:—

यह प्रायः १५ से ३० वर्ष तक की आयु के बीच के समय में होता है। इसके तीन भेद किये जाते हैं:—

(I) परेनोइआ (II) कटेटोनिआ (III) हिवेफ्रीनिआ

(I) **परेनोइआ** (Paranoia):—

यह युवा अवस्था के स्त्री और पुरुष दोनों में समान रूप से होता है। रोगी में प्रधानतया मिथ्या ज्ञान (Delusions) और मतिभ्रम (Hallucination) के लक्षण मिलते हैं। इसकी दो अवस्थायें होती हैं:—

(१) तीव्रावस्था:—

इसमें रोगी को आमाशयिक व्यथायें प्रारम्भ होती हैं। थोड़ा बहुत ज्वर रहने लगता है। प्रारम्भ में मानसिक विभ्रम (Mental confusion) और मिलेनकोलिआ (Melancholia) की अवस्था रहती है। रोगी को शब्द

भ्रम (Hallucination of hearing) मालूम होता है। कर्णध्वनि होती है। रोगी में स्मरण शक्ति बहुत कम रह जाती है और उसे निद्रा नहीं आती। कुछ रोगियों में तीव्रावस्था के बाद धीरे धीरे जीर्णावस्था हो जाती है।

(२) **जीर्णावस्था:—**

इस अवस्था में रोगी में अनियमित ज्वर, प्रश्वास में दुर्गन्धि, जिह्वा मलावेष्ठित, अतीसार, पाण्डु, निद्रानाश, शब्दभ्रम, रसभ्रम, गंधभ्रम वा अन्य प्रकार के भ्रम जैसे गिरफ्तार हो जाने का भय इत्यादि लक्षण पाये जाते हैं।

(II) **कटेटोनिया** (Katatonia):—

यह प्रायः योरुपीय और एंग्लो-इन्डियन युवकों में होता है। इसमें कुलज-प्रवृत्ति भी पायी जाती है। इसका प्रारम्भ प्रायः धीरे धीरे होता है। रोगी में आलस्य, दुर्बलता, अतीसार, स्मरणशक्ति का नाश, शब्दभ्रम, गिरफ्तार हो जाने का भ्रम, अपने शरीर वा मन पर अधिकार न रहना, अनिद्रा, मलमूत्र का स्वतः त्याग, विचार भ्रम और वेचैनी—ये लक्षण देखने में आते हैं। काल्पनिक विद्रोहियों के द्वारा गिरफ्तार हो जाने के भय से रोगी इधर उधर छिपने का यत्न करता है। कभी कभी भय इतना बढ़ जाता है कि वह आत्महत्या करने को आतुर हो जाता है। रोगी सोते में जाग उठता है और कभी कभी अर्धनिन्द्रा की अवस्था में रात भर पड़ा रहता है। कभी कभी रोगी बार बार कुछ विशेष शब्दों को ही दुहराता है अर्थात् उसे वरबीगरेशन (Verbigeration) की अवस्था हो जाती है। कभीं कभी रोगी से प्रश्न करने पर, वह उसी प्रश्न को दुहराता है जैसे 'अच्छे तो हो!' पूछने पर वह स्वयं 'अच्छे तो हो, 'अच्छे तो हो' की रट लगाता है, या यों कहा जा सकता है कि उसमें (Echolalia) एकोलेलिआ के लक्षण पाये जाते हैं।

(III) **हिवेफ्रीनिआ** (Hebephrenia):—

यह अवस्था अधिकतर युवतियों में मिलती है। उनका विकास रुक जाता है और वे सदैव आलसी की तरह बैठी रहती हैं। इसमें रोगी समाज से, अपने मित्रों वा सम्बन्धियों से बहुत दूर रहना चाहता है और उनके साथ बात भी नहीं करता। ऐसे रोगी प्रायः एकान्त में बिना किसी उद्देश्य के ही टहलते हुये

दिखलाई पड़ते हैं। कभी तो वे हताश और शान्त मालूम पड़ते हैं और कभी बेचैन और उत्तेजित हो जाते हैं और दुनियाँ भर की इधर उधर की तमाम बातें करते हैं। इस प्रकार के रोगी अश्लील भाषा का अधिक प्रयोग करते हैं। अपराध जन्य कार्यों को करना अधिक पसंद करते हैं। रूप भ्रम और शब्द-भ्रम की अवस्था होती है। रोगी की स्मरण-शक्ति बहुत कम हो जाती है और मन की स्थिरता भी नष्ट हो जाती है। तदनन्तर रोगी 'डिमेन्टिआ' की अवस्था में पहुँच जाता है।

(ख) अप्रधान डिमेन्टिआः—

रोगी में अनिद्रा, अरुचि, निर्वादता (Apathy), आकस्मिकता, उत्तेजना, इत्यादि लक्षण पाये जाते हैं। रोगी परहत्या या आत्म हत्या कर बैठता है।

(ग) वृद्धावस्था की डिमेन्टिआः—

कभी कभी वृद्धावस्था में शरीर और मस्तिष्क के शनैः शनैः क्षय के कारण यह अवस्था उत्पन्न होती है। इस प्रकार के रोगी प्रायः सनकी होते हैं। वे हर एक बात बड़ी जल्दी भूल जाते हैं। किसी भी बात की ओर वे ध्यान नहीं देते। प्रायः हर एक बात में उन्हें सन्देह रहता है और उनमें मतिभ्रम वा अन्य प्रकार के भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं। अन्त में वे 'मिलेनकोलिआ' से ग्रसित हो जाते हैं और कभी कभी आत्महत्या तक कर लेते हैं।

(घ) ऐन्द्रिक डिमेन्टिआः—

मस्तिष्क में किसी प्रकार की चोट आदि जैसे नूतन वृद्धि, अपस्मार, फोड़ा, जीर्ण इनकेफेलाइटिस (Encephalitis)—के कारण होता है। इसमें आघात के अनुसार ही लक्षण होते हैं और उसी के अनुकूल मस्तिष्कीय अवयवों का क्षय वा नाश होता है। इसके अतिरिक्त स्मृति और भाषण-शक्ति का कम होना—यह भी लक्षण उपस्थित रहता है। प्रायः हृदयावसाद या श्रम (Exhaustion) से मृत्यु हो जाती है।

[३] तीव्र उन्मादः—

कुछ विष ऐसे होते हैं जिनके कि कारण यह अवस्था उत्पन्न होती है। इसके दो भाग किये जाते हैं:—

(क) मेनिआ (Mania) और (ख) मिलेनकोलिआ (Melancholia)

(क) मेनिआ (Mania):—

यह तीन प्रकार की हो सकती है:—(I) साधारण (II) तीव्र और (III) जीर्ण।

(I) **साधारण मेनिआः—**

उन्माद की यह सबसे मृदुअवस्था है और इसी कारण से इस प्रकार के उन्मादी का साधारण व्यक्ति से भेद करना बहुत कठिन हो जाता है। वार्तालाप के समय ये एक विषय पर बात करते करते दूसरे विषय पर लाँघ जाते हैं और इस प्रकार से इनमें स्थिरता नहीं होती। यद्यपि इस प्रकार के रोगी बराबर काम करने में जुटे रहते हैं किन्तु जो काम वे शुरू करते हैं, वह कभी समाप्त नहीं होता। ये प्रायः मद्यपान और विषय-भोग में रत रहते हैं।

(II) **तीव्र मेनिआः—**

इस अवस्था से पूर्व रोगी में प्रोड्रोमल स्टेज (Prodromal stage) के लक्षण मिलते हैं अर्थात् अनिद्रा, शिरःशूल, बेचैनी, उत्तेजना, साधारण दुर्बलता इत्यादि। जब यह अवस्था और बिगड़ती है तो रोगी में उत्तेजना बढ़ जाती है और वह हर एक वस्तु को नष्ट करने के लिये नाना प्रकार की चेष्टायें करता है। उसके मन में अनेक प्रकार के विचार उठते हैं और उसके प्रत्येक कार्य का आरम्भ आकस्मिक होता है। वह अपने अधिकार से बाहर हो जाता है। कभी हँसता है, कभी रोता है, कभी गाता है और कभी चिल्लाता है। इन सबका कोई कारण नहीं होता। वह ये सब कार्य अकारण ही और विना किसी उद्देश्य के ही करता है। इस अवस्था में रूप-भ्रम और शब्द-भ्रम वा मानसिक विभ्रम भी उपस्थित रहता है। कभी कभी उसे अपनी गिरफ्तारी का बड़ा डर रहता है यहाँ तक कि वह आत्महत्या या परहत्या भी कर डालता है। यह अवस्था कई सप्ताह या महीनों तक रह सकती है, बीच बीच में रोगी की दशा सुधर जाती है और सारे लक्षण हट जाते हैं तथा रोगी धीरे धीरे अच्छा हो जाता है और अपनी साधारण स्थिति पर आ जाता है। इसमें पुनः उत्पन्न होने की शंका सदैव रहती है और तब इसकी जीर्णावस्था प्रारम्भ हो जाती है।

(III) जीर्ण मेनिआः—

इसमें तीव्र मेनिआ के सभी लक्षण मिलते हैं किन्तु इसका स्वरूप पहले की अपेक्षा कुछ मन्द किस्म का होता है यानी लक्षण उतने तीव्र नहीं होते जितने कि तीव्र मेनिआ में होते हैं। इसमें मतिभ्रम, मानसिक विभ्रम और शिथिलता अवश्य रहती है किन्तु कभी कभी तीव्र उत्तेजना भी उत्पन्न हो जाती है। रोगी की मानसिक शक्ति का धीरे धीरे ह्रास होता जाता है और उसकी स्मरण-शक्ति दुर्बल हो जाती है। अन्त में रोगी पूर्ण डिमेन्टिया की अवस्था में पहुँच जाता है और तब फिर वह असाध्य हो जाता है।

(ख) मिलेनकोलिआ (Melancholia):—

यह एक प्रकार की मानसिक उदासी और निराशा है जो कि अधिकतर आलसी युवतियों वा वृद्धा स्त्रियों में देखी जाती है। इसके तीन भेद किये जाते हैं:— (I) साधारण, (II) तीव्र, और (III) जीर्ण।

(I) साधारण मिलेनकोलिआः—

यह मानसिक उदासी का सबसे मन्द स्वरूप है। रोगी में अनिद्रा, अरुचि और भय के चिन्ह वा लक्षण मिलते हैं। उसका किसी काम में मन नहीं लगता, न उसे खेलना अच्छा लगता है और न किसी से बात करना ही भला मालूम देता है। वह एकान्त को अधिक पसन्द करता है। जीवन के सुखों से वह अपना सम्बन्ध तोड़ देता है।

(II) तीव्र मिलेनकोलिआः—

इसके लक्षण बहुत स्पष्ट होते हैं। इसका प्रारम्भ धीरे धीरे होता है। शुरूमें रोगी को शिरःशूल, अनिद्रा और अग्निमान्द्य रहता है। और छोटी छोटी बातों से भी वह बहुत जल्दी उत्तेजित हो जाता है। मन बहुत उदास रहता है, काम बहुत आलस्य के साथ करता है। खेलने, पढ़ने काम करने या बात करने में उसका मन नहीं लगता और वह किसी से बोलना नहीं चाहता। वह हर समय एक काल्पनिक खतरे से भयभीत रहता है, वह सोचता है कि उसकी कपालास्थि भग्न हो जायेगी या उसका मस्तिष्क नष्ट हो जायेगा, इत्यादि। उसके कानों में ध्वनि होती है, वह सुनता है कि उसे गिरफ्तार किया जायेगा और

सज़ा दी जायेगी । अतएव उसमें आत्महत्या की प्रवृत्ति देखी जाती है । कभी कभी वह परहत्या करने का भी यत्न करता है । उसे अपने काल्पनिक शत्रुओं के द्वारा, जो कि उसके सम्बन्धी या घनिष्ठ मित्रों में से हो सकता है, गिरफ्तार होने का भय रहता है । वह अपनी स्त्री वा बच्चों का प्राणहरण कर सकता है क्योंकि वह सोंचता है कि मेरे न रहने पर इनकी बुरी दशा होगी । इस प्रकार के रोगी इधर उधर घूमते हुये दिखाई पड़ते हैं । इसके बाद उनमें जीर्ण मिलेन-कोलिया के लक्षण उन्नतित करने लगते हैं ।

(III) **जीर्ण मिलेनकोलियाः**—इसमें रोगी में मानसिक विभ्रम वा मति भ्रम स्थायी रूप से रहता है । मानसिक उदासी थोड़ा बहुत मंद रहती है ।

[४] नाड़ियों की विकृति से उत्पन्न हुआ उन्मादः—

(क) **पक्षाघात जन्यः**—

यह स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को अधिक होता है प्रायः ३० से ४५ वर्ष तक की आयु में ही होता है । कुलज या सहज उपदंश के कारण मस्तिष्क और केन्द्रीय नाड़ी संस्थान का शनैः शनैः क्षय होने लगता है और अन्त में पक्षा-घात और डिमेन्टिया की अवस्था हो जाती है । प्रारम्भ में प्रायः किसी बात को भूलना, उत्तेजना, बेचैनी और अनुदार चरित्र—ये लक्षण होते हैं । धीरे धीरे रोगी की सम्भाषण शक्ति कम हो जाती है और उसे बोलने में कष्ट होता है । स्मरण शक्ति-नष्ट हो जाती है, मानसिक विभ्रम उत्पन्न हो जाता है, निर्वादता और भोजन, वस्त्र, वा स्वच्छता के प्रति उदासीनता उत्पन्न हो जाती है । विस्तरे पर ही मल-मूत्र का स्वतः त्याग हो जाता है और फिर पक्षाघात और डिमेन्टिया की अवस्था हो जाती है । श्रम के कारण मृत्यु हो जाती है ।

(ख) **अपस्मार जन्य उन्मादः** –

इसका आक्रमण दो प्रकार का होता है:—(I) अपस्मार के **पूर्व**, और (II) अपस्मार के बाद ।

(I) **अपस्मार के पूर्वः**—

रोगी को मेनिआ के दौरे आते हैं । यह अवस्था घंटों और कभी **कभी**

कई दिन तक बनी रहती है। मतिभ्रम और मानसिक विभ्रम हो जाता है। रोगी अपराध कर बैठता है।

(II) अपस्मार के बादः—

अपस्मार के दौरे के बाद रोगी में रूपभ्रम या शब्द भ्रम और गिरफ्तार हो जाने का भ्रम उत्पन्न हो जाता है यहाँ तक कि रोगी चोरी, बलात्कार, परघात वा अन्य अपराध करने लगता है। अपराध अनैच्छिक और स्वतः होते हैं। अपराध करते समय वह उसके विषय में कुछ नहीं जानता और जब वह साधारण अवस्था में आ जाता है तो उन सब कृत्यों को भूल [जाता है।

[५] अन्य रोगों से उत्पन्न उन्मादः—

अपस्मार के अतिरिक्त उपदंश, वातरक्त, गलगण्ड, सीस-विष, ब्राइट्स रोग (Bright's disease) वा कुछ अन्य रोगों के बाद परिणाम स्वरूप या उपद्रव के रूप में उन्माद उत्पन्न हो जाता है। अतएव रोगी के इतिहास वा पूर्व व्यथा आदि को जानना परमावश्यक है और इन सब बातों का सम्यकतया पता लगाना चाहिये।

उन्माद का पैतृक सम्बन्धः—

उन्माद कुलज प्रवृत्ति का भी होता है। एक ही वंशमें यह लगातार पिता से पुत्र को, पुत्र से पौत्र को—इस क्रम से भी पाया जाता है। अतएव रोगी के वंश का इतिहास जानना बहुत आवश्यक होता है।

उन्माद का निदानः—

किसी व्यक्ति के विषय में यह सम्मति देना कि वह पागल है या नहीं—बहुत कठिन समस्या है। इसके लिये रोगी को किसी बन्द जगह में कुछ समय के लिये रक्खा जाता है और उसकी आदतों वा गतियों का भली प्रकार निरीक्षण किया जाता है और फिर एक निश्चित सम्मति दी जाती है कि वह पागल है या नहीं। इन सब मामलों में निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहियेः—

(क) रोगी के वंश का इतिहासः—

इसमें रोगी के वंश के इतिहास का पता लगाना चाहिये कि उसके वंश में किसी को उन्माद तो नहीं हुआ है, इत्यादि।

(ख) **व्यक्तिगत इतिहासः—**

इसमें रोगी से पूछकर उसके विषय में जानकारी प्राप्त करनी चाहिये। इसके अतिरिक्त उसके मित्रों वा सम्बन्धियों से भी रोगी के व्यक्तिगत इतिहास का पता लगाना चाहिये। इसमें देखना चाहिये कि रोगी ने शराब, अफीम, कोकेन, भाँग, गाँजा इत्यादि का अत्यधिक उपयोग तो नहीं किया है। इसके साथ साथ यह भी पता लगाना चाहिये कि रोगी हस्तमैथुन तो नहीं करता है या उसने अत्यधिक सम्भोग तो नहीं किया है या उसे अन्य कोई गन्दी आदत तो नहीं है। इसके अतिरिक्त मानसिक शोक या धक्का, मस्तिष्क पर चोट, निद्रानाश, नाड़ी संस्थान के रोग इत्यादि का भी पता लगाना चाहिये।

(ग) **शारीरिक अवस्थाः—**

रोगी का बर्ताव, आदत, चलने वा बात करने का ढंग, कपड़े पहनने की विशेषतायें, जिह्वा का रूप वा मल सम्बन्धी विकार जैसे कोष्ठबद्धता आदि का अच्छी तरह पता लगाना चाहिये।

(घ) **मानसिक अवस्थाः—**

वार्तालाप के समय रोगी की स्मरण शक्ति, तर्क करने का तरीका, एकाग्रचित्तता और निर्णय इत्यादि का भली प्रकार निरीक्षण करना चहिये। यह भी देखना चाहिये कि उसे मति-भ्रम वा मानसिक विभ्रम तो नहीं है।

कृत्रिम और वास्तविक उन्माद में भेदः—

बहुत से अपराधी अपने अपराध में मिले हुये दण्ड से बचने के लिये पागल होने का बहाना करते हैं। अतएव चिकित्सक को इन सब का ठीक ठीक पता लगाना चहिये क्योंकि न्यायालय को इसके जानने की आवश्यकता होती है। इसमें अपराधी के जीवन मरण का प्रश्न होता है। अतएव चिकित्सक को खूब सोंच विचार कर अपना निर्णय देना चहिये। निम्नलिखित तालिका से इसके निर्णय करने में काफ़ी सहायता मिल सकती है:—

बनावटी उन्माद	वास्तविक उन्माद
(१) अचानक प्रारम्भ होता है और बिना किसी मतलब के नहीं होता।	(१) प्रायः धीरे धीरे प्रारम्भ होता है किन्तु सदैव बिना किसी मतलब के होता है।
(२) सहायक या उत्तेजक कारण नहीं उपस्थित होता।	(२) सहायक या उत्तेजक कारण सदैव उपस्थित रहता है।
(३) यद्यपि रोगी पागल की तरह बनने की कोशिश करता है, किन्तु उस की मुखाकृति साधारण रहती है।	(३) मुखाकृति कुछ विशेषता रखती है।
(४) निरीक्षण करते समय पागल होने का बहाना करता है।	(४) चाहे निरीक्षण किया जाये या न किया जाय, व्यक्ति में उन्माद के लक्षण पाये जायेंगे।
(५) इसमें उन्माद के किसी भी भेद के लक्षण नहीं मिलते।	(५) लक्षणों से पता लग जाता है कि वह किस प्रकार का उन्माद है।
(६) रोगी में कोई गन्दी आदत नहीं होती।	(६) रोगी में कोई न कोई गंदी आदत अवश्य होती है।
(७) त्वचा—शुष्क और कड़ी, जिह्वा—मलावेष्ठित, विबन्ध, अरुचि और अनिद्रा—ये लक्षण नहीं होते।	(७) इसमें रोगी की त्वचा शुष्क और कड़ी होगी, जिह्वा मलावेष्ठित होगी तथा विबन्ध, अरुचि और अनिद्रा के लक्षण मिलेंगे।

मानसिक विकृति

ज्ञान सम्बन्धी	अनुभव सम्बन्धी	कर्म सम्बन्धी
(पृष्ठ १६८ पर देखो)	(१) डिप्रेशन (उदासीनता)	(१) आकस्मिक विचाराक्रमरू
	(२) ऐक्ज़ाल्टेशन (प्रफुल्लता)	(२) सन्देहात्मक विकार
	(३) ऐक्साइटमेन्ट (उत्तेजना)	(३) भय सम्बन्धी विकार
	(४) ऐपैथी (निर्वादता)	(४) एप्रेक्सिया
		(५) आइडियेशनल इनर्शिया
		(६) गति अवरोध
		(७) वरबीगरेशन
		(८) इकोललिया

ज्ञान सम्बन्धी विकृति
डिसार्डर्स आफ परसेप्शन
डेल्यूज़न (असाध्य मिथ्याज्ञान)
विचार सम्बन्धी
स्मृति सम्बन्धी
डिसोरियेन्टशन
(१) इल्यूज़न (साध्यमिथ्याज्ञान)
(२) हैलूसिनेशन (मति भ्रम)
(I) श्रवण-भ्रम
(II) रूप-भ्रम
(III) गन्ध-भ्रम
(IV) रस-भ्रम
(V) स्पर्श-भ्रम
(VI) व्यवाय-भ्रम
(१) आइडियेशन (विचार तन्मयता)
(२) रिटार्डेशन आफ आइडियाज़ (विचारावरोधता)
(३) सरकमस्टान्सियालिटी (क्रमशः विचार)
(१) एम्नीशिया (विस्मृति)
(२) हाइपर एम्नीशिया (स्मृति सूक्ष्मता)
(३) पेरा एम्नीशिया (विस्मृति भ्रमता)
(४) कान्फेबुलेशन (मिथ्या वार्ता)

विष-विज्ञान

पहला अध्याय

विष की परिभाषाः—

विष की कोई भी सन्तोषजनक परिभाषा नहीं है। भारतीय दण्ड विधान की धारा ३२४ और ३२७ में इस सम्बन्ध में कुछ बतलाया गया है:—"कोई भी विष अथवा दाहक पदार्थ अथवा कोई भी अन्य पदार्थ जो नस्य लेने, भक्षण करने अथवा रक्त के साथ सम्मिश्रित होने पर शरीर के ऊपर नाशकारी प्रभाव उत्पन्न करे, वह भी आघात का भयंकर साधन समझा जाता है"। न्याय की दृष्टि से विष की ठीक ठीक परिभाषा जानने की आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि कोई भी वस्तु जो किसी व्यक्ति के जीवन को नष्ट करने के ध्येय से प्रयोग की जाती है और यदि उससे उस व्यक्ति की मृत्यु हो जाये तो न्याय उसे दण्ड देता है चाहे प्रयुक्त वस्तु विष कही जा सकती हो या न कही जा सकती हो।

'कोई भी ठोस, तरल अथवा वायव्य (गैसीय) पदार्थ जो कि शरीर के बाह्य भाग पर लगाने अथवा उसका आभ्यन्तरिक प्रयोग करने पर मृत्यु अथवा मृत्यु के समान दुःख दे अथवा अस्वास्थ्यता उत्पन्न करे'—उसे विष कह सकते हैं। किन्तु इसमें भी मात्रा आदि का निर्देश नहीं है। कुछ वस्तुयें जो लघु मात्रा में प्रयोग की जाने पर किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचातीं, वही अधिक मात्रा में प्रयोग करने पर मृत्युकारक हो सकती है।

विष-विक्रय सम्बन्धी नियमः—

इङ्गलैन्ड में यह नियम बहुत कठोर है, इसलिये विषों का प्राप्त करना बहुत कठिन है। किन्तु ब्रिटिश भारत में यह नियम इतना कठोर नहीं है। सन् १९०४ में कौंसिल में गवर्नर जनरल ने जो Poison's Act स्वीकृत किया

था, उससे पूर्व सम्पूर्ण भारत में इसका कोई कानून न था। सन् १६१६ में यह कानून रद्द कर दिया गया और एक दूसरा Poison's. Act (Act No 12 of 1919) सन् १६१६ में स्वीकृत किया गया जो सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत में, ब्रिटिश बिलोचिस्तान में और सन्थाल परगनों में लागू है। इसके अनुसार रजिस्टर्ड मेडिकल प्रेक्टिशनर्स को विषविक्रय के लिये लाइसेन्स स्वीकृत किये जाते हैं और जो कि U. P. Medical Act 1917 के अनुसार ब्रिटिश फार्मेकोपिया के विष मिश्रित योगों (poisonous preparations) को बेच सकते हैं।

इसके अनुसार एक लाइसेन्स प्राप्त व्यक्ति फेनाश्म के श्वेत चूर्ण को नहीं बेच सकता जब तक कि वह प्रति पौन्ड फेनाश्म में १ औंस करखा (Soot) अथवा ½ औंस नील (Indigo) न मिला दे। आवश्यकता पड़ने पर Licensing Authority पूर्णतया खोज बीन करने के बाद किसी पदार्थ को मिलाये बिना ही बेचने की स्वीकृति (Permit) दे सकती है।

भयंकर औषधियों (Dangerous Drugs) की उत्पत्ति, निर्माण, देश में मंगाना, देश से बाहर भेजना, अपने पास रखना, बेचना और उनका प्रयोग करना—इन सबका नियन्त्रण करने के लिये विशेषतया कोकेन, अफ़ीम और भांग के लिये भारतीय कानून बनाने वाली सभा (Indian Legislature) ने सन १६३० में Dangerous Drugs Act (Act No. 2 of 1930) स्वीकृत किया। इसका संशोधन सन् १६३३ और १६३८ में किया गया।

विषैली औषधियों के संरक्षण एवम् वितरण के लिये भारतवर्ष के सभी चिकित्सालयों एवम् वितरणालयों में यह नियम है कि सभी विषैली औषधियाँ गवर्नमेंन्ट के औषधि संग्रहकर्ताओं (Medical store-keepers) के द्वारा दी जाया करेंगी जिन पर कि नारङ्गी रंग के कागज़ पर लेबिल चिपके हुये होंगे जिनमें अङ्गरेजी और देशी भाषा में 'विष' (Poison) शब्द लिखा रहेगा और जो सभी बोतलों अथवा पात्रों पर लगा रहेगा। इस प्रकार की वस्तुयें अन्य वस्तुओं से बिलकुल पृथक किसी एलमारी, सन्दूक अथवा दराज़ में रक्खी जानी चाहियें जिस पर कि 'विष' शब्द चिपका हुआ हो।

विष देने की विधियाँः—

(१) मुख के द्वारा आहार, पेय-पदार्थ आदि के साथ देना ।
(२) गुदा, योनि, कर्ण आदि शारीरिक छिद्रों में प्रवेश करना ।
(३) श्वास-क्रिया के साथ नस्य आदि विधियों से देना ।
(४) त्वचा पर लेप करना ।
(५) व्रण अथवा क्षत-स्थान पर लगाना ।
(६) त्वचा के नीचे इन्जेक्शन देना ।
(७) पेशियों में इन्जेक्शन लगाना ।
(८) शिरा में इन्जेक्शन देना ।

आयुर्वेद में विष देने की विधियाँः—

(१) भोजन के साथ ।
(२) पेय पदार्थ—दुग्ध, जल आदि के साथ ।
(३) स्नानीय जल में मिलाकर ।
(४) दातुन में लगाकर ।
(५) उबटन के साथ ।
(६) पुष्प आदि की मालाओं में लगाकर ।
(७) कपड़ों पर लगाकर ।
(८) पलंग पर रखकर ।
(९) कवच के द्वारा ।
(१०) आभूषणों के साथ रखकर प्रयोग करना ।
(११) खड़ाऊँ पर लेप देना ।
(१२) हुक्का, चिलम और तम्बाकू के साथ ।
(१३) अञ्जनमें मिलाकर ।
(१४) घोड़े, हाथी आदि की पीठ पर रखकर ।
(१५) चलने के मार्ग में रखकर आदि ।

विषों की क्रियाः—

विषों की क्रिया ३ प्रकार की होती हैः—

(१) स्थानिक क्रिया ।

(२) सार्वाङ्गिक क्रिया।

(३) स्थानिक और सार्वाङ्गिक मिश्रित क्रिया।

(१) स्थानिक क्रियाः—

यदि विष शरीर के किसी भाग के सम्पर्क में आने पर केवल उसी स्थान को धातुओं को नष्ट करे, तो यह विष की स्थानिक क्रिया कहलायेगी, जैसेः–

(क) तीव्र अम्लों एवम् क्षारों के शरीर के किसी भाग पर गिर पड़ने पर उनकी रासायनिक क्रिया के कारण केवल उसी स्थान पर दाह और व्रण उत्पन्न हो जाते हैं।

(ख) क्षोभक पदार्थों जैसे रसकर्पूर, नीलाञ्जन आदि से सम्पर्क में आने वाले भाग पर क्षोभ एवम् शोथ उत्पन्न हो जाता है।

(ग) कुछ पदार्थ त्वचा और श्लेष्मिक कलाओं के सम्पर्क में आने पर नाड़ी पर प्रभाव करते हैं, जैसे बेलाडोना और एट्रोपीन से आँख की पुतलियाँ प्रसारित हो जाती हैं और वत्सनाभ से झनझनाहट और संज्ञाहीनता उत्पन्न हो जाती है।

(२) सार्वाङ्गक क्रियाः—

विषोंकाशरीर के संस्थानों में जब शोषण हो जाता हैं, तब वे सार्वाङ्गिक क्रिया करते है, जैसेः—

(क) कुचला और स्ट्रिकनीन से सुषुम्ना पर प्रभाव पड़ने के कारण धनुर्वात की भाँति पेशियों में आक्षेपण होने लगते हैं।

(ख) वृक्कों पर केन्थेराइड्स की क्षोभक क्रिया के कारण 'वृक्क-शोथ' उत्पन्न हो जाता है।

(ग) अहिफेन एवम् मार्फिया की मस्तिष्क पर 'निद्रालु-क्रिया' के कारण निद्रा उत्पन्न हो जाती है।

(घ) क्लोरोफार्म का नस्य लेने से मूर्छा उत्पन्न हो जाती है।

(ङ) दाहक पदार्थों जैसे तीव्र खनिज अम्ल और क्षार के तीव्र दाहयुक्त प्रभाव के कारण उत्पन्न पीड़ा से स्तब्धता उत्पन्न हो जाती है।

(३) स्थानिक और सार्वाङ्गिक मिश्रित क्रियाः—

कार्बोलिक ऐसिड, आक्ज़ेलिक ऐसिड, फासफोरस आदि कुछ विष ऐसे भी हैं जो धातुओं को नष्ट कर स्थानिक क्रिया करते हैं और साथ ही साथ शरीर में शोषित होकर सार्वाङ्गिक क्रिया भी करते हैं।

विष की क्रिया पर प्रभाव डालने वाली बातें:—

(१) विष की मात्राः—

थोड़ी मात्रा में विष सेवन करने से हो सकता है कि वह विष के लक्षण न उत्पन्न करे । और अधिक मात्रा में विष का सेवन करने से लक्षण स्पष्ट एवम् तीव्र होते हैं और मृत्यु भी शीघ्र हो जाती है ।

(२) विष का स्वरूप:—

यह ३ प्रकार का होता है:—

(I) भौतिक (II) रासायनिक और (III) यान्त्रिक ।

(I) भौतिकः—

(क) गैसीय रूप में नस्य आदि विधि से विष की क्रिया बहुत शीघ्र होती है ।

(ख) तरल के रूप में गैस की अपेक्षा कुछ अधिक समय लगता है ।

(ग) सूक्ष्म चूर्ण के रूप में तरल की अपेक्षा कुछ अधिक समय में विष की क्रिया होती है ।

(घ) ठोस, घन अथवा ढेले के रूप में चूर्ण की अपेक्षा कुछ अधिक समय लगता है ।

(II) रासायनिकः—

यदि दाहक अम्लों एवम् क्षारों को मिलाकर सेवन किया जाये तो उससे शरीर पर कोई हानिप्रद प्रभाव नहीं होता ।

(III) यान्त्रिकः—

तीव्र अम्ल में यदि बहुत सा जल मिलाकर सेवन किया जाये तो उसकी क्रिया विष की भाँति नहीं होती ।

(३) आयुः—

युवावस्था की अपेक्षा बाल्यावस्था और वृद्धावस्था की आयु में विष की क्रिया शीघ्र होती है।

(४) विष के प्रयोग की विधिः—

(क) गैसीय रूप में नस्य लेने पर विष की क्रिया बहुत शीघ्र होती है।

(ख) यदि विष का इन्जेक्शन लगा दिया जाये, तब भी विष की क्रिया बहुत शीघ्र होती है।

(ग) व्रण एवम् 'क्षत-स्थानों' पर लगा देने से भी उसकी क्रिया शीघ्र होती है।

(घ) त्वचा अथवा श्लेष्मिक कला पर विष लगा देने पर उसकी क्रिया विलम्ब से होती है।

(ङ) यदि आमाशय खाली हो और विष मुख के द्वारा खा लिया जाये तो उसका प्रभाव शीघ्र ही प्रगट होने लगता है किन्तु यदि आहार करने के बाद विष सेवन किया जाये तो उसकी क्रिया विलम्ब से और कम होती है।

(च) गुदा, योनि, कर्ण आदि शारीरिक छिद्रों के द्वारा विष प्रवेश करने पर, विष का प्रभाव धीरे धीरे प्रगट होता है।

(५) अभ्यासः—

बहुत से व्यक्ति ऐसे हैं जो कुछ विषों का निरन्तर सेवन करते रहते हैं, जैसे मद्य, अहिफेन, फेनाश्म, भाँग, तम्बाकू आदि, और इस कारण से उन पर—उन उन विषों की घातक मात्रा से कई गुना अधिक विष सेवन करने पर भी—कोई बुरा प्रभाव नहीं होता।

(६) प्रकृति (Idiocyncracy):—

कुछ व्यक्तियों की प्रकृति ऐसी होती है कि वे कुनेन, पारद आदि को, लघु मात्रा में दिये जाने पर भी सहन नहीं कर सकते जब कि उसी मात्रा में अन्य व्यक्तियों पर कोई प्रभाव नहीं होता।

(७) स्वास्थ्य और व्याधियाँः—

स्वस्थ पुरुष विष की अधिक मात्रा को भी सहन कर सकता है किन्तु दुर्बल एवम् कृश हुआ व्यक्ति विष की अधिक मात्रा को सहन नहीं कर सकता

फिर भी उदरावरण शोथ और धनुर्वात जैसी व्याधियों में अहिफ़ेन और मार्फ़िया की दीर्घ मात्राओं को भी व्यक्ति थोड़ा बहुत सहन कर ही लेता है।

(८) निद्राः—

यदि विष सेवन के तत्काल बाद व्यक्ति सो जाये तो उस पर विष का प्रभाव देर से होगा।

चिकित्सा में विष की मात्रा देने की भूलें

कभी कभी चिकित्सक किसी नुस्खे या योग (Prescription) में जिसमें कोई विष भी सम्मिलित हो, उसकी मात्रा किसी प्रकार की भूल के कारण अधिक लिख देता है, एतदर्थ यदि किसी नुस्खे में किसी भी विष की असाधारण अधिक मात्रा लिखी हो तो यह आवश्यक है कि नुस्खा तैय्यार करने वाला व्यक्ति औषधि वितरण करने से पूर्व नुस्खा लिखने वाले चिकित्सक को अपना एक पत्र लिखकर इस प्रकार की 'मात्राधिक्य' (Over-dose) की भूल की इत्तला कर दे अन्यथा यदि उसने औषधि दे दी और उस औषधि से रोगी को किसी प्रकार की हानि हुई तो नुस्खा तैय्यार करने वाले औषधि-विक्रेता को न्यायालय की ओर से दण्ड दिया जा सकता है।

विष प्रभाव के लक्षण

भिन्न भिन्न विषों से शरीर पर भिन्न भिन्न प्रकार के प्रभाव होते हैं और उनसे भिन्न भिन्न लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। वमन और विरेचन का होना, आँख की पुतलियों का संकुचित अथवा प्रसारित होना, बधिरता, अन्ध्यत्व, स्वेदाधिक्य, तापक्रम का न्यूनाधिक होना, प्रलाप, आक्षेपण, पक्षाघात, कम्पन, मूत्र-वर्ण परिवर्तन, नाड़ी का तीव्र अथवा मन्द होना आदि विषों के प्रभाव से लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

विष का निदान

विष का निदान करने की आवश्यकता, जीवित और मृत दोनों अवस्थाओं में पड़ती है।

(१) जीवितावस्था में विष का निदानः—

(I) अधिकतर विषों के लक्षण अकस्मात् प्रारम्भ होते हैं किन्तु विशूचिका, अपस्मार आदि कुछ व्याधियों में भी ऐसा ही होता है।

(II) विष सेवन की अवस्था में विषाक्त पुरुष या तो शीघ्र ही स्वस्थ हो जाता है अथवा उसकी मृत्यु हो जाती है।

(III) यदि आहार अथवा पेय-पदार्थ के साथ विष मिलाकर दिया गया है, तो जो जो व्यक्ति उस आहार अथवा पेय-पदार्थ का सेवन करेंगे—उन सब व्यक्तियों में एक ही प्रकार के चिन्ह एवम् लक्षण प्रदर्शित होंगे।

(IV) यदि व्यक्ति—लक्षण प्रगट होने से पूर्व पूर्ण स्वस्थ था, तो सम्भवतः उसने विष सेवन किया है—यह समझना चाहिये।

(V) वमन, मूत्र, पुरीष आदि की रासायनिक एवम् सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा परीक्षा करने पर विष का निदान पूर्ण सफलता के साथ किया जा सकता है।

रोगी की अवस्था के अनुसार विष का निदानः—

रोगी की अवस्था	विष का अनुमान
(१) तत्काल मृत्यु	१. पोटासियम सायनाइड २. हाइड्रोसियानिक ऐसिड ३. कार्बन मानो आक्साइड ४. कार्बन डाई आक्साइड ५. तीव्र अमोनिया ६. आक्ज़ेलिक ऐसिड
(२) मूर्छा	१. अहिफेन २. मार्फिया ३. मद्य ४. क्लोरल हाइड्रेट ५. क्लोरोफार्म ६. कर्पूर

(३) हृदयावसाद
१. तीव्र अम्ल
२. क्षार
३. वत्सनाभ
४. नीलाञ्जन
५. फेनाश्म
६. तमालपत्र
७. ऐन्टी पायरिन
८. ऐन्ट्री फेब्रिन
९. बहुत से विषों की अंतिमावस्थ

(४) मुख पीतवर्ण का होना (Cyanosed)
१. ऐनिलीन
२. ऐन्टी फेब्रिन

(५) प्रलाप
१. धत्तूर
२. बेलाडोना
३. भाँग
४. मद्य
५. खुरासानी अजवायन
६. कर्पूर

(६) धनुर्वात की भाँति पेशियों में आक्षेपण
१. कुचला
२. स्ट्रिकनीन
३. फेनाश्म
४. नीलाञ्जन

(७) पक्षाघात
१. वत्सनाभ
२. फेनाश्म
३. नाग
४. कोनियम

(८) पुतलियाँ प्रसारित

१. धत्तूर
२. बेलाडोना
३. खुरासानी अजवायन (प्रथमावस्था)
४. अहिफेन } अन्तिमावस्था
५. वत्सनाभ } अन्तिमावस्था
६. मद्य
७. क्लोरोफार्म

(९) पुतलियाँ संकुचित

१. अहिफेन
२. क्लोरल हाइड्रेट
३. अंगारिकाम्ल
४. फाईसोस्टिगमीन

(१०) त्वचा शुष्क

१. धत्तूर
२. बेलाडोना
३. खुरासानी अजवायन

(११) त्वचा आर्द्र

१. अहिफेन
२. वत्सनाभ
३. मद्य
४. नीलाञ्जन
५. तमालपत्र
६. अन्य विषों की हृदयावसाद की अवस्था

(१२) मुँह श्वेत (Bleached)

१. अंगारिकाम्ल
२. रसकपूर
३. दाहक अम्ल और क्षार

(१३) वमन
- १. फेनाश्म (रक्तमिश्रित कपिल वर्ण का वमन)
- २. नीलाञ्जन (श्वेत वर्ण का वमन)
- ३. डिजिटेलिस (हरित वर्ण का वमन)
- ४. वत्सनाभ
- ५. अमोनिया
- ६. फासफोरस, इत्यादि

(२) मृत्यु के पश्चात विष का निदानः—

मृत्यु के पश्चात विष का निदान अधिकतर निम्नलिखित विधियों द्वारा किया जाता है:—

(१) मृत्यूत्तर परीक्षण।
(२) रासायनिक परीक्षण।
(३) जन्तुओं पर प्रयोग।
(४) परिस्थिति जन्य प्रमाण।

(१) मृत्यूत्तर परीक्षणः—

(क) बाह्यः—

(I) स्ट्रिकनीन विष सेवन में हाथ, पैर, ग्रीवा और मुख की पेशियाँ Cadaveric spasm के कारण कड़ी होंगी किन्तु स्मरण रहे कि धनुर्वात आदि अन्य अवस्थाओं में भी ऐसा हो सकता है।

(II) अहिफेन विष-सेवन में वक्ष के ऊर्ध्व प्राँन्त, ग्रीवा और मुख में अत्यधिक वैवर्ण्य पाया जाता है और प्रायः मुँह के आस पास श्वेत वर्ण का अथवा हरे वर्ण का शुष्क फेन पाया जाता है।

(III) कार्बन मानो आक्साइड विष में चमकीला रक्त वर्ण का 'मृत्यूत्तर अधस्तल वैवर्ण्य' पाया जाता है।

(IV) कुछ विषों में मृत शरीर के मुख और अन्य भागों पर विशेष प्रकार की गंध पायी जा सकती है।

(V) ताम्र विष-सेवन में त्वचा पीत वर्ण की हो जाती है।

(VI) फासफोरस से त्वचा पाण्डु वर्ण की हो जाती है।

(ख) आभ्यन्तरिकः—

(I) कुछ विषों में आमाशय और अन्त्र की श्लेष्मिक कला रक्तिमायुक्त होती है और उनमें रक्ताधिक्य पाया जाता है किन्तु श्वासावरोध वा अन्य रोगों में भी ऐसा हो सकता है।

(II) विष के सम्पर्क में आने वाले आभ्यन्तरिक अवयवों में वैवर्ण्य पाया जा सकता है:—

(क) पीत वर्ण के चकत्ते—फेनाश्म विष-सेवन में।

(ख) श्वेत वर्ण के प्रान्त—अङ्गारिकाम्ल में।

(ग) कृष्ण अथवा कपिल वर्ण के चकत्ते—गंधकाम्ल में।

(III) कुछ विषों से सम्पर्क में आने वाले आभ्यन्तरिक धातुओं में दाह और व्रण पाये जाते हैं।

(IV) क्षोभक विषों के कारण आमाशय, अन्त्र और वायु-प्रणालियों में क्षोभ एवम् शोथ के चिह्न पाये जाते हैं।

(२) रासायनिक विश्लेषणः—

रासायनिक विश्लेषण के द्वारा विष का ठीक ठीक पता लगाया जा सकता है एतदर्थ वमन के पदार्थ, मूत्र, पुरीष आदि कों रासायनिक परीक्षकों के पास भेजा जाता है। किन्तु यह भी स्मरण रखना चाहिये कि किसी व्यक्ति पर असत्य दोषा-रोपण करने के हेतु से कुछ धूर्त शत्रु मृत्यु के पश्चात मूत्र पुरीषादि में ऊपर से विष मिला सकते हैं। और यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि विष सेवन किये जाने पर भी रासायनिक परीक्षण द्वारा विष की उपस्थिति का सिद्ध न होना—यह नहीं बतलाता कि व्यक्ति को विष नहीं दिया गया था अथवा उसने विष सेवन नहीं किया क्योंकि निम्न अवस्थाओं में ऐसा हो सकता है:—

(I) फुफ्फुसों अथवा त्वचा से ओषजीकरण अथवा वाष्पीकरण के कारण विष पूर्णतया विलीन हो सकता है।

(II) वमन और विरेचन होने के कारण आमाशय, अन्त्र आदि में विष

नहीं भी पाया जा सकता क्योंकि सम्भव है कि वमन और विरेचन के साथ सम्पूर्ण विष बाहर निकल जाये।

(३) जन्तुओं पर प्रयोगः—

जिस आहार, पेय-पदार्थ आदि पर विष मिले हुये होने का सन्देह होता है, उन्हें घर के पालतू जानवरों को खिलाकर उनमें उत्पन्न हुये लक्षणों को भली प्रकार से देखा जाता है किन्तु ऐसा विष के अतिरिक्त अन्य अवस्थाओं में भी हो हो सकता है, अतएव इस पर अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त कुछ विषों का प्रभाव भी कुछ एक जन्तुओं पर नहीं होता जैसे खरगोश पर बेलाडोना, खुरासानी अजवायन और स्ट्रेमोनियम का और कबूतरों पर अहिफेन का। प्रायः सभी प्रकार के विष कुत्तों और बिल्लियों पर मनुष्य की ही भाँति लक्षण उत्पन्न करते हैं।

(४) परिस्थिति जन्य प्रमाणः—

चिकित्सक को मृत व्यक्ति के समीपस्थ शीशियों, पात्रों आदि को भली प्रकार से देखकर मृत्यु के कारण का अनुमान करना चाहिये। इसके अतिरिक्त अन्य प्रमाण गवाहों द्वारा न्यायालय में प्राप्त हो सकते हैं, जो कि यह बतलावें कि हमने इस व्यक्ति को विष खरीदते हुये देखा अथवा इसने हमारे सामने इस इस प्रकार के भोजन को खाया और इसके बाद ही उसे वमन, विरेचन…आदि होने लगे—इत्यादि प्रमाणों का प्राप्त करना न्यायालय का कार्य है।

विष–प्रयोग की शंका होने पर चिकित्सक का कर्तव्य

विष-प्रयोग के सम्बन्ध में चिकित्सक को अपनी सम्मति देंने के लिये अत्यन्त सावधानी एवम् सर्तकता से काम लेना चाहिये। यदि उसे विष-प्रयोग का केवल सन्देह मात्र हो तो मौखिक अथवा लिखित किसी भी प्रकार की सम्मति कदापि न देंनी चाहिये। सन्देहात्मक विषों की प्रकृति को खोजने का यत्न करना चाहिये ताकि वह ठीक ठीक चिकित्सा के द्वारा रोगी के जीवन की रक्षा कर सके। यदि विष का ठीक ठीक ज्ञान न हो सके तो प्रक्षालन-नलिका अथवा पम्प से तुरन्त आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये। वामक औषधियों को मुख अथवा इन्जेक्शन के द्वारा शरीर में प्रवेश करना चाहिये। विषाक्त पुरुष के

वमन किये हुये पदार्थ को और २४ घण्टे के मूत्र को संग्रह करना चाहिये क्योंकि सम्भव है कि परीक्षा के लिये उसकी आवश्यकता पड़े। यदि वह आवश्यकता समझे तो अन्य जान पहचान के चिकित्सक को भी बुला सकता है अथवा चिकित्सालय में रोगी को पहुँचवा दे जहाँ पर कि उसकी ठीक प्रकार से चिकित्सा की जा सके।

सन्देहात्मक विष-प्रयोग के सम्बन्ध में, चिकित्सक—चाहे निजी प्रैक्टिस करता हो अथवा किसी सरकारी नौकरी में हो, उसको वमन किये हुये पदार्थ, आमाशय का धोवन, मूत्र, पुरीष अथवा अन्य सन्देहात्मक वस्तुओं को पृथक पृथक चौड़े मुँह की शीशियों अथवा जार में शीशे की ढाट लगाकर भली प्रकार से सुरक्षित रखना चाहिये। इन शीशियों पर विषाक्त पुरुष का नाम, पता, वस्तु का नाम, परीक्षा की तिथि आदि के लेबिल लगाकर ताले से बन्द करके रखना चाहिये ताकि यदि आवश्यकता पड़े तो रासायनिक परीक्षण के लिये रासायनिक परीक्षक के पास भेजी जा सके। यदि चिकित्सक ऐसा नहीं करता है और वह इन सब बातों को गुप्त रखने का यत्न करता है तो भारतीय दण्ड विधान की धारा २०१ के अनुसार उसे दण्ड दिया जा सकता है।

यदि चिकित्सक अपनी निजी प्रैक्टिस करता है और वह इस बात को जानता है कि जिसकी वह चिकित्सा कर रहा है, वह परहत्या के लिये प्रयुक्त विष से पीड़ित है तो चिकित्सक क्रिमिनल प्रेसीड्योर कोड की धारा ४४ की अनुसार बाध्य है कि वह समीपस्थ पुलिस अफसर अथवा मेजिस्ट्रेट को इसकी सूचना दे दे। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो भारतीय दण्ड विधान की धारा १७६ के अनुसार उसे दण्ड दिया जा सकता है किन्तु यदि विष का खाना केवल एक आकस्मिक घटना ही हुई है अथवा विष आत्महत्या के लिये प्रयुक्त हुआ है तो इसकी सूचना पुलिस को नहीं देनी चाहिये। किन्तु यदि खोज करने वाला पुलिस अफ़सर सम्मन के द्वारा क्रिमिनल प्रोसीड्योर कोड की धारा १७५ के अनुसार इस प्रकार की सूचना देने के लिये चिकित्सक को बुलाता है तो यदि चिकित्सक वहाँ पहुँच कर किसी भी प्रकार की सूचना को छिपाता है तो उसे भारतीय दण्ड विधान की धारा २०२ के अनुसार गिरफ्तार किया जा सकता है।

दूसरा अध्याय

विष-चिकित्सा

विषाक्त पुरुष के विष को नष्ट करना ही विष-चिकित्सा का प्रधान उद्देश्य होता है, एतदर्थ निम्नलिखित विधियाँ अधिक उपयोगी हैं:—

(१) अशोषित विष को शरीर से बाहर निकालना ।
(२) शरीर के संस्थानों में शोषित हुये हुये विष को बाहर निकालना ।
(३) प्रतिविषों द्वारा चिकित्सा ।
(४) लाक्षणिक चिकित्सा ।

(१) अशोषित विष को शरीर से बाहर निकालना:—

इसमें निम्नलिखित क्रियायें सम्मिलित हैं:—

[I] आमाशय-प्रक्षालन ।
[II] वमन कराना ।
[III] अन्य क्रियायें ।

[I] आमाशय प्रक्षालन:—

यदि रोगी ने विष-सेवन मुख के द्वारा किया है और इस बात का शीघ्र ही पता लग जाये, तब सर्व प्रथम रोगी के आमाशय का प्रक्षालन 'प्रक्षालन-नलिका' अथवा 'पम्प' से करना चाहिये ।

प्रक्षालन नलिका:—

यह रबड़ की एक नली होती है जिसका व्यास ½ इञ्च और लम्बाई ५ फीट होनी चाहिये । इसके एक सिरे से २० इञ्च की दूरी पर एक निशान लगा देना चाहिये ।

प्रयोग विधिः—

जिस सिरे से २० इंच की दूरी पर निशान लगाया जाये, उस पर स्निग्ध पदार्थ जैसे ग्लीसरीन, नवनीत, घृत, तैल आदि चुपड़ कर मुख के द्वारा उंगलियों के सहारे से आमाशय में प्रवेश करना चाहिये और ऐसा करते समय जिह्वा

को बाहर की ओर कुछ खींच लेना चाहिये, जब निशान तक नलिका का भाग अंदर चला जाये, तब नलिका के दूसरे सिरे को सिर से कुछ ऊँचा उठाकर उस पर एक कीप लगाकर सर्व प्रथम उष्ण जल अथवा पोटाशियम परमैंगनेट का घोल कीप में डालना चाहिये और जब कीप ऊपर तक भर जाये अर्थात् उसमें और अधिक द्रव न भरा जा सके, तब उस कीप को रोगी के आमाशय से कुछ नीचे लाकर किसी काँच के पात्र में उलट देना चाहिये, ऐसा करने से आमाशय से विष मिश्रित द्रव बाहर निकलने लगता है । इसी प्रकार कई बार करना चाहिये जब तक कि समस्त विष बाहर न निकल जाये । प्रक्षालन नलिका को प्रयोग कर चुकने के बाद जन्तुघ्न औषधियों से पूर्णतया शुद्ध करके रख देना चहिये । जो प्रथम बार प्रक्षालन करने पर द्रव निकलता है, उसमें विष की मात्रा अधिक होती है, अतएव इस द्रव को भली प्रकार से लेबिल आदि लगाकर सुरक्षित रखना चाहिये क्योंकि यदि परहत्या के लिये विष दिया गया है अथवा आत्महत्या के ही मामले में जब पुलिस को इस रहस्य का पता लग जाता है । और वह एक 'सम्मन' के द्वारा चिकित्सक को बुलाती है, तब इस आमाशयिक द्रव की रासायनिक परीक्षण के लिये आवश्यकता पड़ती है ।

आमाशय प्रक्षालन का निषेधः—

कुछ अवस्थाओं में आमाशय का प्रक्षालन नहीं कराना चाहिये, जैसेः—

(१) यदि रोगी ने विष सेवन से पूर्व आहार किया हो—इस दशा में सर्व प्रथम वमन कराना चाहिये और फिर यदि आमाशय में कुछ विष रह जाये, तब आमाशय का प्रक्षालन कराना चाहिये ।

(२) दाहक विषों अर्थात् तीव्र अम्ल एवम् क्षार के सेवन किये जाने की अवस्था में आमाशय का प्रक्षालन कदापि न करना चाहिये क्योंकि इसमें आमाशयादि भागों के अत्यन्त मृदु हो जाने के कारण उनमें छिद्र हो जाने का भय रहता है ।

[II] वमन करानाः—

यदि आमाशय प्रक्षालन न किया जा सकता हो तो अशोषित विष को बाहर निकालने के लिये रोगी को तुरन्त वामक औषधियों में से किसी के द्वारा वमन कराना चाहिये ।

वामक औषधियाँ:—

(I) सैन्धव लवण १$\frac{1}{4}$ तोला, उष्णोदक ४ छिटाँक } घोलकर पिला देना चाहिये।

(II) राई का चूर्ण १$\frac{1}{4}$ तोला, जल ४ छिटाँक } मिलाकर पिला देना चाहिये।

(III) यशद गंधेत १$\frac{1}{4}$ माशा, जल ४ छिटाँक } घोलकर पिला देना चाहिये।

(IV) टिंचर इपीकेकुआना ४ से ६ ड्राम, उष्णोदक ४ छिटाँक } मिलाकर पिला देना चाहिये।

(V) तुत्थ ३ से ५ रत्ती तक, उष्णोदक ४ छिटाँक } घोलकर पिला देना चाहिये (फासफोरस से विषाक्त होने पर)

(VI) एपोमार्फीन $\frac{1}{20}$ रत्ती—जल में घोलकर इन्जेक्शन लगा देना चाहिये।

अन्य आयुर्वेदीय वामक औषधियाँ:—

मैनफल, मुलहठी, कड़ुवी तुम्बी, नीम, इन्द्रायण, कुड़े की छाल, मूर्वा, देवदाली, वायविडङ्ग, चित्रक मूल, तुरई, अर्क मूल, अरिष्टक, लवण, राई, सरसों, करंज, उष्ण जल आदि।

[III] **अन्य क्रियाएँ:—**

(क) यदि सर्प आदि के काटने अथवा वर्र आदि के डङ्क मारने से विष शरीर में प्रविष्ट हो तो क्षत-स्थान से ऊपर तुरन्त एक बंधन बाँधकर—यदि मुख पर किसी प्रकार का क्षत अथवा खरोंच्न आदि न हो, तो विष को मुँह से चूसना चाहिये।

(ख) यदि विष श्वास-क्रिया के समय सूँघा गया है तो आक्सीजन की पर्याप्त व्यवस्था करनी चाहिये। आक्सीजन मास्क, जैसा कि गैसों में प्रयुक्त होती है; काम में लायी जा सकती है अथवा ९३ से ९५ प्रतिशत आक्सीजन और ५ से ७ प्रतिशत कार्बन डाई आक्साइड का मिश्रण प्रयोग किया जा सकता है क्योंकि इस मात्रा में कार्बन डाई आक्साइड श्वास-केन्द्रों को उत्तेजित करता है ताकि वह बलपूर्वक कार्य कर सके।

(२) शरीर के संस्थानों में शोषित हुये विष को बाहर निकालना:—

इसके लिये स्वेदल, मूत्रल अथवा [illegible]क औषधियों का प्रयोग करना चाहिये।

(३) प्रतिविषों द्वारा चिकित्साः—

प्रतिविष ३ प्रकार के होते हैं:—

[I] यान्त्रिक प्रतिविष (Mechanical)

[II] रासायनिक प्रतिविष (Chemical)

[III] क्रिया-विरुद्ध प्रतिविष (Physiological)

[I] यान्त्रिक प्रतिविषः—

मणि, कांच आदि का चूर्ण जब मुख के द्वारा सेवन कर लिया जाता है, तब वह अन्दर पहुँच कर अपनी यान्त्रिक क्रिया के कारण आमाशय और अन्त्र की श्लेष्मिक कलाओं पर आघात करता है और उनको कई स्थानों पर काट देता है, उनसे रक्त स्राव होता है और पीड़ा होती है, इत्यादि—किन्तु यदि स्निग्ध पदार्थ जैसे वसा, तैल, अंडे की एलब्यूमिन आदि का उपरोक्त विषों का भक्षण करने के तुरन्त बाद अथवा उसके कुछ देर के बाद सेवन किया जाये तो आमाशय आदि की श्लेष्मिक कलायें क्षतयुक्त होने से बचायी जा सकती हैं। वसा, तैल आदि आमाशय और अन्त्र में पहुँच कर वहाँ की श्लेष्मिक कला पर एक आवरण की तरह चढ़ जाती हैं जिससे मणि, काँच आदि की यान्त्रिक क्रिया फिर नहीं हो पाती।

[II] रासायनिक प्रतिविषः—

(I) यदि अम्लीय पदार्थों का विष के रूप के सेवन किया गया हो, तो उसके लिये क्षारीय पदार्थों को देना चाहिये और यदि क्षारीय पदार्थों का विष के रूप में प्रयोग किया गया हो तो अम्लीय पदार्थों को देना चाहिये।

(II) खनिज अम्लों के लिये मैगनेशिया और क्षारीय कार्बोनेट देना चाहिये।

(III) आक्ज़ेलिकाम्ल के लिये चूना।

(IV) नाग और टैनीन विषों के लिये सोडियम सल्फेट।

(V) रसकर्पूर विष के लिये एलब्यूमिन।

(VI) दाहक क्षारीय विषों के लिये नींबू का रस अथवा सिरका।

इसमें इस बात का सदैव स्मरण रहे कि ऐसे प्रतिविषों का सेवन कराना चाहिये जिससे शरीर पर किसी प्रकार का [illegible] न हो।

[III] क्रिया-विरुद्ध प्रतिविषः—

(I) एट्रोपीन और मार्फिया।

(II) एट्रोपीन और पिलोकारपीन।

(III) स्ट्रिकनीन और ब्रोमाइड्स—क्लोरल हाइड्रेट, डिजिटेलिस और वत्सनाभ के साथ।

(IV) क्लोरोफार्म और एमाइल नाइट्राइट।

विशेष विवरणः—

(I) समस्त प्रकार के विषों में विशेषतया फेनाश्म, यशद, डिजीटेलिस, अम्ल, पारद, मार्फिया और स्ट्रिकनीन में निम्नलिखित योग लाभप्रद है:—

नं० १—कासीस का संतृप्त घोल १०० भाग

नं० २	कैल्साइन्ड मैगनेशिया	८८ भाग
	कोयला	४० भाग
	जल	१०० भाग

नं० १ और नं० २ को पृथक पृथक पात्रों में रखना चाहिये। प्रयोग करते समय दोनों को एक ही में मिला कर विषाक्त पुरुष को पीने के लिये देना चाहिये। किन्तु क्षार, नाग, नीलाञ्जन और हाइड्रोसियानिकाम्ल विष-सेवन में इससे कोई लाभ नहीं होता।

(II) यदि विष की प्रकृति का ठीक ठीक ज्ञान न हो अथवा २-३ विष मिलाकर प्रयोग किया गया हो, तो

निम्नलिखित रासायनिक प्रतिविष अत्यन्त लाभप्रद है:—

पिसा हुआ कोयला	२ भाग	मिलाकर रख देना चाहिये।
टैनिक ऐसिड	१ भाग	
मैगनीसियम आक्साइड	१ भाग	

आवश्यकता पड़ने पर इसमें से ३¾ माशे लेकर ४ छिटाँक जल में मिलाकर देना चाहिये। इसकी पुनः [illegible] मात्रा स्वतन्त्रता पूर्वक दी जा सकती है। कोयला—एलकेलाइड्स को [illegible] कर लेता है, टैनिकाम्ल—एलकेलाइड्स, ग्ल्यूकोसाइड्स वा अन्य धातुओं [illegible] क्षेपण करता है। मैगनेशिया अम्लों को निष्क्रिय करता है और फेनाश्म [illegible] ष के रूप में प्रयुक्त होता है।

(४) लाक्षणिक चिकित्सा:—

(I) पीड़ा कम करने के लिये रुजाहर और स्निग्ध औषधियाँ देंनी चाहियें अथवा मार्फिया का इन्जेक्शन लगाना चाहिये।

(II) स्तब्धता और हृदयावसाद की अवस्था में शरीर का ताप बनाये रखने के लिये उष्णोदक से भरी हुई बोतलों से उष्णता पहुँचानी चाहिये अथवा तैलों से अभ्यंग करना चाहिये और शरीर में उत्तेजना पहुँचानी चाहिये। एतदर्थ स्ट्रिकनीन $\frac{1}{60}$ ग्रेन अथवा 'कैम्फर इन आयल' (Camphor in oil) अथवा 'कैम्फर इन ईथर' (Camphor in ether) का इन्जेक्शन लगा देना चाहिये

(III) यदि नाड़ी दुर्बल एवम् मन्द हो तो शिरा के द्वारा लवणोदक (Saline Solution) प्रविष्ट किया जाना चाहिये।

(IV) श्वासावरोध की अवस्था में आक्सीजन की व्यवस्था करनी चाहिये।

(V) श्वास-कर्म में बाधा पड़ने पर 'कृत्रिम श्वास-क्रिया' करनी चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर ऐट्रोपीन अथवा स्ट्रीकनीन का त्वचा के नीचे इन्जेक्शन लगाया जा सकता है।

विष निकलने के शारीरिक मार्ग

(I) स्वेद (II) मूत्र (III) पित्त (IV) दुग्ध (V) लालारस (VI) श्लेष्मा और (VII) त्वचा के स्राव।

निकले हुये वमनादि का संग्रह, रक्षण और प्रेषण

विषाक्त पुरुष के वमन किये हुये पदार्थ, आमाशय का धोवन, मूत्र, पुरीष आदि को काँच के पात्रों में संग्रह करना चाहिये। आवश्यकतानुसार उसमें संरक्षक मिलाया जा सकता है ताकि वह विकृत न होने पाये। यदि विष का प्रयोग परहत्या के लिये किया गया है, तब वमनादि का संग्रह करना अनिवार्य है अन्यथा चिकित्सक को दण्ड दिया जा सकता है। संग्रह करने के बाद पात्रों पर पदार्थ का नाम विषाक्त पुरुष का नाम, आदि बातें लिखकर लेबिल लगा देना चाहिये। इनके रक्षण के हेतु जो संरक्षक प्र[illegible] किया जाये, उसका नमूना भी एक शीशी में रखना चाहिये और फिर इन [illegible] किसी सन्दूक में बन्द कर ताला लगा देना चाहिये। आवश्यकता प[illegible] ऐसे रासायनिक परीक्षक के पास अपनी सील लगाकर भेज देना अचाहिये [illegible]

तीसरा अध्याय

विषों का वर्गीकरण

- (१) दाहक (Corrosives)
  - [क] तीव्र अम्ल (Strong acids)
    - अनन्द्रिक
      - गन्धकाम्ल (H_2SO_4)
      - लवणाम्ल (Hcl)
      - शोरकाम्ल (HNO_3)
      - आदि
    - ऐन्द्रिक
      - आक्ज़ेलिकाम्ल $(COOH)_2 2H_2O$
      - कार्बोलिकाम्ल (C_5H_5OH)
      - आदि
  - [ख] क्षार (Alkalies)
    - दाहक सोडा ($NaHO$) [Caustic Soda]
    - दाहक पोटाश (KHO) [Caustic Potash]
    - अमोनिया (NH_3)
    - आदि
- (२) क्षोभक (Irritants) (पृष्ठ २२ पर देखो)
- (३) वात-नाड़ी प्रभावक (Neurotics) (पृष्ठ २३ पर देखो)

(२) क्षोभक
[क] अनैन्द्रिक (खनिज)
(Inorganic)
[ख] ऐन्द्रिक
(Organic)
[ग] याँत्रिक
(Mechanical)
[I] धात्वीय
Metallic)
यशद (Zinc)
पारद (Mercury)
ताम्र (Copper)
फेनाश्य (Arsenic)
नीलाञ्जन(Antimony)
आदि
[II] अधात्वीय
(Non-metallic)
स्फुर (Phosphorus)
हरिन (Chlorine)
अरुणिन् (Bromine)
नैलिन (Iodine)
आदि
[I] वानस्पतिक
(Vegitable)
एरण्ड (Castor oil seed)
जयपाल (Croton seed)
अर्क (मदार)
एलुआ (Aloes)
इन्द्रायण (Colocynth)
भल्लातक (Marking nut)
आदि
[II] जाङ्गम
(Animal)
कैन्थेराइड्स
(Cantharides)
सर्प विष
(Snake-bite)
कीट दंश
(Insect bites)
आदि
मणिचूर्ण
(Diamond dust)
काँच चूर्ण
(Powdered glass)
केश (Hair)
आदि

(३) वात-नाड़ी प्रभावक

- [क] मस्तिष्क प्रभावक (Cerebral)
  - निद्रालु (Somniferous or narcotic) — अहिफेन (Opium), अहिफेन-सत्व (morphia) आदि
  - [II] मादक (Inebriant) — मद्य (Alcohol), ईथर (Ether), क्लोरोफार्म (Chloroform) आदि
  - [III] प्रलापक (Deliriant) — धतूरा (Datura), बेलाडोना (Belladona), भाँग (Cannabis indica), खुरासानी अजवायन (Hyoscyamus) आदि
- [ख] सुषुम्ना प्रभावक (Spinal) — कुचला (Nux-vomica), स्ट्रेक्नीन (Strychnine), जेल्सीमियम (Gelsemium) आदि
- [ग] हृद्-प्रभावक (Cardial) — वत्सनाभ (Aconite), तमालपत्र (Tobacco), डिजीटेलिस (Degitalis), अश्वमार (Oleander), हाइड्रोसियानिकाम्ल (Hydrocyanic acid)
- [घ] फुफ्फुस प्रभावक (Asphyxiants) — गन्धक द्विओषिद (Sulphur dioxide), कर्बन द्विओषिद (Carbon dioxide), कर्बन एकोषिद (Carbon monooxide), उदजन गन्धिद (Hydrogen sulphide)
- [ङ] पेरीफरल-नाड़ी प्रभावक (Peripheral) — कोनियन (Conium), कुररा (Curara)

विषों का आयुर्वेदीय वर्गीकरण

चौथा अध्याय

विषों का प्रयोग

विष का नाम	आकस्मिक दुर्घटनाएं	आत्महत्या के लिये	परहत्या के लिये	अन्य विवरण
[illegible]काम्ल लवणाम्ल गंधकाम्ल आक्ज़ेलिकाम्ल कार्बोलिकाम्ल	अधिक	कभी कभी (युवतियों में	बहुत कम (बालकों पर)	×
कास्टिक सोडा कास्टिक पोटाश अमोनिया	कभी कभी	कम	×	×
फेनाश्म	कभी कभी	कम	अधिक	×
नीलाञ्जन	कभी कभी	×	×	×
ताम्र	कभी कभी	कम	कभी कभी	×

विष का नाम	आकस्मिक दुर्घटनाएँ	आत्महत्या के लिये	परहत्या के लिये	अन्य विवरण
यशद	कभी कभी	×	×	×
नाग	कभी कभी	बहुत कम	×	×
पारद	अधिक	कम	कभी कभी	×
फासफोरस	अधिक	कभी कभी	बहुत कम	×
एरण्ड	कम	×	×	×
जयपाल	कभी कभी	×	×	×
[illegible]र्क	×	कम	बहुत कम	दोनों-शिशुहत्या एवं गर्भपात कराने के लिये विशेष रूप से प्रयोग की जाती हैं।
इन्द्रायन	×	×	×	
गुञ्जा	×	×	कभी कभी	(I) गर्भपात कराने के लिये। (II) चमारों द्वारा–जन्तुहत्या के लिये।
चित्रक	×	×	बहुत कम	गर्भपात कराने के लिये।

विष का नाम	आकस्मिक दुर्घटनाएँ	आत्महत्या के लिये	परहत्या के लिये	अन्य विवरण
भल्लातक	कभी कभी	×	कम	गर्भपात कराने के लिये
अहिफेन	बहुत कम (बच्चों में)	अधिक (युवतियों में)	कम (शिशुओं और बालकों पर)	×
गाँजा	कभी कभी	×	×	×
धत्तूर	कभी कभी (बच्चों में)	×	×	बलात्कार, लूटने आदि के लिये
मद्य	×	×	बहुत कम	×
क्लोरोफार्म	कभी कभी	कम	×	बलात्कार, लूटने आदि के लिये
क्लोरल हाईड्रेट	कभी कभी	बहुत कम	×	मूर्छित करने के लिये
पेट्रोलियम	कम (बच्चों में)	×	×	×
कुचला	कभी कभी (बच्चों में)	कम	कम (स्वाद कड़ुवा होने के कारण)	×

विष का नाम	आकस्मिक दुर्घटनाएँ	आत्महत्या के लिये	परहत्या के लिये	अन्य विवरण
तमालपत्र	कभी कभी	×	×	×
डिजीटेलिस	कभी कभी	×	×	×
अश्वमार	बहुत कम	कम	×	गर्भपात कराने के लिये
वत्सनाभ	कभी कभी	बहुत कम	कम	चमारों द्वारा—जन्तुहत्या के लिये
हाइड्रोसियानिकाम्ल	कभी कभी	अधिक (शिक्षित युवकों में)	×	×
[illegible] ई आक्साइड कार्बन मानो आक्साइड	कभी कभी	बहुत कम	×	×

पांचवाँ अध्याय

विष और उसकी मात्रा आदि

विष का नाम	चिकित्सामें प्रयुक्त मात्रा	घातक मात्रा	घातक काल
[illegible] (Nitric acid)	Diluted ५ से २० बूँद तक	२ ड्राम	१२ से २४ घंटे तक
लवणाम्ल (Hydrochloric acid)	Diluted ५ से ६० बूँद तक	४ ड्राम	१ से ३ दिन तक कम से कम—१½ घंटे
गंधकाम्ल (Sulphuric acid)	Diluted ५ से ६० बूँद तक	१ ड्राम	१८ से २४ घंटे कम से कम—१ घंटा
आक्ज़ेलिकाम्ल (Oxalic acid)	×	४ ड्राम न्यूनतम–१ ड्राम	प्रायः—१ से २ घंटे कम से कम—३ मिनट
कार्बोलिकाम्ल (Carbolic acid)	१ से ३ बूँद तक	४ ड्राम	१ से ४ घंटे कम से कम–१० मिनट
दाहक सोडा (Caustic soda)	×	४ ड्राम	२४ घंटे

विष का नाम	चिकित्सा में प्रयुक्त मात्रा	घातक मात्रा	घातक काल
दाहक पोटाश (Caustic potash)	×	४ ड्राम	२४ घंटे
अमोनिया (Liquor Ammonia)	Diluted liquor १० से २० बूँद तक	१ ड्राम	२४ घंटे
अमोनिया कार्बोनेट	५ से १० ग्रेन तक	२ ड्राम	२४ घंटे
फेनाश्म (Arsenic)	१/६० से १/१२ ग्रेन तक	३ ग्रेन	१२ से २४ घंटे तक
[illegible]लाञ्जन ([illegible]mony tartarate)	१/२ से १ ग्रेन तक	१० से २० ग्रेन तक	१० से ६० घंटे
ताम्र (Copper sulphate)	१/२ से २ ग्रेन तक वमनार्थ— ५ से १० ग्रेन तक	१ औंस	४ घंटे से ३ दिन तक
यशद (Zinc sulphate)	१ से ३ ग्रेन तक	४ ड्राम	२ घंटे से ५ दिन तक

विष का नाम	चिकित्सा में प्रयुक्त मात्रा	घातक मात्रा	घातक काल
	वमनार्थ १० से ३० ग्रेन तक		यशद
नाग ([illegible]ad acetate)	$\frac{१}{२}$ से २ ग्रेन तक	१ औंस	२ से ५ दिन तक
पारद			
रस कर्पूर ($HgCl_2$)	$\frac{१}{३२}$ से $\frac{१}{१६}$ ग्रेन तक	३ से ५ ग्रेन तक	१ से ५ दिन तक कम से कम—$\frac{१}{२}$ घंटा
रस पुष्प ($HgCl$)-Calomel	$\frac{१}{२}$ से ३ ग्रेन तक	×	
Mercuric oxycyanide	$\frac{१}{१२}$ से $\frac{१}{६}$ ग्रेन तक	२० ग्रेन	
फासफोरस (Phosphorus)	$\frac{१}{१००}$ से $\frac{१}{२५}$ ग्रेन तक	१ से २ ग्रेन तक बच्चा—$\frac{१}{४}$ ग्रेन	२ से ८ दिन तक कम से कम—$\frac{१}{२}$ घंटा
एरण्ड (Castor oil seeds)	Pure oil— १ से ४ ड्राम तक	२ से १० बीज तक	४८ घंटे

विष का नाम	चिकित्सा में प्रयुक्त मात्रा	घातक मात्रा	घातक काल
जयपाल (Croton oil seeds)	Oil— ½ से १ बूँद तक	तैल-१५ से ३० बूँद तक बीज-४ बीज	४-५ घंटे अधिक से अधिक-३ दिन
अर्क (Madar)— मूलत्वक चूर्ण	½ से २ ग्रेन तक	६० से १०० ग्रेन तक	१ से २ घंटे तक
इन्द्रायण (Colocynth)	२ से ५ ग्रेन तक	६० से १२० ग्रेन तक	२ दिन
गुञ्जा	×	१½ से २ ग्रेन तक	३ से ५ दिन तक
[illegible] अहिफेन			
(Powdered Opium)	½ से ३ ग्रेन तक	४ से ५ ग्रेन तक	६ से १२ घंटे तक अधिक से अधिक- ३ दिन
(Tincture Opii)	५ से ३० बूँद तक	१ से २ ड्राम तक	
(Extract Opii)	¼ से १ ग्रेन तक	२ से ३ ग्रेन तक	
(Morphine Hydrochloride)	⅛ से ½ ग्रेन तक	१ से २ ग्रेन तक	

विष का नाम	चिकित्सा में प्रयुक्त मात्रा	घातक मात्रा	घातक काल
भाँग			
xt Cannabis Indica)	$\frac{१}{४}$ से १ ग्रेन तक	५ से ७ ग्रेन तक	१२ से ४८ घंटे तक
ure Cann..Indi..)	५ से १५ बूँद तक	७$\frac{१}{२}$ बूँद	
धत्तूर			
बीज का चूर्ण	$\frac{१}{२}$ से ४ ग्रेन तक	१० से १५ ग्रेन तक	१२ से २४ घंटे तक
बेलाडोना			
(Ext Belladone)	$\frac{१}{४}$ से १ बूँद तक	१ ड्राम	२४ घण्टे
(Tinct Belladone)	५ से ३० बूँद तक		
(Liniment Belladone)	×		
(Atropine Sulphate)	$\frac{१}{२४०}$ से $\frac{१}{६०}$ ग्रेन तक	$\frac{१}{१२}$ से १ ग्रेन तक	
मद्य (Pure Alcohol)	×	२ से ५ औंस तक	१२ से २४ घण्टे

विष का नाम	चिकित्सा में प्रयुक्त मात्रा	घातक मात्रा	घातक काल
क्लोरोफार्म Concentrated	×	१५ से ३० बूँद तक	सुँघाने पर–२ मिनट
Simple	१ से ५ बूँद तक	युवा-४ से ६ ड्राम तक बच्चा–१ ड्राम	पीने पर–५ से ६ घण्टे
क्लोरल हाईड्रेट (Chloral hydrate)	५ से २० ग्रेन तक	३० से १२० ग्रेन तक	१० से १२ घण्टे
पेट्रोलियम (K[illegible]rosene oil)	×	१ औंस	७ घण्टे
[illegible] कुचला (T[illegible]nct Nux Vomica)	१० से ३० बूँद तक	६ ड्राम	५ मिनट से ४ घण्टे तक
([illegible]xtract Nux Vomica)	$\frac{१}{४}$ से १ ग्रेन तक	३ ग्रेन	
([illegible]owdered Nux Vomica)	१ से ४ ग्रेन तक	३० से ५० ग्रेन	
(Strychnine Hydrochlor)	$\frac{१}{३२}$ से $\frac{१}{८}$ ग्रेन तक	१ से २ ग्रेन	

विष का नाम	चिकित्सा में प्रयुक्त मात्रा	घातक मात्रा	घातक काल
तमालपत्र			
पत्तों का चूर्ण	×	१ ड्राम से २ ड्राम तक	१ घण्टा
(Nicotine)	$\frac{१}{३०}$ से $\frac{१}{१५}$ ग्रेन तक	१ से ३ बूँद तक	३ से ५ मिनट तक
डिजीटेलिस			
चूर्ण	$\frac{१}{२}$ से $१\frac{१}{२}$ ग्रेन तक	३८ ग्रेन	
(Tinct Digitalis)	५ से १५ बूँद तक	६ से ६ ड्राम तक	
Infusion	$१\frac{१}{२}$ से ५ ड्राम तक	२ औंस	२४ घण्टे
Amorphous Digitalin	$\frac{१}{६०}$ से $\frac{१}{३०}$ ग्रेन तक	१ से $१\frac{१}{२}$ ग्रेन तक	
Crystallised Digitaline	$\frac{१}{२४०}$ से $\frac{१}{६००}$ ग्रेन तक	$\frac{१}{४}$ से $\frac{१}{२}$ ग्रेन तक	
Digitoxin	$\frac{१}{६००}$ से $\frac{१}{६०}$ ग्रेन तक	$\frac{१}{१६}$ से $\frac{१}{४}$ ग्रेन तक	
अश्वमार (Oleander)	(पृष्ठ ३६ देखो)	(पृष्ठ ३६ देखो)	(पृष्ठ ३६ देखो)

विष का नाम	चिकित्सा में प्रयुक्त मात्रा	घातक मात्रा	घातक काल
श्वेत–मूल	×	३४० ग्रेन	अनिश्चित (Karabin से १२ से २४ घण्टे में मृत्यु हो जाती है)
Karabin	×	३ ग्रेन	
बीज	×	३ बीज का चूर्ण	
पीत—मूल	×	२४० ग्रेन	
बीज	×	८ से १० तक	
वत्सनाभ (Tinct Aconite)	२ से ५ बूँद तक	१ ड्राम	३–४ घण्टे
[illegible]onitine)	×	$\frac{1}{20}$ से $\frac{1}{16}$ ग्रेन तक	
([illegible] Aconite root)	×	१ ड्राम	
[illegible]हाइड्रोसियानिकाम्ल [illegible]hydrous Prussic acid)	×	$\frac{1}{2}$ से १ ग्रेन तक	२ से १० मिनट तक
[illegible] Acid Hydrocyanic dil)	२ से ५ बूँद तक	३० बूँद	
(Potassium cyanide)	×	५ ग्रेन	

छठवाँ अध्याय

अम्ल (Acids)

अम्ल दो प्रकार के होते हैं:—

(१) **अनैन्द्रिक** (Inorganic acids):— इसे धात्वीय अम्ल भी कहते हैं। इसमें लवणाम्ल (HCl), गंधकाम्ल (H_2SO_4) और शोरकाम्ल (HNO_3) सम्मिलित हैं।

(२) **ऐन्द्रिक** (Organic Acids):—इसमें आक्ज़ेलिक ऐसिड, कार्बोलिक ऐसिड, ऐसिटिक ऐसिड इत्यादि सम्मिलित हैं।

प्रत्येक अम्ल का पृथक पृथक परिचय आगे दिया गया है। यहाँ पर अम्लों के सामान्य लक्षण और उनकी सामान्य चिकित्सा का वर्णन किया जायेगा।

अम्लों के सामान्य लक्षण

(१) स्वाद—अम्लीय होता है।

(२) पीते ही मुँह में तीव्र दाह और पीड़ा होती है।

(३) ओष्ठ, मुख, जिह्वा और गले में शोथ और व्रण हो जाते हैं।

(४) मुँह से लाला-स्राव होने लगता है और साथ में श्लेष्मा निकलती है।

(५) वमन होती है, जिसकी प्रतिक्रिया अत्यन्त अम्लीय होती है और उसमें श्लेष्मिक कला के टुकड़े होते हैं।

(६) प्यास बहुत लगती है।

(७) मुँह से या तो शब्द नहीं निकलते या फिर कष्ट के साथ बोलते बनाता है।

(८) उदर फूल जाता है और उदर शूल होने लगता है। उदर को स्पर्श करने पर असहनीय पीड़ा होती है।

(९) हृदयावसाद आरम्भ हो जाता है।

(१०) त्वचा—श[illegible]और स्वेद युक्त होती है।

(११) [illegible]जाती है।

[illegible]ा होती है और फिर मृत्यु हो जाती है।

अम्लों की सामान्य चिकित्सा

(१) वामक औषधियों का प्रयोग करना निषिद्ध है क्योंकि गला, अन्न प्रणाली आदि क्षतयुक्त होते हैं। अतएव वमन कराने पर रोगी को बहुत कष्ट होता है और लाभ की अपेक्षा हानि होने की अधिक सम्भावना रहती है।

(२) गला, अन्नप्रणाली, आमाशय आदि के क्षतयुक्त होने से आमाशय-प्रक्षालन क्रिया भी निषिद्ध है।

(३) अतएव अम्ल को निष्क्रिय करने के लिये क्षारीय पदार्थ देना चाहिये, जैसे:—

(I) सोडा बाई कार्ब (Soda bicarb)

(II) मैगनेशिया कार्ब (Magnesium carbonate)

(III) पोटाश कार्ब (Potassium carbonate)

उपरोक्त तीनों औषधियों को जलमें मिलाकर ही पीने के लिये देना चाहिये।

(IV) चूर्णोदक (Lime water) का प्रयोग भी किया जाता है।

(V) साबुन—जल में घोलकर पिलाना चाहिये, ।

(४) तरल स्निग्ध पदार्थ पिलाना चाहिये, जैसेः—

(I) अंडे के अन्दर की सफेदी।

(II) नवनीत, घृत और दुग्ध।

(III) अलसी, जैतून और बादाम के तेल।

(५) पीड़ा कम करने के लिये मार्फिया का इन्जेक्शन देना चाहिये।

(६) प्यास दूर करने के लिये शीतल जल थोड़ा थोड़ा करके पिलाना चाहिये या बर्फ चुसाना चाहिये।

(७) हृदयावसाद के लिये उत्तेजक वस्तुओं का मुख अथवा इन्जेक्शन के द्वारा प्रयोग करना चाहिये।

अनैन्द्रिक अम्ल (Inorganic acids)

(१) शोरकाम्ल (Nit[illegible] Acid)

परिचय एसे[illegible]

विशुद्ध शोरकाम्ल स्वच्छ वर्णरहित द्र[illegible] देने

पर इसमें से एक रंग रहित धुआं निकलता है जिसमें दम घोटने वाली (Choking) गन्ध होती है। यह एक क्षतकारी और प्रबल आक्सीकारक पदार्थ (Oxidising agent) है। स्वर्ण और प्लाटिनम को छोड़कर अन्य सभी धातुओं को घोलने की इसमें शक्ति होती है। त्वचा अरौ नखों पर इस अम्ल का हल्का विलयन लग जाने से पीत वर्ण का दाग़ पड़ जाता है। व्यवसाय में जो शोरकाम्ल प्रयुक्त होता है, वह किंचित पीत वर्ण का होता है क्योंकि उसमें नाइट्रोजन परआक्साइड नाम की गैस घुली रहती है।

विशेष लक्षण

(१) ओष्ठ, कपोल, मुख, जिह्वा और हाथ की श्लेष्मिक कला आदि सम्पर्क में आने वाली धातुयें पीत वर्ण की हो जाती हैं।

(२) इस अम्ल की वाष्प सूँघने से श्वास प्रणाली और फुफ्फुसों में क्षोभ उत्पन्न हो जाता है जिसके कारण सर्व प्रथम खाँसी आती है और फिर श्वास-कृच्छ्रता और श्वासावरोध हो जाता है।

घातक मात्राः—१२० बूँद।

घातक कालः—१२ से २४ घंटे तक।

मृत्यूत्तर रूप

(क) बाह्यः—

(१) ओठ, गाल वा अन्य शारीरिक अवयव जो कि इस अम्ल के सम्पर्क में आते हैं, उन पर पीत वर्ण के चकत्ते या दाग़ पड़ जाते हैं।

(२) मुख और नासिका पर पीत वर्ण की फेनयुक्त श्लेष्मा पायी जा सकती है।

(ख) आभ्यन्तरिकः—

(१) मुख, जिह्वा, अन्नप्रणाली, गला, आमाशय और पक्वाशय का ऊर्ध्व भाग दाह युक्त होता है और उन पर पीले रंग के दाग़ पाये जाते हैं।

(२) तीव्र अम्ल से आमाशय में छिद्र हो सकते हैं। प्रायः आमाशय क्षतयुक्त हो जाता है।

(३) स्वर [illegible] ली और श्वास नलिकाओं में शोथ के चिन्ह पाये [illegible]

चिकित्सा

(अम्लों की सामान्य चिकित्सा देखो)

(२) गन्धकाम्ल (Sulphuric acid)

परिचय

शुद्ध गंधकाम्ल वर्णरहित द्रव पदार्थ है। यह भारी होता है और इसका विशिष्ट घनत्व १·८४ है। वायु में खुला छोड़ देने पर भी इसमें से किसी प्रकार का धुआँ नहीं निकलता है। इस अम्ल को जल में मिलाने पर अत्यधिक ताप निकलता है। इस अम्ल में जल के शोषण करने की बहुत प्रबल क्षमता होती है। त्वचा, वस्त्र, कागज़, लकड़ी अथवा अन्य किसी ऐन्द्रिक पदार्थ पर गंधकाम्ल पड़ जाने से वे झुलस जाते हैं। प्रायः गंधकाम्ल के पड़ने से वस्त्र नष्ट हो जाता है और उस पर एक रक्तिमायुक्त कपिल वर्ण का धब्बा पड़ जाता है। व्यवसाय में जो गन्धकाम्ल प्रयोग किया जाता है, वह प्रायः कपिल वर्ण का होता है और उसमें कई प्रकार की अशुद्धियाँ भी होती हैं।

विशेष लक्षण

(१) मुख की श्लेष्मिक कला कपिल वर्ण की हो जाती है।

घातक मात्राः—६० बूँद।

घातक कालः—१८ से २४ घंटे तक।

चिकित्सा

(इसकी चिकित्सा अम्लों की सामान्य चिकित्सा की तरह है। अतएव अम्लों की सामान्य चिकित्सा देखो।)

मृत्यूत्तर रूप

(क) **बाह्यः—**

ओठ, गाल वा अन्य शारीरिक भाग जो कि[illegible] के सम्पर्क में आते हैं, उन पर कपिल वर्ण के दाग़ या चकत्ते [illegible]

(ख) आभ्यन्तरिकः—

यदि अम्ल बहुत तीव्र है तोः—

(१) जिह्वा और मुख शोथयुक्त, मृदु और गले हुये पाये जायेंगे।

(२) उदर गुहामें कृष्ण वर्ण का एक तरह का तरल पदार्थ पाया जाता है।

(३) आमाशय की बाह्य सतह कृष्ण वर्ण की हो जाती है और उसकी भित्ति मृदु हो जाती है, कभी २ उसमें एक या एक से अधिक छिद्र भी हो जाते हैं।

(४) अन्य आभ्यन्तरिक अवयव जो कि इस अम्ल के सम्पर्क में आ चुकते हैं, उनकी सतह पर दाह और कृष्ण वर्णता पायी जा सकती है।

यदि अम्ल हलका हो तोः—

(१) आमाशय में छिद्र नहीं होते किन्तु प्रायः सम्पूर्ण आमाशय विस्फारित हो जाता है। आमाशयिक रक्त नलिकायें फूली हुई होती हैं और आमाशय कृष्ण वर्ण का होता है।

(२) आमाशयिक श्लेष्मिक कला दाह युक्त और कृष्ण वर्ण की होती है।

(३) लवणाम्ल (Hydrochloric acid)

परिचय

शुद्ध लवणाम्ल वर्णरहित वायव्य पदार्थ (Gas) है जिसका विशिष्ट घनत्व १·२६ होता है। इसमें एक प्रकार की क्षोभक गन्ध होती है। जल में अत्यन्त घुलनशील है। वाणिज्य में प्रयुक्त होने वाला लवणाम्ल पीत वर्ण का द्रव होता है जो कि इस वायव्य पदार्थ को जल में घोलकर बनाया जाता है। ब्रिटिश फार्मेकोपिया का लवणाम्ल एक वर्णरहित तरल पदार्थ होता है जिसका विशिष्ट घनत्व १·१५८ से १·१६८ तक होता है और मात्रा में ३२ प्रतिशत इसमें लवणाम्ल होता है।

[illegible]शेष लक्षण

(१) अन्य [illegible] इसका प्रभाव कुछ कम तीव्र होता है और विशेषतया [illegible]

(२) सम्पर्क में आने वाली धातुयें—जैसे जिह्वा, मुख आदि, कुछ श्वेत वर्ण की हो जाती हैं।

चिकित्सा

(अम्लों की सामान्य चिकित्सा की भाँति इसकी भी चिकित्सा करनी चाहिये।)

घातक मात्रा:—२४० बूँद।

घातक काल:—१ से ३ दिन तक।

मृत्यूत्तर रूप

(१) आमाशय शोथयुक्त हो जाता है।

(२) मुख, जिह्वा, अन्नप्रणाली, अन्त्र आदि सम्पर्क में आने वाले भाग किंचित् कपिल अथवा कृष्ण वर्ण के हो जाते हैं।

ऐन्द्रिक अम्ल (Organic acids)

(१) आक्ज़ेलिकाम्ल (Oxalic acid)

परिचय

यह वर्णरहित पारदर्शक स्फटिक होता है। इसका १ भाग शीत जल के १० भाग और शीत मद्य के २½ भाग में घुल जाता है। १५०° के तापक्रम पर यह पूर्णतया उड़ जाता है।

लक्षण

(क) **स्थानिक क्रिया:—**

(१) मुँह में अम्लीय स्वाद होता है।

(२) मुँह, गला, आमाशय और उदर में तीव्र दाह युक्त पीड़ा होती है।

(३) रक्त और श्लेष्मा मिश्रित वमन होती है। वमन किये हुये पदार्थ का रंग हरा, भूरा अथवा काला होता है।

(ख) **सार्वाङ्गिक क्रिया:—**

(१) तीव्र विरेचन होते हैं।

(२) त्वचा शीतल और स्वेद युक्त [illegible]

(३) शरीर का तापक्रम साधारण से कम होता है।

(४) हाथ और पैर की पेशियों में ऐंठन होती है।

(६) आक्षेपण होते हैं।

(६) नाड़ी—दुर्बल, क्रमहीन और तीव्र होती है।

(७) सन्यास (Coma) उत्पन्न हो जाता है।

(८) रोगी मूर्छित होकर मृत्यु को प्राप्त होता है।

घातक मात्राः—२४० बूँद। न्यूनतम ६० बूँद।

घातक कालः—प्रायः १ से २ घण्टे, कम से कम ३ मिनट।

चिकित्सा

(१) **प्रतिविषः**—चूना, खटिक, दीवार की सफ़ेदी, अण्डे के ऊपर के छिलके का सूक्ष्म चूर्ण—इनमें से किसी को जल में मिला कर पीने को देना चाहिये।

(२) **आमाशय-प्रक्षालनः**—वर्जित है।

(३) यदि वमन न होती हो अथवा कम होती हो तो वामक औषधि देकर **वमन कराना चाहिये**।

(४) **कोष्ठ शुद्धि** के लिये एरण्ड तैल अथवा मैगनेशियम सल्फेट का सन्तृप्त घोल (Saturated solution of Magnesium Sulphte) देना चाहिये।

(५) **पीड़ा** कम करने के लिये मार्फिया का इन्जेक्शन लगाना चाहिये।

(६) **हृदयावसाद** रोकने के लिये उत्तेजक औषधियाँ जैसे स्ट्रिकनीन (Strychnine) आदि देना चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप

(१) मुँह और चेहरे का रङ्ग श्वेत हो जाता है।

(२) आमाशय की [illegible]क कला कृष्ण वर्ण की होती है।

(३) आमा[illegible] यह गहरे भूरे रङ्ग का द्रव होता है जिसमें श्लेष्मा [illegible] अंश होता है।

(४) आमाशय की भित्ति शोथयुक्त होती है और वह लाल पड़ जाती है। आमाशय में प्रायः छिद्र नहीं होते।

(५) फुफ्फुसों में प्रायः रक्ताधिक्य होता है।

(६) मस्तिष्क में भी रक्ताधिक्य (congestion) हो सकता है।

(७) शरीर के अन्य अङ्गो में भी थोड़ा बहुत रक्ताधिक्य पाया जाता है।

(२) अंगारिकाम्ल (Carbolic acid)

परिचय

शुद्ध अङ्गारिकाम्ल वर्णरहित, सूचिका-सदृश स्फटिक होता है किन्तु प्रकाश में रक्खा रहने पर इसका वर्ण गुलाबी हो जाता है और नम वायु में यह द्रवीभूत हो जाता है! इसमें एक विशेष प्रकार की गन्ध होती है और इसका स्वाद किञ्चित् मधुर और दाहकारक होता है। शीत जल में यह बहुत कम घुलनशील है किन्तु उबलते हुये जल, ईथर, क्लोरोफार्म, ग्लीसरीन, स्थायी तथा उड़नशील तैलों और ६० प्रतिशत के मद्य में पूर्णतया घुल जाता है।

लक्षण

(क) स्थानिक क्रियाः—

(१) मुँह, गला और आमाशय में तीव्र दाह उत्पन्न करता है।

(२) ओष्ठ और मुख का वर्ण श्वेत हो जाता है।

(३) मुँह, जिह्वा और अन्न-प्रणाली की श्लेष्मिक कला कड़ी और श्वेत वर्ण की हो जाती है।

(४) बोलने में कष्ट होता है।

(५) कभी कभी वमन भी होती है।

(६) प्रश्वास में विष की गन्ध निकलती है।

(७) श्वास-क्रिया मन्द और कष्ट के साथ होती है।

(८) मूत्र एलब्यूमिन (albumin) युक्त होता है। और थोड़ी देर रक्खा रहने पर गहरा हरित वर्ण का हो जाता [illegible]

(ख) सार्वाङ्गिक क्रियाः—

(१) आक्षेपण होते हैं। [illegible]

(२) हृदयावसाद—प्रारम्भ हो जाता है।

(३) त्वचा शीतल और स्वेद युक्त होती है।

(४) शरीर का तापक्रम साधारण (Normal) से कम हो जाता है।

(५) नाड़ी—तीव्र, क्रमहीन और दुर्बल हो जाती है।

(६) आँखों की पुतलियाँ संकुचित हो जाती हैं।

(७) रोगी मूर्छित होकर अंत में मृत्यु को प्राप्त होता है।

घातक मात्राः—२४० बूँद।

घातक कालः—१ से ४ घंटे। कम से कम १० मिनट।

चिकित्सा

(१) मैगनेसियम सल्फेट ½ औंस (१¼ तोला)
सोडियम सल्फेट ½ औंस (१¼ तोला)
शुद्ध जल २० औंस (१० छिटाँक)

सबको मिलाकर—इससे सावधानी के साथ आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये जब तक कि आमाशय से निकलने वाले द्रव में विष की गंध रहे।

(२) हृदय को उत्तेजित करने के लिये स्ट्रिकनीन का इन्जेक्शन देना चाहिये।

(३) नवनीत, घृत, दुग्ध, अंडे की सफेदी, बादाम अथवा जैतून के तैल आदि स्निग्ध औषधियाँ देनी चाहिये।

(४) शरीर के ताप की रक्षा के लिये उष्णोदक से भरी बोतलों से उष्णता पहुँचानी चाहिये।

(५) आवश्यकतानुसार ओषजन-व्यवस्था और कृत्रिम श्वास क्रिया करनी चाहिये।

(६) हृदयावसाद रोकने के लिये लवणोदक (Saline solution) का शिरा में इन्जेक्शन देना चाहिये।

[illegible]त्यूत्तर रूप

(क) बाह्यः—[illegible]

[illegible] अथवा कपिल वर्ण के दाग़ पड़ जाते हैं।

(ख) आभ्यन्तरिकः—

(१) मुख, जिह्वा, गला और अन्नप्रणाली की श्लैष्मिक कला में शोथ होता है। इनका रंग बदल जाता है। और ये प्रायः श्वेत अथवा कपिल-श्वेत वर्ण की हो जाती हैं।

(२) आमाशय में रक्त वर्ण का द्रव पाया जा सकता है जिसमें कि कार्बोलिक ऐसिड की गंध होगी और इस द्रव पदार्थ में श्लेष्मा और श्लैष्मिक कला के टुकड़े मिले हुये हो सकते हैं।

(३) आमाशय की श्लैष्मिक कला शोथयुक्त और कठिन होगी। उसका वर्ण कपिल अथवा कपिल-श्वेत होगा। कभी कभी यह कला गलकर पृथक हो जाती है और तब उसके नीचे की धातुयें दिखलाई पड़ने लगती हैं। इन धातुओं में भी तीव्र शोथ पाया जायेगा।

(४) आमाशय से लेकर अन्त्र तक क्षोभ के चिह्न पाये जा सकते हैं।

(५) प्रायः आमाशय में छिद्र नहीं होते।

(६) वृक्कों का आकार बढ़ जाता है और उनमें रक्ताधिक्य होता है। रक्तस्राव जन्य वृक्कशोथ की अवस्था भी पायी जा सकती है।

(७) उदर के सभी अंगों में थोड़ा बहुत रक्ताधिक्य होता है।

(८) फुफ्फुसों में भी रक्ताधिक्य होता है।

(९) प्रायः मस्तिष्क और उसकी कलाओं में भी रक्ताधिक्य पाया जाता है।

क्षार (Alkalies)

परिचय

इसमें **कास्टिक सोडा** (Caustic soda), **कास्टिक पोटाश** (Caustic potash), **अमोनिया** (Ammonia) आदि सम्मिलित हैं।

लक्षण

(१) मुँह में कषैला स्वाद मालूम होता है।

(२) मुँह, गला और आमाशय में दाहयु[illegible]मा का अनुभव होता है।

(३) कभी कभी वमन होती है जिसका ऐसे[illegible] होता है। वमन में रक्त और उघड़े हुये श्लैष्मिक कला[illegible]

(४) विरेचन होता है।

(५) उदर प्रदेश में तीव्र शूल एवम् पीड़ा होती है।

(६) नाड़ी दुर्बल हो जाती है।

(७) मुंह से आमाशय तक की श्लेष्मिक कला रक्त वर्ण की और शोथ युक्त होती है।

घातक मात्राः—

कास्टिक सोडा—४ ड्राम (१$\frac{1}{4}$ तो०)
कास्टिक पोटाश—४ ड्राम (१$\frac{1}{4}$ तो०)
लाइकर अमोनिया—१ ड्राम (६० बूँद)
अमोनिया कार्ब—२ ड्राम (७$\frac{1}{2}$ माशे)

घातक कालः—२४ घंटे।

चिकित्सा

(१) आमाशय प्रक्षालन—वर्जित है।

(२) वामक औषधियाँ—वर्जित हैं।

(३) सिरका, नींबू का रस, हल्का एसिटिकाम्ल (Dilute acetic acid), हल्का साइट्रिकाम्ल (Dilute citric acid)—इनमें से किसी को जल के साथ मिलाकर पिलाना चाहिये। इससे क्षार निष्क्रिय हो जाता है।

(४) नवनीत, घृत, दुग्ध, तैल (जैतून आदि के), अण्डे की सफ़ेदी आदि स्निग्ध औषधियों को पिलाना चाहिये।

(५) यदि पीड़ा अधिक हो तो मार्फिया का इन्जेक्शन लगाना चाहिये।

(६) उत्तेजना के लिये स्ट्रिकनीन आदि के इन्जेक्शन लगाना चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप

(१) मुख और उसके आसपास दाह के चिन्ह पाये जाते हैं।

(२) मुख, गला, अन्नप्रणाली और आमाशय की श्लैष्मिक कला मृदु, शोथयुक्त और फूली हुई हो[illegible]। इनका वर्ण गहरा भूरा अथवा कृष्ण होता है।

(३) स्वर[illegible]ा, वायु प्रणालियों, और फुफ्फुस की श्लेष्मिक [illegible]्य पाया जायेगा।

सातवाँ अध्याय

फासफोरस (Phosphorus)

परिचय

यह दो प्रकार का होता है—(१) पीत और (२) रक्त।

(१) पीत फासफोरसः—यह मोम की तरह अल्पपारदर्शक शलाकाओं के रूप में होता है। जल में अविलेय तथा ईथर, मद्य, वसायुक्त और ईथर युक्त तैलों में किंचित घुलनशील एवम् कार्बन बाई सल्फाइड (Carbon Bisulphide) में शीघ्र घुल जाता है। वायु में खुला छोड़ देने पर शनैः शनैः इसका आक्सीकरण (Oxidation) होने लगता है और इसमें से श्वेत धूम्र निकलता है जिसमें लहसुन की सी गंध होती है और अन्धेरे में इससे प्रकाश निकलता है। ३४०° से० पर यह जलने लगता है और इसमें से श्वेत धूम्र निकलता है। इसे सदैव जल में डालकर सुरक्षित करते हैं क्योंकि जल से बाहर रहने पर इसका आक्सीकरण सरलता के साथ होता रहता है। पीत फासफोरस बहुत विषैला होता है और चूहों तथा अन्य पशुओं को मारने के लिये लेह बनाने के काम में प्रयोग किया जाता है। इस लेह में तैल, आटा, शर्करा इत्यादि मिलाया जाता है और इसमें ३ से ४ प्रतिशत तक फासफोरस होता है।

(२) रक्त फासफोरसः—यह रक्त-कपिल वर्ण के बेरवेदार चूर्ण के रूप में पाया जाता है। पीत फासफोरस को आक्सीजन के अभाव में २४०° से० से २५०° से० तक गरम करके रक्त फासफोरस बनाया जाता है। इसमें न तो कोई गंध होती है और न स्वाद ही। इससे अन्धेरे में कोई प्रकाश नहीं निकलता। यह विषैला भी नहीं होता। यह कार्बन बाई सल्फाइड में अविलेय है। साधारण तापक्रम पर इसका आक्सीकरण नहीं होता [illegible] जल में सुरक्षित रखने की कोई अवश्यकता नहीं पड़ती। दियासलाई [illegible] matches) के बनाने में इसका व्यवहार होता है।

लक्षण

इसकी तीन अवस्थायें होती हैं।

(क) **प्रथमावस्थाः—**

(१) गला, अन्नप्रणाली और आमाशय से दाहयुक्त पीड़ा होने लगती है।

(२) मुँह में लहसुन की तरह स्वाद मालूम होता है।

(३) प्रश्वास से लहसुन की तरह गंध निकलती है।

(४) जी मचलाने लगता है।

(५) वमन होती है जिसमें फासफोरस की तरह गंध रहती है और वमन किया हुआ पदार्थ अंधेरे में चमकता है।

(६) कभी कभी विरेचन भी होता है और मल भी अंधेरे में चमकता है।

(७) त्वचा शीतल और स्वेदयुक्त होती है।

(८) शरीर का तापक्रम साधारण से कम हो जाता है।

प्रथमावस्था में रोगी की मृत्यु हो सकती है। किन्तु यदि रोगी बच जाता है, तो लक्षणों की तीव्रता कुछ कम हो जाती है और फिर द्वितीया वस्था के लक्षण प्रारम्भ हो जाते हैं।

(ख) **द्वितीयावस्थाः—**

इसमें रोगी की दशा सुधरते लगती है।

(१) पीड़ा कम हो जाती है।

(२) वमन भी कम होती है।

(३) विरेचन या तो बंद हो जाता है या फिर बहुत कम हो जाता है।

(ग) **तृतीयावस्थाः—**

इस अवस्था में पुनः सभी लक्षण तीव्र रूप में प्रगट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित परिवर्तन पाये जाते हैं:—

(१) कामला उत्पन्न हो जाता है।

(२) यकृत का [illegible] जाता है।

(३) शरी[illegible]ओं की श्लैष्मिक कला और त्वचा के नीचे रक्त[illegible]

(४) मूत्र का रंग गहरा हो जाता है और मात्रा में कम होता है।

(५) वमन और विरेचन पहले की अपेक्षा तीव्र हों जाते हैं और उनके साथ रक्त भी निकलता है।

(६) नाड़ी दुर्बल और तीव्र गति से चलने लगती है।

(७) शरीर का तापक्रम पहले बढ़ जाता है और बाद में साधारण से भी कम हो जाता है।

(८) अन्त में हृदयावसाद होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

घातक मात्राः—

१ से २ ग्रेन तक (½ से १ रत्ती तक)

बच्चों में—½ रत्ती।

घातक कालः—

२ से ८ दिन तक।

कम से कम ½ घंटा।

चिकित्सा

(१) सर्व प्रथम वमन कराना चाहिये, एतदर्थ १½ रत्ती की मात्रा में तुत्थ को थोड़े से जल में घोलकर १० या १५ मिनट के अन्तर पर बराबर देते रहना चाहिये।

(२) तदनन्तर आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये। एतदर्थ पोटाशियम परमैंगनेट का ½ प्रतिशत का घोल प्रयोग करना चाहिये और प्रक्षालन कर चुकने के बाद कुछ द्रव आमाशय में ही छोड़ देना चाहिये।

(३) तैल, वसा वा अन्य वसायुक्त पदार्थ जैसे दुग्ध, घृत, नवनीतादि नहीं देना चाहिये क्योंकि इनमें फासफोरस घुलकर शरीर के संस्थानों में शोषित हो जाता है।

(४) यदि पीड़ा अधिक हो तो मार्फिया का इन्जेक्शन लगाना चाहिये।

मृत्यूत्तर स[illegible]

(१) आमाशय से लेकर अन्त्र तक [illegible] में रक्ताधिक्य होगा। प्रायः इनमें क्षोभ, शोथ, मृदुता और [illegible] हैं।

(२) आमाशय और उसमें रहने वाले पदार्थों में फासफोरस की तरह गन्ध होगी।

(३) समस्त बाह्य और आभ्यन्तरिक अङ्गों में पीलापन होगा।

(४) यकृत बढ़ा हुआ होता है और उसमें वसागलन होने लगता है। यकृत का रंग पीला होता है। यकृत की धातु (Tissue) मृदु हो जाती है और उसमें अंगुली से दबाव डालने पर अंगुली यकृत में घुस जाती है।

(५) हृदय और वृक्कों में भी वसागलन होंने लगता है।

(६) त्वचा और श्लेष्मिक कलाओं के नीचे तथा शारीरिक गुहाओं में रक्तस्राव पाया जायेगा।

आठवाँ अध्याय

फेनाश्म (Arsenic)

परिचय

यह एक ऐसी वस्तु है जिसको कि पाश्चात्य प्रणाली के चिकित्सक, वैद्य और हकीम सभी प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त चूहों वा अन्य जन्तुओं को मारने के लिये भी इसका बहुत प्रयोग होता है। इसके बहुत से यौगिक हैं जिनका यहाँ पर वर्णन करना आवश्यक है।

फेनाश्म के विभिन्न यौगिक

(१) आर्सिनियस आक्साइड

इसका सूत्र $As_4 O_6$ है। इसे आर्सिनियस ऐसिड, श्वेत संखिया वा फेनाश्म भी कहते हैं। यह बेरवेदार अथवा स्फटिक के रूप में पाया जाता है। फेनाश्म के स्फटिक वर्णरहित और पारदर्शक होते हैं जो कुछ समय तक खुला रखने पर श्वेत वर्ण के और अपारदर्शक हो जाते हैं। इसमें किसी प्रकार का स्वाद अथवा गंध नहीं होती। [illegible] में अविलेय होता है। इसका विशिष्ट घनत्व ३·६८६ होता है [illegible] लीसरीन में किंचित घुलनशील है। इसके अति[illegible] घुल जाता है। यह कृत्रिम पुष्पों और दीवार

के कागज़ों के बनाने में तथा चित्रों के रंगने आदि के लिये अधिक प्रयोग किया जाता है। पतंग के कागज़ बनाने में भी इसका प्रयोग किया जाता है। चूहों तथा अन्य पशुओं को मारने के लिये जो चूर्ण और लेह बनाये जाते हैं, उनमें भी इसको डालते हैं।

(२) पोटाशियम आर्सेनाइट और सोडियम आर्सेनाइट

($K_3 A_5 O_3$) ($Na_3 A_5 O_3$)
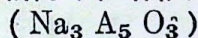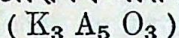
ये दोनों विषैले होते हैं। और पतंग के कागज़ आदि के बनाने में प्रयोग किये जाते हैं। औषधि के रूप में भी इसका प्रयोग किया जाता है। इससे ब्रिटिश फार्मेकोपिया की लाइकर आर्सेनीकेलिस (Liquor Arsenicalis) निर्माण की जाती है।

(३) कापर आर्सेनाइट ($Cu H As O_3$)

यह कृत्रिम पुष्पों, दीवार के कागजों, वस्त्रों, खिलौने और मिठाइयों को रंजित करने के लिये प्रयोग किया जाता है। यह जल में अविलेय है।

(४) आर्सेनिक ऐसिड ($H_3 As O_4$)

यह आर्सिनियस ऐसिड की अपेक्षा कम विषैला होता है और रंग तथा पतंग के कागज़ के बनाने में प्रयोग किया जाता है।

(५) सोडियम आर्सेनेट और पोटाशियम आर्सेनेट

($Na_3 As O_4$) ($K_3 As O_4$)
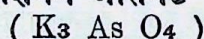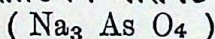
ये परहत्या और पशुहत्या के लिये प्रयोग किये जाते हैं।

(६) आर्सेनिक सल्फाइड्स

इसमें हरिताल (Yellow Arsenic, $As_2 S_3$) और मैनसिल (Red Arsenic, $As_2 S_2$) सम्मिलित हैं। ये दोनों खानों से निकाले जाते हैं और कृत्रिम रूप से भी बनाये जाते हैं। वैद्य लोग इसको रक्तविकृति वा त्वचा आदि के रोगों में अधिक प्रयोग करते हैं।

(७) आर्सेनिक ट्राइ क्लो[illegible] ($As Cl_3$)

यह वर्णरहित अति विषैला द्रव पदार्थ [illegible] में अर्बुद की चिकित्सा के लिये प्रयुक्त होता है।

(८) आर्सीनियस आयोडाइड (AsI_3)

यह संखिया और आयोडीन के मिश्रण को गरम करके बनाया जाता है। यह नारंगी रंग के स्फटिक के रूप में होता है। त्वचा के रोगों में १/३२ से १/८ रत्ती की मात्रा में प्रयोग किया जाता है। यह जल, मद्य, क्लोरोफार्म, ईथर और कार्बन बाई सल्फाइड में घुलनशील है।

फेनाश्म के ऐन्द्रिक यौगिक

(१) **काकोडाइलिक ऐसिड** (Cacodylic acid)
(२) **एटोक्सिल** (Atoxyl)
(३) **सालवरसन** (Salvarsan)
(४) **निओसालवरसन** (Neosalvarsan)
(५) **सिल्वर सालवरसन** (Silver Salvarsan)
(६) **सल्फार्सफीनामीना** (Sulpharsphenamina)

लक्षण

(१) संखिया खाने के कुछ काल बाद जी मचलाने लगता है।

(२) गला और आमाशय में तीव्र दाह युक्त पीड़ा होती है।

(३) वमन होने लगती है। पहले आहारादि आमाशयिक पदार्थ निकलते हैं और फिर रक्त एवम् श्लेष्मा निकलती है।

(४) प्यास बहुत लगती है।

(५) विरेचन होते हैं जिनमें किञ्चित रक्त भी मिला हुआ होता है।

(६) गुदा में क्षोभ और दाह युक्त पीड़ा होती है।

(७) पैरों में ऐठन होती है।

(८) मूत्रावरोध अथवा मूत्राल्पता की अवस्था होती है।

(९) हृदयावसाद प्रारम्भ हो जाता है।

(१०) नाड़ी दुर्बल होती है।

(११) शरीर का [illegible] साधारण से कम होता है।

(१२) [illegible] स्वेदयुक्त होती है।

जीर्ण विष लक्षण

(१) जी मचलाता हैं।

(२) वमन होती है।

(३) अग्निमान्द्य और अजीर्ण हो जाता है।

(४) रोगी को विबन्ध होता है।

(५) त्वचा पर कपिल वर्ण के चकत्ते पड़ जाते हैं।

(६) नेत्रवर्त्म-प्रदाह उत्पन्न हो जाता है।

(७) स्वरभेद होता है।

(८) आँख, नाक और स्वरयन्त्र की श्लेष्मिक कला में क्षोभ होता है।

(९) खाँसी आती है और खाँसने पर जो श्लेष्मा निकलती है, उसमें किञ्चित् रक्त मिला रहता है।

(१०) सन्धियों में पीड़ा और शोथ होता है।

(११) पेशियों में ऐंठन होती हैं।

(१२) पक्षाघात हो जाता है।

(१३) हृद-दौर्बल्य होने के बाद रोगी की मृत्यु हो जाती है।

घातक मात्रा:—३ ग्रेन (१½ रत्ती)

घातक काल:—१२ से २४ घण्टे तक।

सापेक्ष्य निदान

फेनाश्म विष	विशूचिका
(१) इसमें एक, दो या इससे कुछ अधिक व्यक्ति अर्थात् जिन जिन व्यक्तियों को विष दिया गया होगा, विप से आक्रान्त होंगे।	(१) प्रायः महामारी के रूप में किसी नगर, गाँव या बस्ती में विशूचिका का प्रसार होता है और बहुत से लोग विशूचिका ग्रस्त मिलेंगे।
(२) रोगी को पहले वमन होती है और बाद में दस्त आते हैं।	(२ [illegible] को पहले दस्त आते हैं और [illegible] होती है।

फेनाश्म विष	विशूचिका
(३) वमन रक्तमिश्रित होती है और उसमें श्लेष्मा तथा पित्त का कुछ अंश पाया जाता है।	(३) वमन किया हुआ पदार्थ पानी की तरह पतला होता है और उसमें श्लेष्मा, पित्त या रक्त नहीं होता।
(४) पहले रोगी के गले में पीड़ा होती है और बाद में वमन होती है।	(४) प्रायः गले में पीड़ा नहीं होती, यदि होती भी है तो वमन होने के बाद में।
(५) रोगी को पानी की तरह पतले दस्त आते हैं जिसमें रक्त और पित्त का कुछ अंश उपस्थित होता है। दस्त के समय रोगी को उदर-शूल वा गुद-संक्षोभ होता है।	(५) सदैव चावल के मण्ड की भाँति ही दस्त आते हैं। इसमें पित्त वा रक्त अनुपस्थित होता है किन्तु कभी २ रक्त आता भी है।
(६) रोगी के कण्ठ-स्वर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।	(६) रोगी का कण्ठ-स्वर प्रायः भारी हो जाता है।
(७) वमन और दस्त किये हुये पदार्थों का विश्लेषण करने पर उसमें फेनाश्म का कुछ अंश पाया जाता है।	(७) दस्त किये हुये पदार्थ का सूक्ष्म दर्शक यंत्र द्वारा परीक्षण करने पर या उनकी 'जीवाणु-सम्वर्धन-क्रिया' (Culture) करने पर उसमें विशूचिका के जीवाणु (Coma Bacilli) पाये जाते हैं।

चिकित्सा

(१) सर्व प्रथम वमन कराना चाहिये एतदर्थ जिंक सल्फेट (Zinc Sulphate), राई, ए[illegible]ve [illegible] Apomorphine) का इन्जेक्शन—इनमें से किसी [illegible] ता है।

(२) यदि रोगी ने आहारादि न खाया हो तो आमाशय का प्रक्षालन भी किया जा सकता है।

(३) प्रतिविष के रूप में हाइड्रेटेड फेरिक आक्साइड (Hydrated Ferric oxide) ४ ड्राम (१¾तो०) की मात्रा में १०-१५ मिनट के अन्तर से दिया जाता है। अथवा डायलाइज्ड आयरन (Dialysed Iron) का प्रयोग किया जा सकता है।

Hydrated Ferric Oxide Solution:--

Tinct Ferri Perchloride OZ 3
(टिंचर फेरी पर क्लोराइड) (१½ छ्रि०)
Soda Bicarb OZ 1
(सोडा बाई कार्ब (½ छ्रि०)
Aqua (जल) (५½ छ्रि०) OZ11

(४) अन्त्र शुद्धि के लिये एरण्ड तैल पिलाना चाहिये।

(५) अण्डे की सफ़ेदी, दूध इत्यादि स्निग्ध औषधियाँ देनी चाहियें।

(६) शरीर के ताप की रक्षा के लिये उष्णोदक से भरी बोतलों का प्रयोग करना चाहिये।

(७) यदि पीड़ा अधिक हो, तो मार्फिया का इन्जेक्शन लगा देना चाहिये।

(८) शरीर में उत्तेजना पहुँचाने के लिये स्ट्रिक्नीन का इन्जेक्शन दिया जा सकता है।

मृत्यूत्तर रूप

(१) हृदय में जमा हुआ रक्त मिलेगा।

(२) आमाशय की श्लेष्मिक कला रक्त वर्ण की होगी और कला के नीचे रक्त स्राव पाया जायेगा।

(३) आमाशय की भित्ति में फेनाश्म के कण चिपटे हुये मिलेंगे (यदि वह चूर्ण या ढेले के रूप में खाई गई है।)

(४) कभी कभी आमाशय में छिद्र हो जाते हैं।

(५) अन्त्र की श्लेष्मिक कला शोथयुक्त हो[illegible]उसके नीचे रक्त-स्राव पाया जायेगा।

(६) मलाशय की श्लेष्मिक कला में तीव्र शोथ हो सकता है।

(७) प्रायः फुफ्फुस, यकृत, प्लीहा और वृक्कों में थोड़ा बहुत रक्ताधिक्य पाया जाता है।

नीलाञ्जन (Antimony)

अञ्जन के निम्नलिखित यौगिक होते हैं:—

(१) एन्टीमनी टार्टरैटम (Antimony tartaratum):—

इसे पोटाशियम एन्टीमनी टार्टरेट (Potassium antimony tartarate) भी कहते हैं। यह वर्णरहित पारदर्शक स्फटिक अथवा श्वेत चूर्ण के रूप में पाया जाता है। इसमें लगभग ३५ प्रतिशत धात्वीय अञ्जन (Sb) होता है। इसका स्वाद किंचित आम्लिक और धातु का सा होता है। जल में घुलनशील है किन्तु मद्य में नहीं घुलता। स्वेदल गुण के लिये १/६४ से १/१६ रत्ती की मात्रा में और वामक गुण के लिये १/४ से १/२ रत्ती की मात्रा में प्रयोग किया जाता है। कभी कभी भूल से मैगनेशियम सल्फेट, सोडा बाई कार्ब और टार्टरिक ऐसिड के स्थान में इसे प्रयोग करते हुये देखा गया है। पशु-चिकित्सा में भी इसका प्रयोग होता है।

(२) एन्टीमोनियस आक्साइड (Antimonious oxide) अथवा **एन्टीमनी ट्राई आक्साइड** (Antimony trioxide, $Sb_2 O_3$):—

यह कपिल श्वेत चूर्ण के रूप में पाया जाता है। इसमें किसी प्रकार की गन्ध अथवा स्वाद नहीं होता। औषधि के रूप में १/२ से १ रत्ती की मात्रा में प्रयोग किया जाता है। यह जल में प्रायः अनघुन और लवणाम्ल (HCl) में घुलनशील है।

(३) एन्टीमनी ट्राइ क्लोराइड (Antimony trichloride, $Sb Cl_3$):—यह एक वर्णरहित द्रवित हो जाने वाला स्फटिकीय पदार्थ है। ७४° से० पर यह तेल की तरह पीत वर्ण का द्रव हो जाता है। खाने पर यह एक तीव्र दाहक की भांति कार्य करता है वा अञ्जन विष के अन्य लक्षण उत्पन्न करता है।

[illegible] इ सल्फाइड (Antimony trisulphide,

$Sb_2 S_3$):—यह बाजार में काला सुरमा के नाम से मिलता है। इसमें अशुद्धि के रूप में किंचित संखिया पाया जाता है।

(५) **एन्टीमनी हाइड्राइड या स्टिबिन** (Antimony hydride or Stabin, $Sb H_3$):—यह वर्णरहित विषैली गैस होती है।

व्यवहारायुर्वेद की दृष्टि से एन्टीमनी टार्टरैटम का विशेष महत्व है।

लक्षण

(१) मुँह में धात्वीय स्वाद मालूम होता है।

(२) जी मचलाने लगता है।

(३) वमन होने लगती है।

(४) आमाशय में दाहयुक्त पीड़ा होती है।

(५) विरेचन होता है।

(६) नाड़ी मन्द हो जाती है।

(७) त्वचा शीतल और स्वेद युक्त होती है।

(८) श्वास क्रिया में कठिनता और पीड़ा होती है।

(९) मूर्छा उत्पन्न हो जाती है।

(१०) हृदयावसाद होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

घातक मात्राः—५ से १० रत्ती तक।

घातक कालः—१० से ६० घंटे तक।

चिकित्सा

(१) यदि वमन न होती हो तो वामक औषधियों से वमन कराना चाहिये।

(२) प्रतिविष के रूप में टैनिकाम्ल (Tannic acid) १५ से ३० रत्ती की मात्रा में देना चाहिये। एतदर्थ गैलिकाम्ल (Gallic acid), प्रबल चाय (Strong tea) अथवा 'काफी' (Coffee) भी प्रयोग की जा सकती है।

(३) दूध, अंडे की सफ़ेदी, जैतून का तेल इत्यादि स्निग्ध औषधियाँ देनी चाहियें।

(४) यदि पीड़ा अधिक हो तो मार्फिया का इन्जे[illegible]ता है।

(५) उत्तेजक औषधियाँ देनी चाहियें। एतदर्थ स्ट्रिक्नीन का इन्जेक्शन लगाया जा सकता है।

मृत्यूत्तर रूप

(१) आमाशय और पक्वाशय की श्लेष्मिक कलाओं में रक्तिमा और शोथ पाये जाते हैं। कलाओं के नीचे रक्तस्राव भी पाया जा सकता है

(२) आमाशय में व्रण मिल सकते हैं अथवा वह शोथयुक्त हो सकता है।

(३) प्रायः मलाशय में छोटे छोटे व्रण पाये जाते हैं।

(४) यकृत, प्लीहा, वृक्क और मस्तिष्क की श्लेष्मिक कलाओं में प्रायः रक्ताधिक्य होता है।

पारद (Mercury)

पर्यायः—

रसेन्द्रः पारदः सूतः सूतराजश्च सूतकः।
शिवतेजो रसः सप्त नामान्येवं रसस्य तु॥

(रसेन्द्र सार संग्रह)

अर्थात् रसेन्द्र, पारद, सूत, सूतराज, सूतक, शिवतेजो और रस–ये सात नाम पारे के हैं।

परिचय

यह एक धातु है जो कि द्रवरूप में प्राप्त होता है। पारद का स्वरूप पिघली हुई चाँदी की तरह होता है। इसका वर्ण श्वेत और विशिष्ट घनत्व १३·५६ होता है। यह —३९° से० पर जमता और ३५६° से० पर उबलता है। स्वतन्त्र रूप में पारद बहुत कम मात्रा में प्रकृति में पाया जाता है। साधारणतया हिंगुल से पारद प्राप्त किया जाता है। इसका वाष्प बहुत विषैला होता है। अतः पारद के कारखानों में काम करने वाले व्यक्तियों में पारद के जीर्ण विष के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। पारद के निम्नलिखित लवण होते हैं:—

(१) **मरक्यूरिक क्लोराइड** (Mercuric chloride, $Hg\ Cl_2$) **पर्यायः**—Corrosive sublimate, Perchloride, of mercury और [illegible]।

यह श्वेत वर्ण के स्फटिकीय ढेर के रूप में होता है। यह जल, ग्लीसरीन, मद्य और ईथर में घुलनशील होता है। गरम करने पर यह पिघलकर वर्णरहित तरल के रूप में हो जाता है और फिर इसमें से श्वेत वर्ण का धूम निकलने लगता है और इस प्रकार से सारा रसकपूर धूम में परिणित होकर उड़ जाता है। यह बहुत ही विषैली वस्तु है। $\frac{१}{६४}$ से $\frac{१}{३२}$ रत्ती की मात्रा में उपदंश के लिये विशेष रूप से प्रयोग की जाती है। अधिक मात्रा में विष का कार्य करती है।

(२) **मरक्यूरस क्लोराइड** (Mercurous chloride, Hg Cl)

इसे कैलोमेल (Calomel), सब क्लोराइड आफ मर्करी (Subchloride of mercury), रसपुष्प अथवा हीरकद्युति भी कहते हैं। यह धुँधला श्वेत वर्ण का स्वादहीन चूर्ण होता है। जल, मद्य अथवा ईथर में अविलेय होता है। गरम करने पर बिना पिघले ही यह उद्धनित (Sublime) हो जाता है। यह रेचक औषधि के रूप में $\frac{१}{४}$ से १$\frac{१}{२}$ रत्ती तक की मात्रा में प्रयोग किया जाता है।

(३) **यलो मरक्यूरिक आक्साइड** (Yellow Mercuric oxide or HgO):—यह पीत वर्ण का चूर्ण होता है। जल में अविलेय होता है। इसे मलहमों के विभिन्न योगों में डालते हैं।

(४) **रेड मरक्यूरिक आयोडाइड** (Red Mercuric iodide, $Hg\ I_2$):-यह सिन्दूर की तरह रक्त वर्ण का चूर्ण होता है और जल में प्रायः अविलेय होता है। चिकित्सा में $\frac{१}{६४}$ से $\frac{१}{३२}$ रत्ती की मात्रा में प्रयुक्त होता है।

(५) **ओलियेटेड मर्करी** (Oleated mercury):—यह किंचित पीत वर्ण का चिकना पदार्थ होता है। इसे मलहम बनाने में प्रयोग करते हैं।

(६) **अमोनियेटेड मर्करी** (Ammoniated Mercury, $NH_2\ Hg\ Cl$):—यह श्वेत वर्ण का गंधरहित चूर्ण होता है और जल, मद्य तथा ईथर में अविलेय होता है।

(७) **मरक्यूरिक आक्सीसाइनाइड** (Mercuric oxycyanide):—यह श्वेत वर्ण का स्फटिकीय चूर्ण होता है। जल में करीब करीब घुल जाता है।

पारद के अन्य लवण

(८) मरक्यूरस आक्साइड (Mercurous Oxide, $Hg_2 O$)
(९) मरक्यूरस नाइट्रेट [Mercurous Nitrate, $Hg_2(NO_3)_2$]
(१०) मरक्यूरस सल्फेट (Mercurous Sulphate, $Hg_2 SO_4$)
(११) मरक्यूरिक नाइट्रेट [Mercuric Nitrate, $Hg(NO_3)_2$]
(१२) मरक्यूरिक सल्फाइड (Mercuric Sulphide, $Hg S$)
इसमें हिंगुल और रस सिंदूर दोनों सम्मिलित हैं।
(१३) मरक्यूरिक सल्फेट (Mercuric Sulphate, $Hg SO_4$)

लक्षण

(१) मुँह में धात्वीय स्वाद मालूम होता है।
(२) मुँह, गला और आमाशय में दाहयुक्त पीड़ा होती है।
(३) स्वरभेद हो जाता है।
(४) श्वास-क्रिया में कठिनता होती है।
(५) जी मचलाने लगता है।
(६) वमन होने लगती है जिसमें रक्त और श्लैष्मिक कला के टुकड़े मिले रहते हैं।
(७) किंचित रक्तमिश्रित विरेचन होते हैं।
(८) मुँह, जिह्वा और फेरिंक्स (Pharynx) की श्लैष्मिक कला शोथ-युक्त हो जाती है और उनका वर्ण श्वेत हो जाता है।
(९) उदर प्रदेश में पीड़ा होती है।
(१०) मूत्र कम होता है और इसमें किंचित् रक्त और एल्ब्युमिन मिली रहती है।
(११) नाड़ी तीव्र, क्रमहीन और दुर्बल हो जाती है।
(१२) शरीर का तापक्रम साधारण से कम हो जाता है।
(१३) मूर्छा उत्पन्न हो जाती है।
(१४) हृदयावसाद की अवस्था होती है।
[illegible] कभी कभी प्रलाप और आक्षेपण होते हैं और फिर मृत्यु हो जाती है

पारद का जीर्ण विष

कारण

पारद के वाष्पीय वातावरण में अधिक समय तक रहने से जीर्ण विष के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

लक्षण

(१) मुँह में सदैव एक प्रकार का अप्रिय धात्वीय स्वाद बना रहता है।
(२) मसूढ़े शोथयुक्त हो जाते हैं और उनका वर्ण लाल होता है।
(३) दाँत ढीले हो जाते हैं।
(४) जी मचलाने लगता है।
(५) वमन होती है।
(६) विरेचन होने लगते हैं।
(७) मसूढ़ों पर नीली रेखा पड़ जाती है।
(८) मुँह, हाथ, पैर आदि की पेशियों में कम्पन होने लगता है।
(६) समस्त शरीर दुर्बल हो जाता है।
(१०) मुँह से हर समय लालास्राव होता है।
(११) उदर में शूल और पीड़ा होती है।
(१२) लाला ग्रंथियाँ शोथ युक्त होती हैं।

घातक मात्राः—

रस कर्पूर—३ से ५ ग्रेन तक (१½ से २½ रत्ती तक)
मरक्यूरिक आक्सीसायनाइड—१० रत्ती।

घातक कालः—

१ से ५ दिन तक।
कम से कम ½ घंटा।

चिकित्सा

(१) सर्व प्रथम अण्डे की सफेदी, दूध इत्यादि एलल्यूमिन युक्त पदार्थों को रोगी को पिलाना चाहिये।

(२) फिर प्रक्षालन नलिका से तुरन्त आमाशय का प्रक्षालन कर देना चाहिये।

(३) जौ का पानी अथवा आटे को जल में घोलकर पिलाना चाहिये।

(४) शरीर के ताप की रक्षा के लिये उष्णोदक से भरी बोतलों का प्रयोग करना चाहिये।

(५) हृदयावसाद की अवस्था में स्ट्रिकनीन आदि के इन्जेक्शन देना चाहिये।

(६) यदि पीड़ा अधिक हो तो मार्फिया का इन्जेक्शन लगाना चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप

(१) मुख और गले की श्लेष्मिक कलायें धुँधली श्वेत अथवा कपिल वर्ण की और कड़ी होती हैं।

(२) आमाशय की श्लेष्मिक कला स्लेटी भूरे रंग की और कड़ी होती है। कभी कभी इसका रंग काला हो जाता है।

(३) आमाशय में प्रायः गाढ़े-चिपचिपे, भूरे-काले रंग का तरल पदार्थ पाया जाता है।

(४) यदि रोगी विषाक्त होने के कुछ दिन बाद मरे तो आमाशय की श्लेष्मिक कला पृथक हो जाती है और कला के नीचे की धातुओं में व्रण पाये जाते हैं। कभी कभी आमाशय में छिद्र भी हो जाते हैं।

(५) मलाशय की श्लेष्लिक-कला रक्त वर्ण की और शोथयुक्त होती है

(६) वृक्कों का आकार बढ़ जाता है और उनमें रक्ताधिक्य हो जाता। है तथा रक्तस्राव मिलता है।

नाग (Lead)

पर्यायः—सीसं ब्रध्नं च वप्रं च योगेष्टं नागनामकम्।

(भाव प्रकाश-धातुवर्ग)

अर्थात सीस, ब्रध्न, वप्र, योगेष्ट और सांप के जितने नाम हैं, वे सब सीसे के नाम हैं। इसे लेड (Lead) अथवा प्लम्बम (Plumbum) भी

परिचय

सीसा नील-कपिल वर्ण का एक अपारदर्शक, गन्धरहित, स्वादरहित, मृदु, ठोस पदार्थ है जिसमें एक प्रकार की धात्वीय चमक होती है। यह जल में अविलेय होता है। कागज़ पर रखकर घिसने से काला निशान बना देता है। ३३०° से० तक गरम करने पर पिघल कर तरलावस्था में हो जाता है और उसके ऊपर एक काले मैल 'लेड आक्साइड' (Lead oxide) की परत सी चढ़ जाती है। इसका विशिष्ट घनत्व ११·३ होता है। इसके भिन्न भिन्न लवण चित्र को रंगने, छापने इत्यादि के काम में प्रयोग किये जाते हैं। औषधि के रूप में नाग के निम्नलिखित लवण प्रयोग में लाये जाते हैः—

(१) प्लम्बाई एसोटास (Plumbi Acetas):—

यह श्वेत वर्ण का स्फटिकीय पदार्थ होता है। इसका स्वाद मधुर होता है और इसमें से सिरके की तरह गन्ध आती है। इसका १ भाग जल के २½ भाग और ६० प्रतिशत मद्य के ३० भाग में घुलनशील है। ¼ से १ रत्ती तक की मात्रा में प्रयोग किया जाता है। इससे सपोज़ीटोरियम प्लम्बाई कम्पाउन्ड (Suppositorium Plumbi Compound) नामक योग तैय्यार किया जाता है।

(२) लाइकर प्लम्बाई सबएसीटेटिस फोर्टिस (Liqr Plumbi Subacetatis Fortis):—

यह स्वच्छ, वर्णरहित, क्षारीय द्रव होता है। स्वाद मधुर और प्रतिक्रिया क्षारीय होती है। इसका विशिष्ट घनत्व १·२८ होता है। इससे लाइकर प्लम्बाई सब एसीटेटिस डाइल्यूटस (Liqr Plumbi Subacetatis dilutus) नामक योग बनाया जाता है।

(३) प्लम्बाई मानो आक्साइडम् (Plumbi Monoxidum):—

इसे लिथार्ज (Litharge), मृद्दारसङ्ग या मुर्दासङ्ग भी कहते हैं। यह पीला और ईंट की तरह लाल रंग का अथवा पीला और नारंगी की तरह लाल रंग का चूर्ण होता है। यह हल्के शोरकाम्ल और एसिटिकाम्ल में घु लजाता है और जल में प्रायः अनघुल रहता है। इससे ऐमप्लास्ट्रम प्लम्बाई (Emplastrum Plumbi), पिल्यूला प्लम्बाई कम ओपाई (Pilula Plumbi

Cum Opii), अन्जेएटम प्लम्बाई ओलिऐटिस (Ungentum Plumbi Oleatis), इत्यादि योग बनाये जाते हैं।

लक्षण

(१) मुँह में धात्वीय मधुर स्वाद मालूम होता है।
(२) गला शुष्क हो जाता है।
(३) प्यास बहुत लगती है।
(४) कभी कभी वमन होती है जिसमें रक्त मिला रहता है।
(५) विबन्ध हो जाता है।
(६) मूत्राल्पता उत्पन्न हो जाती है।
(७) त्वचा शीतल और स्वेद युक्त होती है।
(८) नाड़ी दुर्बल होती है।
(९) शिरोभ्रम हो जाता है।
(१०) फ्लक्ज़र (Flexor) पेशियों में ऐंठन होती है।
(११) अग्रबाहु प्रसारक (Extensor) पेशियों का पक्षाघात हो जाता है।
(१२) कभी कभी आक्षेपण होने लगते हैं और फिर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

नाग का जीर्ण विष

कारणः—

सीस के कारखानों में काम करने से और चित्रकारी आदि के कारण सीस के जीर्ण विष के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

लक्षण

(१) शिरः शूल होने लगता है।
(२) जी मचलाता है।
(३) वमन होती है।
(४) अग्निमान्द रहने लगता है।

(५) रोगी को अजीर्ण हो जाता है ।

(६) विबन्ध उत्पन्न हो जाता है ।

(७) मसूढ़ों पर नील वर्ण की रेखा पड़ जाती है ।

(८) उदर में तीव्र शूल और पीड़ा होती है ।

(९) रोगी को पाण्डु हो जाता है ।

(१०) सन्धियों में शूल होने लगता है ।

(११) अग्र बाहु की पेशियों का पक्षाघात हो जाता है । तदनन्तर शनैः शनैः अन्य पेशियों पर भी यही प्रभाव पड़ता हैं ।

(१२) रोगी में रक्तभाराधिक्य (High Blood Pressure) के लक्षण मिलते हैं ।

(१३) आक्षेपण होते हैं ।

(१४) प्रलाप की अवस्था होती है ।

(१५) अन्त में रोगी मूर्छित होकर मृत्यु को प्राप्त होता है ।

घातक मात्राः—लेड ऐसिटेट—१ औन्स (½ छिटाँक)

घातक कालः—२ से ५ दिन तक ।

चिकित्सा

(१) मैगनेशियम सल्फेट (Magnesium Sulphate) अथवा सोडियम सल्फेट (Sodium Sulphate) के घोल से आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये ।

(२) ज़िंक सल्फेट (Zinc Sulphate) को खिलाकर अथवा एपोमार्फीन (Apomorphine) का इन्जेक्शन लगाकर वमन कराना चाहिये ।

(३) दूध, जौ का पानी, अण्डे की सफेदी इत्यादि स्निग्ध औषधियाँ देनी चाहियें ।

(४) यदि पीड़ा अधिक हो, तो मार्फिया का इन्जेक्शन लगाना चाहिये ।

जीर्ण विष चिकित्सा

(१) रोगी को सीस के वाष्पादि के सम्पर्क से पूर्णतया प्रथक कर देना चाहिये ।

(२) मैगनेशियम अथवा सोडियम सल्फेट का संतृप्त घोल पिलाकर रोगी को विरेचन कराना चाहिये ।

(३) शुद्ध वायु और पौष्टिक आहारादि की व्यवस्था करनी चाहिये ।

मृत्यूत्तर रूप

(१) आमाशय और अन्त्र में शोथ होता है ।

(२) आमाशय और पक्वाशय की श्लेष्मिक कला मुलायम और मोटी होती है और उनमें व्रण होते हैं ।

यशद (Zinc)

पर्यायः—यशदं वंग सदृशं रीतिहेतुश्च तन्मतम् ।

(भावप्रकाश-धातु वर्ग)

अर्थात यशद, वङ्ग सदृश, रीतिहेतुक—ये जस्ता के नाम हैं । अङ्गरेजी में इसे ज़िङ्क (Zinc) कहते हैं ।

परिचय

यशद स्वतन्त्र रूप में प्रकृति में नहीं पाया जाता । खानों में यह केलेमाइन (Calamine), या ज़िंक कार्बोनेट (Zinc carbonate), ज़िन्काइट (Zincite) या ज़िंक आक्साइड (Zinc oxide) और ज़िंक सल्फाइड (Zinc sulphide) के रूप में पाया जाता है । **रसरत्नसमुच्चय** में इस सम्बन्ध में एक श्लोक दिया है:—

रसको द्विविधः प्रोक्तो दर्दुरः कारवेल्लकः ।
सदलो दर्दुरः प्रोक्तो निर्दलः कारवेल्लकः ॥

(दूसरा अध्याय)

इससे स्पष्ट है कि प्राचीन काल में भी यशद के खनिजों का पूर्ण ज्ञान था । रसक को खर्पर भी कहते हैं । यह २ प्रकार का होता है । जिसमें पत्र होते हैं, उसे दर्दुर (ज़िंक कार्बोनेट) और जिसमें पत्र नहीं होते, उसे कारवेल्लक (ज़िंक सल्फाइड) कहते हैं ।

यशद श्वेत वर्ण की स्फटिकीय धातु है जिसमें किंचित् नीलिमा होती है। साधारण तापक्रम पर यह भङ्गुर (Brittle) होता है। १००° से० से १५०° से० तक गरम करने पर यह घनवर्धनीय (Malleable) हो जाता है। और लगभग २००°से० तक गरम करने पर यह पुनः भंगुर हो जाता है। लगभग ४२०°से० पर यह पिघल जाता है और फिर अधिक गरम करने पर यह किंचित् नील श्वेत प्रकाश के साथ जलता है। इसका विशिष्ट घनत्व ६·९ है।

यशद के यौगिक

(१) ज़िंक आक्साइड (Zinc oxide, Zn O):—

यह श्वेत चूर्ण के रूप में पाया जाता है जिसमें किसी प्रकार का स्वाद नहीं होता। गरम करने पर किंचित् पीत वर्ण का हो जाता है किन्तु ठंढा होने पर पुनः श्वेत हो जाता है। जल में अविलेय है किन्तु सोडियम हाइड्राक्साइड और हल्के धात्वीय अम्लों के विलयनों में घुल जाता है। औषधि के रूप में २½ से ५ रत्ती तक की मात्रा में प्रयुक्त होता है। इससे ज़िंक मलहम (Zinc ointment)और ज़िंक पेस्ट (Zinc paste) बनाये जाते हैं।

(२) ज़िंक सल्फेट (Zinc Sulphate):—

इसको ह्वाइट विट्रीओल (White vitriol, $ZnSO_4$) भी कहते हैं। इसके वर्णरहित पारदर्शक स्फटिक होते हैं जिनमें धात्वीय स्वाद होता है। इसमें किसी प्रकार की गंध नहीं होती और यह जल में घुल जाता है। औषधि के रूप में ½ से १½ रत्ती तक दिया जाता है। इससे एक मलहम बनाया जाता है जिसे अन्जेन्टम जिकाई ओलिएटिस (Ungentum Zinci Oleatis) कहते हैं।

(३) ज़िंक क्लोराइड (Zinc chloride, $ZnCl_2$):—

यह एक ठोस पदार्थ है जो कि चूर्ण, शलाका अथवा ढेले के रूप में होता है। इसका १ भाग जल के १ भाग, ९० प्रतिशत मद्य के १·५ भाग और ग्लीसरीन के २ भाग में घुल जाता है।

इसके अतिरिक्त ज़िंक कार्बोनेट (Zinc carbonate, $ZnCO_3$),

ज़िंक नाइट्रेट [Zinc nitrate, Zn $(NO_3)_2$], ज़िंक हाइड्राक्साइड [Zinc Hydroxide, Zn $(OH)_2$] इत्यादि भी यशद के यौगिक हैं।

लक्षण

(१) मुँह में धात्वीय स्वाद मालूम होता है।

(२) वमन होती है।

(३) आमाशय में पीड़ा होने लगती है।

(४) विरेचन होते हैं।

(५) हृदयावसाद उत्पन्न हो जाता है और अन्त में रोगी की मृत्यु हो जाती है।

घातक कालः—ज़िंक सल्फेल्ट—४ ड्राम (१$\frac{3}{4}$ तो०)

घातक मात्राः—२ घण्टे से ५ दिन तक।

चिकित्सा

(१) सोडा बाई कार्ब (Soda bicarb) को उष्णोदक (Hot Water) में घोलकर, इसी से आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये।

(२) यदि वमन न होती हो तो उष्णोदक पिलाकर गले में अँगुली डालकर वमन करा देना उचित है।

(३) दूध, अण्डे की सफेदी, उष्ण चाय, टैनिकाम्ल (Tannic acid) इत्यादि पिलाना चाहिये।

(४) यदि पीड़ा अधिक हो तो मार्फिया का इन्जेक्शन लगा देना चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप

(१) ज़िंक सल्फेट से—मुख, अन्नप्रणाली, आमाशय और आँतों की श्लेष्मिक कलायें प्रायः रक्तिमायुक्त पायी जाती हैं और उनमें रक्ताधिक्य होता है।

(२) ज़िंक क्लोराइड से—मुख, अन्नप्रणाली, आमाशय और आँतों की श्लेष्मिक कलाओं में व्रण हो जाते हैं और वे नीचे की धातुओं से पृथक हो जाती हैं। कभी कभी व्रण और छिद्र भी हो जाते है।

ताम्र (Copper)

पर्यायः—

ताम्रमौदुम्बरं शुल्बमुदुम्बरमपि स्मृतम् ।
रविप्रियं म्लेच्छमुखं सूर्य्य पर्यायनामकम् ॥

(भावप्रकाश—धातुवर्ग)

अर्थात् ताम्र, औदुम्बर, शुल्ब, उदुम्बर, रविप्रिय, म्लेच्छमुख और सूर्य के जितने भी पर्याय हैं, वे सब ताँबे के नाम हैं ।

परिचय

बहुत प्राचीन काल से लोग ताम्र को जानते हैं । मुक्तावस्था में यह चीन और जापान में पाया जाता है। यह एक विशेष प्रकार के लाल रंग की चमकीली धातु है। यह घनवर्धनीय और तन्य (Ductile) होता है। इसका विशिष्ट घनत्व ८·९५ और द्रवणाङ्क १०८०° से० है। यह ताप और विद्युत का अच्छा चालक है।

ताम्र के यौगिक

(१) कापर सल्फेट (Copper sulphate, $Cu\ SO_4$):—

पर्यायः—

तुत्थकं तु शिखिग्रीवं हेमसारं मयूरकम् ।

(रसेन्द्रसार संग्रह)

अर्थात तुत्थक, शिखिग्रीव, हेमसार और मयूरक—ये नीला तूतिया के नाम हैं।

इसी प्रकार **भावप्रकाश** में:—

तुत्थं वितुन्नकं चापि शिखिग्रीवं मयूरकम् ।

अर्थात तुत्थ, वितुन्नक, शिखिग्रीव और मयूरक ये नीला तूतिया के नाम हैं। इसे $\frac{१}{८}$ से १ रत्ती तक की मात्रा में चिकित्सा में प्रयोग करते हैं। इससे एक मलहम बनाया जाता है जिसे अन्जेन्टम क्यूप्री ओलिऐटिस (Ungentum Cupri Oleatis) कहते हैं और यह दद्रु के लिये विशेषतया प्रयोग किया

जाता है। आयुर्वेद में यह खुजली, दाद, आँख और दाँत के रोगों के लिये अन्य औषधियों के साथ मिलाकर प्रयोग किया जाता है।

(२) **क्यूप्रिक आक्साइड** (Cupric Oxide, Cu O)

(३) **क्यूप्रस आक्साइड** (Cuprous Oxide, Cu_2 O)

(४) **क्यूप्रिक क्लोराइड** (Cupric Chloride, Cu Cl_2)

(५) **क्यूप्रस क्लोराइड** (Cuprous Chloride, Cu_2 Cl_2)

ताम्र के आयुर्वेदीय योग

(१) रवितान्डव रस

(२) हृदयार्णव रस

(३) सूर्यावर्त रस

लक्षण

(१) मुँह में धात्वीय स्वाद मालूम होता है।

(२) आमाशय में दाहयुक्त पीड़ा होती है।

(३) प्यास बहुत लगती है।

(४) वमन होती है जिसका रंग नीला होता है।

(५) उदर प्रदेश में भी पीड़ा होती है।

(६) मूत्र बहुत कम आता है।

(७) भूरे रंग के दस्त होते हैं।

(८) कामला उत्पन्न हो जाता है।

(९) त्वचा पीतवर्ण की हो जाती है और उसका स्पर्श शीतल होता है तथा वह स्वेद युक्त होती है।

(१०) तदनन्तर हृदयावसाद होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

जीर्ण विष लक्षण

(१) मुँह का स्वाद धातु की तरह रहता है।

(२) रोगी को अरुचि हो जाती है।

(३) शिरः शूल होने लगता है।

(४) दुर्बलता बहुत बढ़ जाती है।

(५) मसूढ़ों पर हरित वर्ण की रेखा पड़ जाती है।

(६) कभी कभी शूल और विरेचन भी होते हैं।

घातक मात्राः—नीला तूतिया—½ छिटाँक।

घातक कालः—४ घंटे से ३ दिन तक।

चिकित्सा

(१) ५ प्रतिशत के पोटाशियम फेरो सायनाइड (Potassium Ferro Cyanide) के घोल से आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये।

(२) प्रतिविष के रूप में दूध और अंडे की सफेदी देनी चाहिये।

(३) यदि पीड़ा अधिक हो तो मार्फिया का इन्जेक्शन लगाना चाहिये।

(४) मूत्रल औषधियाँ देनी चाहियें।

(५) उत्तेजना पहुँचाने के लिये स्ट्रिक्नीन आदि के इन्जेक्शन देने चाहियें।

मृत्यूत्तर रूप

(१) मुख, गला और आमाशय की श्लेष्मिक कला मृदु और शोथयुक्त होती है। इनका रंग नीला अथवा हरा होता है।

(२) वृहदान्त्र की श्लेष्मिक कला शोथयुक्त हो सकती है।

(३) यकृत मृदु और वसायुक्त हो जाता है।

(४) वृक्कों में शोथ और रक्ताधिक्य होता है।

नौवाँ अध्याय

जयपाल (Croton seeds)

परिचय

जयपाल को जमालगोटा भी कहते हैं । इसके पेड़ बहुत ऊँचे होते हैं । इसके बीज बहुत विषैले होते हैं । इससे तैल निकाला जाता है जिसे क्रोटन आयल (Croton oil) कहते हैं । यह तैल कपिल-पीत अथवा रक्तिमायुक्त कपिलवर्ण का और चिपचिपा होता है । तैल में एक प्रकार की अप्रिय गन्ध होती है । इस का स्वाद चरपरा और दाहकारक होता है । तैल में रेज़िन (Resin) और स्टियेरिक (Stearic), पामिटिक (Palmitic), लारिक (Lauric), वलेरिक (Valeric), ओलिक (Oleic), लिनोलिक (Linolic) तथा टिकलिक (Tiglic) के ग्लीसराइड्स (Glycerides) पाये जाते हैं । औषधि के रूप में ½ से १ बूँद तक की मात्रा में तैल का प्रयोग किया जाता है । त्वचा पर लग जाने से छाले पड़ जाते हैं । यह अति तीव्र विरेचक होता है जिसके कारण अल्प मात्रा में सेवन करने पर पानी की तरह पतले दस्त होते है और तीव्र उदरशूल तथा ऐंठन होती है । इसके बीज अंडाकार और गहरे भूरे रंग के होते हैं । बीज में ओलियम क्रोटोनिस (Oleum crotonis), प्रोटीड्स (Proteids), एलब्यूमिन (Albumin) इत्यादि पाया है । इसकी जड़ में रेज़िन (Resin) और स्टार्च (Starch) होता है ।

जयपाल के आयुर्वेदीय योग

(१) इच्छाभेदी रस

(२) जलोदरारि रस

(३) ज्वरारि रस, आदि

लक्षण

(१) मुँह, गला और आमाशय में दाहयुक्त पीड़ा होती है।

(२) वमन होने लगती है।

(३) रक्तमिश्रित विरेचन होते हैं।

(४) शरीर में ऐंठन होती है।

(५) त्वचा शीतल हो जाती है।

(६) अन्त में हृदयावसाद होकर मृत्यु हो जाती है।

घातक मात्राः—बीज = ४
तैल = १५ से ३० बूँद तक।

घातक कालः—४ से ५ घंटे तक।
अधिक से अधिक ३ दिन।

चिकित्सा

(१) उष्णोदक से आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये।

(२) जौ का पानी, अंडे की सफेदी आदि स्निग्ध औषधियाँ देनी चाहियें।

(३) यदि पीड़ा अधिक हो तो मार्फिया का इन्जेक्शन लगाना चाहिये।

(४) हृदयावसाद के लिये उत्तेजक औषधियाँ देनी चाहियें।

मृत्यूत्तर रूप

(१) मुख, गला, अन्नप्रणाली, आमाशय और अन्त्र में क्षोभ उत्पन्न हो जाता है।

(२) शरीर के अन्य अंगों थोड़ा वहुत रक्ताधिक्य होता है।

दसवाँ अध्याय

अहिफेन (Opium)

पर्याय:—

उक्तं खसफलं क्षीरमाफूकमहिफेनकम् ।

(भाव प्रकाश)

अर्थात् खसफल, क्षीर, आफूक और अहिफेन—ये अफ़िम के नाम हैं। इसके वक्ष को 'पपावर सोम्नीफेरम' (Papaver Somniferum., N. O. Papaveraceoe) और 'पोपी' (Poppy) भी कहते हैं। अफ़ीम को अङ्गरेजी में ओपियम (Opium) कहते हैं।

प्राप्ति

पोस्त की अपरिपक्व डोडों (Capsules) को चीर कर उसके गूदे और रस को निकाल कर और निचोड़ कर सुखा लेते हैं—यह अफ़ीम कहलाती है।

परिचय

अफ़ीम कई प्रकार की होती है, जैसे:—(क) टर्की की अफ़ीम (ख) योरुपीय अफ़ीम (ग) फारसी अफ़ीम (घ) भारतीय अफ़ीम। ताजी बनाई हुई अफ़ीम कुछ नरम होती है। और उसमें लगभग ६ या १० प्रतिशत मार्फीन (Morphine) रहती है। यह प्राय: चपटे ढेले के रूप में होती है जिसमें एक विशेष प्रकार की गन्ध रहती है। सूखने पर अफ़ीम कुछ कठोर हो जाती है। इसका स्वाद कड़ुवा होता है और यह भूरे काले रंग की होती है।

विश्लेषण

अफ़ीम में दो प्रकार के एलकैलाइड्स (Alkalides) पाये जाते है जिनके नाम नीचे दिये जाते हैं:—

(१) प्रधान ऐलकैलाइड्स:—

(I) मार्फीन (Morphine)

(II) कोडीन Codeine)
(III) थिबेन (Thebaine)
(VI) नार्कोटाइन (Narcotine)
(V) पैपावैरीन (Papaverine)
(VI) स्यूडोमार्फीन (Pseudo-morphine)
(VII) नारसीन (Narceine)
(VIII) क्रिप्टोपाइन) (Cryptopine)
(IX) प्रोटोपाइन (Protopine)
(X) हाइड्रोकोटारनाइन Hydrocotarnine)
(XI) लौडेनाइन (Laudanine)
(XII) लौडेनोसाइन (Laudanosine)
(XIII) मिकोनोडाइन (Meconidine)
(XIV) रिहीडाइन (Rhoeadine)
(XV) कोडामाइन (Codamine)
(XVI) नोस्कोपाइन (Gnoscopine)
(XVII) लैन्थोपाइन (Lanthopine)
(XVIII) ज़ैथलाइन (Xanthaline)
(२) अप्रधान एलकैलाइडसः—
(I) एपोमार्फीन (Apomorphine)
(II) एपोकोडीन (Apocodeine)
(III) थिविनाइन (Thebenine)
(IV) कोटारनाइन (Cotarnine)
(V) आक्सडीमार्फीन (Oxydimorphine)
(VI) डिसोक्सोकोडीन (Desoxycodeine)
(VII) पोरफोरोक्सीन (Porpheroxine)
(VII) रिहीडिनाइन (Rhoeadenine)
(३) अन्य पदार्थः—
(I) ओपिओनिन (Opionin),

(II) मिकोनिन (Meconin)
(III) मिकोनोईडिन (Meconoidin),

(४) ऐन्द्रिक अम्लः—
(I) लैक्टिक ऐसिड (Lactic acid) और
(II) मिकोनिक ऐसिड (Meconic acid)

(५) जल

(६) रेज़िन (Resin), ग्लूकोज़ (Glucose), वसा (Fats), सुगंधित तैल (Essential oil), अमोनियम (Ammoinum), कैलसियम (Calcium) और मैगनीशियम (Magnesium) के लवण (Salts)

अहिफेन के योग

(१) ऐक्सट्रैक्ट ओपियाई सिक्कम	मात्रा	१/८ से १/२ रत्ती तक
(२) पल्व क्रेटा एरोमैटिक कम ओपिओ	मात्रा	५ से ३० रत्ती तक
(३) पल्व आइपोकाक कम्पाउन्ड या डोवर्स पाउडर	मात्रा	२ १/२ से ५ रत्ती तक
(४) टिन्चर ओपियाई	मात्रा	५ से ३० बूंद तक
(५) टिंचर कैम्फर कम्पाउन्ड	मात्रा	३० से ६० बूंद तक
(६) अहिफेनासव	मात्रा	५ से १५ बूंद तक
(७) वेदनान्तक रस	मात्रा	१ से २ रत्ती तक
(८) निद्रोदय रस	मात्रा	१ से २ रत्ती तक
(९) मंगलोदया वटी	मात्रा	१ रत्ती

लक्षण

प्रायः ३० मिनट से प्रगट होने लगते हैं । इसकी तीन अवस्थायें होती हैं:—

[१] प्रथमावस्था या उत्तेजकावस्था
[२] द्वितीयावस्था या तन्द्रावस्था
[३] तृतीयावस्था या निद्रावस्था

[१] उत्तेजकावस्था

(१) रोगी में विकलता (Restlessness) उत्पन्न हो जाती हैं।
(२) मानसिक विभ्रम हो जाता है।
(३) रोगी प्रलाप करने लगता है।
(४) इस अवस्था में रोगी का मुखमण्डल रक्त वर्ण का होता है।

[२] तन्द्रावस्था

(१) शिरः शूल होने लगता है।
(२) शिरोभ्रम होता है।
(३) तन्द्रा (Drowsiness) उत्पन्न हो जाती है।
(४) आँखों की पुतलियां संकुचित हो जाती हैं।
(५) मुख और ओष्ठ नील वर्ण के होते हैं।
(६) श्वास क्रिया गहरी होती है।
(७) प्रश्वास में अहिफेन की गन्ध आने लगती है।

[३] निद्रावस्था

(१) रोगी को निद्रा मालूम होती है।
(२) मूर्छा उत्पन्न हो जाता है।
(३) बाह्य उत्तेजनाओं से रोगी नहीं जागता।
(४) मुख और ओष्ठ पीत वर्ण के हो जाते हैं।
(५) त्वचा शीतल और स्वेद युक्त होती है।
(६) आँखों की पुतलियाँ विन्दु के बराबर संकुचित होती हैं।
(७) समस्त परावर्त्तन (Reflex) नष्ट हो जाते हैं।
(८) शरीर की मांसपेशियाँ ढीली पड़ जाती हैं।

(९) श्वास क्रिया मन्द, क्रमहीन और खड़खड़ाहट तथा कठिनता के साथ होती है।

(१०) नाड़ी दुर्बल हो जाती है।

(११) श्वासावरोध होकर मृत्यु हो जाती है ।

(१२) मृत्यु से कुछ समय पूर्व पुतलियाँ प्रसारित हो जाती हैं ।

घातक मात्रा

अहिफेन चूर्ण—२ से २½ रत्ती तक

टिंचर ओपियाई—६० से १२० बूँद तक

ऐसक्ट्रैक्ट ओपियाई—१ से १½ रत्ती तक

मार्फीन हाइड्रोक्लोराइड—½ से १ रत्ती तक

घातक कालः—६ से १२ घण्टे तक । अधिक से अधिक ३ दिन ।

चिकित्सा

(१) सर्व प्रथम प्रतिविष के रूप में २ से ४ रत्ती तक पोटाशियम परमैंगनेट ४ छिटाँक जल में घोलकर पिला देना चाहिये ।

(२) तदनन्तर पोटाशियम परमैंगनेट के २ से ३ प्रतिशत के घोल से आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये और प्रक्षालन कर चुकने के बाद आमाशय में इस घोल को ४ या ५ छिटाँक रहने देना चाहिये ।

(३) यदि आमाशय प्रक्षालन न किया जा सकता हो तो वामक औषधियों के द्वारा वमन कराना चाहिये ।

(४) रोगी को सोने नहीं देना चाहिये । यदि उसे तन्द्रा मालूम होती हो तो दो व्यक्तियों को उसका एक एक हाथ पकड़ कर इधर उधर दौड़ाना चाहिये । एतदर्थ अमोनिया गैस की नस्य अथवा विद्युत स्पर्श-क्रिया भी की जा सकती है ।

(५) पहले रोगी के अंगुलियों के नखों और माथे पर शीत जल डालना चाहिये । फिर उष्ण जल का प्रयोग करना चाहिये । इसी प्रकार से क्रमशः शीतोष्ण किया करते रहना चाहिये ।

(६) एट्रोपीन का इन्जेक्शन १/४० से १/२० ग्रेन (१/८० से १/२० रत्ती) की

मात्रा में देना चाहिये । आवश्यकता पड़ने पर पुनः इन्जेक्शन लगाया जा सकता है किन्तु बड़ी सावधानी के साथ और खूब विचार करके ऐसा करना चाहिये अन्यथा हानि होने की सम्भावना रहती है ।

(७) आवश्यकतानुसार आक्सीजन व्यवस्था और कृत्रिम श्वास क्रिया करनी चाहिये ।

मृत्यूत्तर रूप

(क) बाह्यः—

(१) मुख, ओठ, हाथ और पैर को अंगुलियों के नखों में नीलिमा (Lividity) होती है ।

(२) मुख और नासिका में फेन पाया जा सकता है ।

(३) मृत्यूत्तर अधः स्थल वैवर्ण्य प्रायः स्पष्ट होता है ।

(ख) आभ्यन्तरिकः—

(१) फुफ्फुसों में रक्ताधिक्य और शोथ होता है ।

(२) श्वास प्रणाली में फेन पाया जाता है ।

(३) यदि चिकित्सा न की गई हो तो आमाशय में अहिफेन के कण पाये जा सकते हैं । इसके अभाव में आमाशय और आमाशयिक पदार्थों में अहिफेन की गन्ध आयेगी ।

(४) मस्तिष्क और उसकी कलाओं में रक्ताधिक्य होता है ।

(५) उदर के अन्य अंगो में भी थोड़ा बहुत रक्ताधिक्य होता है ।

ग्यारहवाँ अध्याय

मद्य (Alcohol)

पर्याय:—

मद्यं तु सीधुर्मैरेयामिरा च मदिरा सुरा ।
कादम्बरी वारुणी च हालापि बलवल्लभा ॥

(भावप्रकाश)

अर्थात मद्य, सीधु, मैरेय, इरा, मदिरा, सुरा, कादम्बरी, वारुणी, हाला और बलवल्लभा—ये शराब के नाम हैं।

मद्यकी आयुर्वेदीय परिभाषा:—

पेयं यन्मादकं लोके तन्मद्यमभिधीयते ।

(भावप्रकाश)

अर्थात संसार में जो भी पीने वाली वस्तु मद (नशा) को करे, वह मद्य कहलाती है।

मद्य के भेद:—

आयुर्वेदिक चिकित्सा में जो कई प्रकार से मद्य का प्रयोग किया जाता है, उसका यहाँ पर वर्णन करना आवश्यक है।

यथारिष्टं सुरासीधुरासवाद्यमनेकधा ।

(भावप्रकाश)

अर्थात अरिष्ट, सुरा, सीधु, आसव इत्यादि भेदों से मद्य कई प्रकार की होती है।

परिचय

अलकोहल कई प्रकार के होते हैं जैसे एमाइल (Amyl), इथाइल (Ethyl), प्रोपाइल (Propyl), मिथाइल (Methyl), बेनज़ाइल (Benzyl),

इत्यादि। औषधि के रूप में इथाइल अलकोहल का प्रयोग होता है। शुद्ध मद्य को एबसोल्यूट (Absolute) अलकोहल कहते हैं, इसमें ९९ प्रतिशत इथाइल अलकोहल होता है। मैथीलेटेड स्पिरिट (Methylated spirit) में ९५ प्रतिशत और रेक्टीफाइड स्पिरिट (Rectified spirit) में ९० प्रतिशत इथाइल अलकोहल होता है। पीने के लिये कई प्रकार की मद्य काम में लायी जाती है। जिनके नाम नीचे लिखे हुये हैं और उनके सामने उनमें उपस्थित इथाइल एलकोहल की आयतनानुसार (By volume) मात्रा भी लिखी हुई है:—

(१) व्हिस्की (Whisky)	४० प्रतिशत।
(२) रम (Rum)	५१ से ५६ प्रतिशत तक।
(३) जिन (Gin)	५१ से ५६ प्रतिशत तक।
(४) ब्राँडी (Brandy)	४० से ५० प्रतिशत तक।
(५) मेडेइरा (Madeira)	२२ प्रतिशत।
(६) पोर्ट (Port)	२० प्रतिशत।
(७) शेरी (Sherry)	१६ से १८ प्रतिशत तक।
(८) शेम्पेन (Champagne)	१० से १३ प्रतिशत तक।
(९) क्लेरेट (Claret)	८ से १२ प्रतिशत तक।
(१०) एल (Ale)	३ से ७ प्रतिशत तक।
(११) बीयर (Beer)	१ से ३ प्रतिशत तक।

कुछ मुख्य मुख्य आसव और अरिष्टों के नाम और उनमें उपस्थित इथाइल अलकोहल की मात्रा नीचे लिखी हुई है:—

(१) अभयारिष्ट	६ से ७ प्रतिशत
(२) अश्वगंधारिष्ट	७ से ८ प्रतिशत
(३) अशोकारिष्ट	७ से ८ प्रतिशत
(४) खदिरारिष्ट	७ से ८ प्रतिशत
(५) दशमूलारिष्ट	९ से १० प्रतिशत
(६) मधुकारिष्ट	८ प्रतिशत
(७) रोहितकारिष्ट	७ से ८ प्रतिशत

(८) अरविंदासव	७ से ८ प्रतिशत
(९) उशीरासव	८ से ९ प्रतिशत
(१०) कुटजासव	८ से ९ प्रतिशत
(११) कुमार्यासव	६ से ९ प्रतिशत
(१२) जम्बुवासव	९ प्रतिशत
(१३) द्राक्षासव	७ से ९ प्रतिशत
(१४) लोहासव	८ से ९ प्रतिशत

लक्षण

(१) मुख मण्डल रक्त वर्ण का हो जाता है।
(२) मानसिक विभ्रम (Mental confusion) होता है।
(३) भाषण—क्रमहीन, अबद्ध और अस्पष्ट होता है।
(४) पुतलियाँ प्रसारित हो जाती हैं।
(५) रोगी प्रलाप करने लगता है।
(६) शरीर की माँसपेशियाँ ढीली और अधिकार के वाहर होती हैं।
(७) रोगी चलने में लड़खड़ाता है।
(८) परावर्त्तन नष्ट हो जाते हैं।
(९) पूर्ण संज्ञाहीनता की अवस्था आ जाती है।
(१०) प्रश्वास में मद्य की तीव्र गन्ध होती है।
(११) शरीर का तापक्रम साधारण से कम हो जाता है।
(१२) त्वचा शीतल और स्वेद युक्त होती है।
(१३) श्वासावरोध होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

घातक मात्राः—शुद्ध अलकोहल—१ से २½ छिटाँक तक।

घातक कालः—१२ से २४ घण्टे तक।

जीर्ण विष के लक्षण

मद्य का चिर काल तक सेवन करने से अग्निमान्द्य, अपचन, उन्माद आदि भयंकर व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

चिकित्सा

(१) वामक औषधियों के द्वारा वमन कराना चाहिये ।

(२) आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये ।

(३) शरीर पर शीत जल डालना चाहिये ।

(४) उत्तेजना के लिये स्ट्रिकनीन आदि के इन्जेक्शन लगाना चाहिये ।

मृत्यूत्तर रूप

(१) मृत्यूत्तर अधः स्थल वैवर्ण्य स्पष्ट होता है ।

(२) आमाशय की श्लेष्मिक कला में प्रायः रक्ताधिक्य होता है और उसमें शोथ पाया जाता है ।

(३) आमाशयिक पदार्थों में मद्य की गन्ध मालूम होती है ।

(४) फुफ्फुसों में रक्ताधिक्य होता है ।

(५) मस्तिष्क में भी रक्ताधिक्य होता है ।

क्लोरोफार्म (Chloroform)

सूत्र ($CHCl_3$)

परिचय

यह एक वर्णरहित उड़नशील तरल पदार्थ है । इसका स्वाद किञ्चित् मधुर और दाहकारक होता है । इसमें एक विशेष प्रकार की गन्ध होती है । इसका विशिष्ट घनत्व १·४८५ से १·४६० तक होता है । यह जल के २०० भाग में घुलनशील है । इसके अतिरिक्त यह मद्य, ईथर, स्थिर और उड़नशील तैलों (Fixed and volatile oils) में भी सरलता पूर्वक मिल जाता है ।

इसके निम्नलिखित योग महत्व के हैं:—

(१) स्पिरिट क्लोरोफार्म मात्रा ५ से ३० बूंद तक

(२) एकुआ क्लोरोफार्म मात्रा ¼ से ½ छटाँक तक

(३) टिंचर क्लोरोफार्म कम्पाउन्ड मात्रा ५ से ६ बूँद तक

(४) टिंचर क्लोरोफार्म एट मार्फिया कम्पाउन्ड - मात्रा ५ से १५ बूँद तक

लक्षण

इसकी चार अवस्थायें होती हैं:—

(क) प्रथमावस्थाः—

(१) रोगी को वायु प्रणाली में किंचित् उष्णता का अनुभव होता है ।

(२) आँखों के सामने चिनगारियां दिखलाई पड़ती हैं ।

(३) दम घुटने लगता है ।

(४) मानसिक विभ्रम उत्पन्न हो जाता है ।

(५) रोगी को कान से कम सुनाई पड़ने लगता है ।

(६) प्रश्नों का अपूर्ण उत्तर देता है ।

(७) रोगी को पीड़ा का कम अनुभव होता है ।

(ख द्वितीयावस्थाः—

(१) अपने स्वभाव के अनुसार रोगी गाने, चिल्लाने, रोने या झगड़ने लगता है ।

(२) मुख मण्डल नील वर्ण का हो जाता है ।

(३) हृदय और बड़ी बड़ी रक्तवाहनियों में फड़कन होती है ।

(४) श्वास क्रिया जल्दी जल्दी होती है ।

(५) रक्तभाराधिक्य होता है ।

(ग) तृतीयावस्थाः—

(१) नाड़ी केन्द्रों का पक्षाघात हो जाता है ।

(२) परावर्त्तन नष्ट हो जाते हैं ।

(३) संज्ञानाश की अवस्था होती है ।

(४) रोगी पूर्णतया मूर्छित हो जाता है ।

(५) पुतलियाँ संकुचित हो जाती हैं ।

(६) नाडी दुर्बल और मंद होती है ।

(७) श्वास क्रिया गहरी, धीरे धीरे और खड़खड़ाहट के साथ होती है ।

(८) रक्तभार (Blood pressure) कम हो जाता है ।

इस अवस्था में शल्य क्रिया की जाती है ।

(घ) **चतुर्थावस्थाः—**

(१) बिना इच्छा के ही मल मूत्र का त्याग हो जाता है ।

(२) शरीर की मांसपेशियां पूर्णतया ढीली पड़ जाती हैं ।

(३) आंखों की पुतलियां प्रसारित हो जाती हैं ।

(४) श्वास क्रिया उथली और अनियमित होती है ।

(५) नाड़ी दुर्बल होती है ।

घातक मात्राः—कनसेन्ट्रेटेड क्लोरोफार्म—१५ से ३० बूँद तक ।

साधारण क्लोरोफार्म—युवा के लिये—४ से ६ ड्राम तक ।

बालक के लिये—१ ड्राम (६० बूँद) ।

घातक कालः—सुँघाने पर—२ मिनट ।

पीने पर—५ से ६ घन्टे तक ।

चिकित्सा

(१) जिह्वा को बाहर की तरफ खींचना चाहिये ।

(२) तत्काल कृत्रिम श्वास क्रिया आरम्भ कर देना चाहिये ।

(३) रोगी के शरीर पर विद्युत-स्पर्श क्रिया करनी चाहिये ।

(४) आक्सीजन व्यवस्था करनी चाहिये ।

(५) उत्तेजना के लिये स्ट्रिकनीन आदि के इन्जेक्शन लगाने चाहिये ।

(६) आवश्यकतानुसार ऐट्रोपीन, ऐड्रिनेलिन क्लोराइड आदि के इन्जेक्शन भी लगाये जा सकते हैं ।

क्लोरल हाइड्रेट (Chloral Hydrate)

परिचय

यह एक वर्णरहित स्फटिकीय पदार्थ है । इसका स्वाद कटु और तीक्ष्ण होता है । इसमें एक विशेष प्रकार की तीक्ष्ण गन्ध होती है । वायु में खुला रख देने से यह धीरे धीरे उड़ जाता है । यह क्लोरोफार्म के ३ भाग और जल के लगभग १ भाग में सरलतापूर्वक घुल जाता है । इसके अतिरिक्त ईथर और ६० प्रतिशत

के मद्य में भी घुलनशील है। औषधि के रूप में इसको २½ से १० रत्ती तक की मात्रा में प्रयोग करते हैं।

लक्षण

(१) मुँह, गला और आमाशय में दाह होती है।

(२) तन्द्रा मालूम होती है।

(३) तदनन्तर रोगी को गाढ़ निद्रा आ जाती है।

(४) मूर्छा उत्पन्न हो जाती है!

(५) मुख मण्डल नील वर्ण का होता है।

(६) पुतलियाँ संकुचित हो जाती हैं।

(७) नाड़ी दुर्बल, मन्द और क्रमहीन चलने लगती है।

(८) श्वास क्रिया मन्द, परिश्रम शील, उथली और खड़खड़ाहट के साथ होती है।

(९) त्वचा शीतल और स्वेद युक्त होती है।

(१०) शरीर का तापक्रम साधारण से कम हो जाता है।

(११) माँसपेशियाँ ढीली पड़ जाती हैं।

(१२) हार्दिक केन्द्र (Cardiac centre) और श्वास केन्द्र (Respiratory centre) का पक्षाघात हो जाता है।

(१३) श्वासावरोध अथवा हृदयावसाद होकर मृत्यु हो जाती है।

घातक मात्राः—१५ से ६० रत्ती तक।

घातक कालः—१० से १२ घंटे तक।

चिकित्सा

(१) वामक औषधियों द्वारा वमन कराना चाहिये।

(२) क्षारीय विलयन से आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये ।

(३) उत्तेजना के लिये स्ट्रिकनीन आदि के इन्जेक्शन लगाने चाहियें ।

(४) शरीर के ताप की रक्षा के लिये उष्णोदक से भरी बोतलों से सेंक करना चाहिये ।

(५) पीने के लिये गरम चाय अथवा 'काफ़ी' (Coffee) देना चाहिये ।

(६) श्वासावरोध के लिये आवश्यकतानुसार आक्सीजनव्यवस्था अथवा कृत्रिम श्वास क्रिया करनी चाहिये ।

पेट्रोलियम (Petroleum)

परिचय

यह अमेरिका, रूस, वर्मा इत्यादि में पृथ्वी के अन्दर बालू की चट्टानों के नीचे पाया जाता है । इन चट्टानों को तोड़कर बड़े बड़े नलों के द्वारा इसे बाहर निकाल कर एकत्र किया जाता है । इसको शुद्ध करके जलाने के काम में वा अन्य कार्यों में प्रयोग किया जाता है । इसका विशिष्ट घनत्व ०·७६० से ०·८२५ तक होता है ।

लक्षण

(१) मुँह, गला और आमाशय में दाह युक्त पीड़ा होती है ।

(२) प्रश्वास में तैल की गन्ध आती है ।

(३) प्यास बहुत लगती है ।

(४) शिरोभ्रम (Giddiness) होता है ।

(५) शिरोगौरव उत्पन्न हो जाता है ।

(६) मुख मण्डल पीत अथवा नील वर्ण का होता है ।

(७) वमन होती है जिसमें तेल की गन्ध रहती है।

(८) तन्द्रा मालूम होती है।

(६) मूर्छा उत्पन्न हो जाती है।

(१०) हृदयावसाद होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

घातक मात्राः—½ छिटाँक।

घातक कालः—७ घंटे

चिकित्सा

(१) वामक औषधियों के द्वारा वमन कराना चाहिये।

(२) उष्णोदक से आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये।

(३) उत्तेजक औषधियाँ देंनी चाहियें।

(४) यदि आवश्यकता हो तो कृत्रिम श्वास क्रिया करनी चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप

(१) फुफ्फुसों और वायुनलिकाओं में तेल की गंध होगी।

(२) आमाशय और आतों में भी पेट्रोलियम की गन्ध होती है!

बारहवाँ अध्याय

पर्याय:—

धत्तूर धूर्त धुत्तरा उन्मत्तः कनकाह्वयः ।
देवता कितवस्तूरी महामोही शिवप्रियः ॥
मातुलो मदनश्चास्य फले मातुलपुत्रकः ।

(भावप्रकाश)

अर्थात् धत्तूर, धूर्त, धुत्तूर, उन्मत्त, स्वर्ण के सभी पर्यायवाचक शब्द, देवता, कितव, तूरी, महामोही शिवप्रिय, मातुल और मदन—ये धतूरे के नाम हैं। इसके फल को मातुल पुत्रक कहते हैं। धत्तूरे को अङ्गरेजी में थार्न ऐपिल (Thorn apple) कहते हैं।

धतूरे के बीज और पत्तियाँ बहुत विषैले होते हैं। चोरी और डाका डालने के उद्देश्य से तथा स्त्रियों के साथ व्यभिचार और बलात्कार करने के लिये भी धतूरे का बहुत ज्यादा प्रयोग किया जाता है।

धतूरे के आयुर्वेदीय योग

(१) प्रलापान्तक रस
(२) उन्माद गजाँकुश रस
(३) ग्रन्थिशोथनिवारिका वर्तिका

लक्षण

(१) गला शुष्क हो जाता है।
(२) प्यास बहुत लगती है।
(३) शिरोभ्रम होता है।
(४) मुख मण्डल उष्ण और रक्त वर्ण का होता हैं।
(५) स्वर विकृत हो जाता है।
(६) स्वर भेद उत्पन्न होता है।
(७) आँखों की पुतलियाँ प्रसारित हो जाती हैं।

(८) पहले नाड़ी जल्दी जल्दी चलती है किन्तु बाद में दुर्बल हो जाती है।
(९) त्वचा शुष्क होती है।
(१०) तापक्रम बढ़ जाता है। १०२°फा० से १०७°फा० तक होता है।
(११) मानसिक विभ्रम उत्पन्न हो जाता है।
(१२) रोगी प्रलाप करने लगता है, प्रायः साध्य होता है।
(१३) विकलता होने लगती है।
(१४) रोगी दीर्घ स्वर में और असम्बद्ध वार्तालाप करता है।
(१५) वस्त्रों को नोचने लगता है।
(१६) काल्पनिक धागों को खचींता है या बुनता है।
(१७) बाद में तापक्रम साधारण से कम हो जाता है।
(१८) त्वचा शीतल और स्वेदयुक्त होती है।
(१९) बाद में नाड़ी दुर्बल हो जाती है।
(२०) अन्त में हृदय और श्वास क्रिया बन्द होने लगती है।
(२१) हृदयावसाद अथवा श्वासावरोध होकर मृत्यु हो जाती है।

घातक मात्रा:—बीज का चूर्ण—५ से ७½ रत्ती तक।

घातक काल:—१२ से २४ घण्टे तक।

चिकित्सा

(१) वामक औषधियों का प्रयोग करके वमन कराना चाहिये।

(२) पोटाशियम परमैंगनेट से आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये।

(३) प्रतिविष के रूप में पायलोकारपीन नाइट्रेट (Pilocarpine nitrate) का इन्जेक्शन लगाना चाहिये।

(४) यदि पीड़ा अधिक हो तो मार्फिया का इन्जेक्शन लगाया जा सकता है।

(५) उत्तेजना के लिये कार्डीज़ाल (Cardiazol) आदि औषधियाँ दी जा सकती हैं।

(६) शरीर के ताप की रक्षा के लिये उष्णोदक से भरी बोतलों से सेंक करना चाहिये।

(७) श्वासावरोध की अवस्था में कृत्रिम श्वास क्रिया करनी चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप

(१) मुख और हाथ पैर की अंगुलियों के नखों में नीलिमा होती है।

(२) आँखों की पुतलियाँ प्रसारित होती हैं।

(३) आमाशय में धतूरे के बीज अथवा उसके कण पाये जाते हैं।

(४) फुफ्फुस, आमाशय, यकृत, प्लीहा, वृक्क, अन्त्र, मस्तिष्क इत्यादि आभ्यन्तरिक अङ्गों में थोड़ा बहुत रक्ताधिक्य होता है।

बेलाडोना (Belladona)

परिचय

इसके वृक्ष विदेशों में उत्पन्न होते हैं। जब इस वृक्ष में फूल आने लगते हैं, तब इसकी पत्तियों को तोड़कर एकत्र कर लिथा जाता है। इसमें ०·३ प्रतिशत एलकैलाइड होता है। इस वृक्ष की जड़ भी काम में आती है जिसे सुखाकर एकत्र कर लिया जाता है। इसमें ०·४ प्रतिशत एलकैलाइड होता है। इसकी पत्तियों और जड़ों में तीन प्रकार के एककैलाइड्स पाये जाते हैं। जिनके नाम निम्नलिखित हैं:—

(१) **एट्रोपीन** (Atropine)
(२) **हायोसायमीन** (Hyoscyamine)
(३) **बेलाडोनीन** (Belladonnine)

बेलाडोना के निम्नलिखित योग विशेष महत्व के हैं:—

(१) पल्व (चूर्ण) बेलाडोना — मात्रा $\frac{1}{4}$ से $1\frac{1}{2}$ रत्ती तक।
(२) ऐक्सट्रैक्ट बेलाडोना सिक्कम — मात्रा $\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{2}$ रत्ती तक।
(३) टिंचर बेलाडोना — मात्रा ५ से ३० बूँद तक।
(४) ऐक्सट्रैक्ट बेलाडोना लिक्विड — मात्रा $\frac{1}{4}$ से १ बूँद तक।
(५) ऐमप्लास्ट्रम बेलाडोना (प्रलेप)
(६) लिनीमेन्टम बेलाडोना (तैल)
(७) सपोजीटोरियम बेलाडोना (गुदवर्त्ति)।

लक्षण

(१) मुख मण्डल रक्त वर्ण का हो जाता है।
(२) मुँह सूख जाता है।
(३) स्वरभेद होता है।
(४) प्यास बहुत लगती है।
(५) आँखें रक्तवर्ण की हो जाती हैं।
(६) आँखों की पुतलियाँ प्रसारित हो जाती है।
(७) त्वचा शुष्क और उष्ण होती है।
(८) शरीर का तापक्रम बढ़ जाता है, लगभग १०७° फा० होता है।
(९) नाड़ी पहले मन्द होती है किन्तु बाद में तीव्र और दुर्बल हो जाती है।
(१०) श्वास क्रिया पहले मन्द होती है किन्तु बाद में गहरी और जल्दी जल्दी होती है।
(११) रोगी चलने में लड़खड़ाता हैं।
(१२) शिरोभ्रम हो जाता है।
(१३) प्रलाप करता है।
(१४) बाद में रोगी को तन्द्रा मालूम होती है।
(१५) अन्त में मूर्छित होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

घातक मात्राः—बेलाडोना—६० बूँद।

एट्रोपीन सल्फेट—१/४ से १/२ रत्ती तक।

घातक कालः—२४ घण्टे।

चिकित्सा

इसकी सम्पूर्ण चिकित्सा धतूरे की ही तरह की जाती है।

मृत्युत्तर रूप

(१) श्वासावरोध के चिन्ह मिलते हैं।
(२) समस्त आभ्यन्तरिक अङ्गों में रक्ताधिक्य होता है।

भाँग (Cannabis Indica)

धतूरा

पर्यायः—भङ्गा गञ्जा मातुलानी मादनी विजया जया।

(भावप्रकाश)

अर्थात भंगा, गंजा, मातुलानी, मादनी, विजया, और जया, ये भाँग के नाम हैं। अंगरेजी में इसे इन्डियन हेम्प Indian hemp) या कैनेबिस इन्डिका (Cannabis Indica) कहते हैं।

परिचय

भाँग के पौधे हरिद्वार, ऋषिकेश, पीलीभीत, माला, इत्यादि बहुत से स्थानों में स्वतः उत्पन्न होते हैं। भारतवर्ष में भाँग का बहुत प्रयोग होता है। औषधि के रूप में भाँग की पत्तियों का प्रयोग होता है किन्तु इस पौधे के पुष्प, पत्र, बीज, डण्ठल और गोंद—इन सबको निकाल कर विभिन्न प्रकार से प्रयोग में लाया जाता है, जैसा कि नीचे लिखा हुआ है:—

(१) भाँगः—यह पौधे की पत्तियों और डण्ठलों का मिश्रित चूर्ण होता है जो कि बाज़ार में भाँग के नाम से मिलता है।

(२) गाँजाः—पौधे के फूलों को तोड़कर सुखाकर एकत्र करने पर जो वस्तु तैय्यार होती है, उसे गाँजा कहते हैं। भारतवर्ष के साधू और सन्यासी इस गाँजे को तम्बाकू के साथ मिलाकर चिलम में रखकर पीते हैं।

(३) चरसः—भाँग के पौधे की पत्तियों और शाखाओं से एक प्रकार का गोंद निकलता है, उसे एकत्र कर लिया जाता है और तम्बाकू में मिलाकर जो पदार्थ तैय्यार होता है, उसे चरस कहते हैं।

(४) माजूनः—भाँग की पत्तियों को सुखाकर चूर्ण करके शक्कर, दूध, घी, इत्यादि मिलाकर अवलेह बना लेते हैं। फिर यह सूखने पर मिठाई की भाँति प्रयोग की जाती है। विशेष तौर से होली के त्योहार में हिन्दू लोग इस माजून को अधिक प्रयोग करते हैं।

विश्लेषण

इसमें एक प्रकार का गोंद—केनाबिनोन (Cannabinone), उड़नशील तैल, वसा, मोम इत्यादि पाया जाता है। इसका मुख्य एलकैलाइड केनाबिन (Cannabin) है।

भाँग के योग

(१) ऐक्सट्रैक्ट केनाबिस इन्डिका मात्रा १/८ से १/२ रत्ती तक।
(२) टिंचर केनाबिस इन्डिका मात्रा ५ से १५ बूँद तक।
(३) मदनोदय मोदक मात्रा १ गोली
(४) त्रैलोक्य विजया वटी मात्रा १ गोली
(५) त्रैलोक्यसंमोहन रस मात्रा १ रत्ती

लक्षण

इसकी दो अवस्थायें होती हैं:—
(क) उत्तेजकावस्था (ख) निद्रावस्था

(क) उत्तेजकावस्थाः—

(१) रोगी में कई प्रकार के विचार उत्पन्न होते हैं।
(२) व्यक्ति हर्षित होता है।
(३) मैथुन की इच्छा होती है।
(४) अधिक समय तक रोना, हँसना, गाना, चिल्लाना, बकना, इत्यादि।
(५) कभी कभी रोगी प्रलाप करने लगता है।

(ख) निद्रावस्थाः—

(१) आँखों की पुतलियाँ प्रसारित हो जाती हैं।

(२) सम्पूर्ण शरीर में अथवा उसके किसी भाग में गुरुता और संज्ञाहीनता उत्पन्न हो जाती है ।

(३) सार्वाङ्गिक अवसन्नता—कभी कभी ।

(४) रोगी को निद्रा आ जाती है ।

(५) जागने पर रोगी स्वस्थ हो जाता है ।

जीर्ण विष लक्षण

भाँग का चिर काल तक सेवन करने से अरुचि, उन्माद इत्यादि व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं ।

घातक मात्रा:—ऐक्सट्रैक्ट—२½ से ३½ रत्ती ।
टिंचर —७½ बूँद ।

घातक काल:—१२ से ४८ घंटे तक ।

चिकित्सा

(१) आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये ।

(२) वामक औषधियों का प्रयोग करके वमन कराना चाहिये ।

(३) विरेचक औषधियों का सेवन करा कर विरेचन-कर्म कराना चाहिये ।

(४) उत्तेजक औषधियाँ देनी चाहियें ।

तेरहवाँ अध्याय

कुचला (Nux Vomica)

पर्याय:—

तिंदुकः कथितो यस्तु जलजो दीर्घपत्रकः ।
कुपीलुः कुलकः काकातिन्दुकः काल पीलुकः ।
काकेन्दुर्विषतिंदुश्च तथा मर्कट तिंदुकः ।

(भावप्रकाश)

अर्थात जल में उत्पन्न होने वाले कुचला को दीर्घपत्रक, कुपीलु, कुलक, काकतिन्दुक, कालपीलुक, काकेन्दु, विषतिन्दु और मर्कट तिन्दुक कहते हैं। अङ्गरेजी में इसे प्वाइज़न नट (Poison nut) या नक्स वामिका (Nux vomica) कहते हैं।

परिचय

कुचला के वृक्ष पीलीभीत, माला इत्यादि स्थानों पर अधिक संख्या में उत्पन्न होते हैं। इस वृक्ष के सभी अवयव जैसे पत्तियाँ, फल, बीज, छाल इत्यादि बहुत विषैले होते हैं। औषधि के लिये इसके बीजों को ग्रहण किया जाता है। जब ये बीज पक जाते हैं तो इनको वृक्ष से प्रथक करके सुखा कर संग्रह कर लिया जाता है। बीज तश्तरी की तरह बीच में गड्ढेदार और किनारे किनारे चारों ओर कठिन और मोटा होता है। इनका व्यास १० से ३० मिलीमीटर तक होता है। बीज की मुटाई ४ से ६ मिलीमीटर तक होती है। बीज के किनारे गोल होते हैं। इनकी सतह राख की तरह वा कुछ कुछ भूरी होती है। इनमें किसी प्रकार की गन्ध नहीं होती। इनका स्वाद बहुत कड़ुवा होता है।

विश्लेषण

(१) स्ट्रिकनीन (Strychnine)—**०.२ से ०.५ प्रतिशक तक ।**
(२) ब्रूसीन (Brucine)—**०.५ से १ प्रतिशत तक ।**

(३) केफियो टैनिक ऐसिड (Caffeo-tannic acid)।

(४) लोगानिन (Loganin)—यह एक प्रकार की ग्लूकोसाइड (glucoside) होती है।

कुचला के निम्नलिखित योग महत्व के हैं:—

(१) कुचला चूर्ण—मात्रा १/२ से २ रत्ती तक।

(२) ऐक्सट्रैक्ट नक्स वामिका सिक्कम—मात्रा १/८ से १/२ रत्ती तक।

(३) ऐक्सट्रैक्ट नक्स वामिका लिक्विड—मात्रा १ से ३ बूँद तक।

(४) टिन्चर नक्स वामिका—मात्रा १० से ३० बूँद तक।

(५) नवजीवन रस—मात्रा १ रत्ती।

(६) अग्नितुण्डी रस—मात्रा १ रत्ती।

(७) लक्ष्मीविलास रस—मात्रा १ रत्ती।

(८) शूलनिर्मूलन रस—मात्रा १ रत्ती

(९) सुप्तवातारि रस—मात्रा १ रत्ती

(१०) विषतन्दुक तैल।

लक्षण

(१) मुँह में अत्यधिक कड़ुवा स्वाद मालूम होता है।

(२) गले में संकोच का सा अनुभव होता है।

(३) शरीर की मांसपेशियों में संकोच होता है। शरीर कमान की भाँति मुड़ जाता है, केवल शिर का पीछे का भाग और ऐंड़ी ज़मीन पर रहते हैं।

(४) आँखें बाहर की ओर को निकल आती हैं।

(५) आँखों की पुतलियाँ प्रसारित हो जाती हैं।

(६) ऊर्ध्व और अधो हनु दृढ़ता से आपस में मिल जाते हैं।

(७) कभी कभी मुँह से फेन गिरने लगता है।

(८) पेशियों में धनुर्वात की भाँति आक्षेपण होते हैं।

(९) आक्षेपण काल—१/२ से २ मिनट तक होता है।

(१०) दो आक्षेपों के बीच के समय का अन्तर १० से ३० मिनट तक होता है।

(११) आक्षेपण—रोगी की मृत्यु अथवा स्वस्थ होने तक होते रहते है।

(१२) श्वासावरोध होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है ।

घातक मात्रा:—(I) कुचला चूर्ण—१५ से २५ रत्ती ।

(II) टिंचर—३६० बूँद ।

(III) ऐक्सट्रैक्ट—१½ रत्ती ।

(IV) स्ट्रिकनीन हाइड्रोक्लोराइड—½ से १ रत्ती ।

घातक काल:—५ मिनट से ४ घंटे तक ।

सापेक्ष्य निदान

कुचला विष

(१) विष सेवन के तुरन्त बाद लक्षण व्यक्त होने लगते हैं ।

(२) लक्षण अकस्मात प्रारम्भ होते हैं ।

(३) मुख और ग्रीवा की माँस पेशियों पर अन्त में प्रभाव होता है, अतः जबड़े अन्त में जकड़ते हैं और मुख नहीं खुलता ।

(४) आक्षेपों के बीच के समय में पेशियाँ पूर्णरूप से ढीली हो जातीहैं।

(५) लक्षणों की उत्तरोत्तर वृद्धि बहुत तीव्रता के साथ होती है और रोगी की या तो शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है और या फिर रोगी स्वस्थ होने लगता है ।

धनुर्वात

(१) प्रायः शरीर पर आघात होने का इतिहास पहले मिलता है, बाद में लक्षण व्यक्त होते हैं ।

(२) लक्षण शनैः शनैः आरम्भ होते हैं ।

(३) मुख और ग्रीवा की पेशियाँ प्रथम प्रभावित होती हैं, अतएव प्रारम्भ से ही जबड़े जकड़ जाते हैं । और मुख बन्द हो जाता है ।

(४) आक्षेपों के बीच के समय में पेशियाँ पूर्णरूप से ढीली नहीं होतीं और थोड़ी बहुत संकुचितावस्था में रहती हैं ।

(५) रोग का क्रम मन्द होता है और इस तरह से रोगी या तो बहुत देर में मृत्यु को प्राप्त होता है या फिर बिलम्ब से स्वस्थ होता है ।

कुचला विष	धनुर्वात
(६) वमन और दस्त किये हुये पदार्थों का रासायनिक परीक्षण करने पर स्ट्रिकनीन या कुचला विष मालूम किया जा सकता है।	(६) व्रण के स्राव का सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा परीक्षण करने पर या उसकी 'जीवाणु सम्वर्धन--क्रिया' (Culture) करने पर धनुर्वात के जीवाणु (Bacillus Tetanus) पाये जा सकते हैं।

चिकित्सा

(१) वामक औषधियाँ देकर वमन कराना चाहिये। एतदर्थ एपोमार्फीन का इन्जेक्शन लगाया जा सकता है।

(२) टैनिकाम्ल से आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये। यदि आवश्यकता पड़े तो क्लोरोफार्म सुँघाकर प्रक्षालन किया जा सकता है।

(३) कुचले के विष को निष्क्रिय करने के लिये टैनिकाम्ल खिलाना चाहिये।

(४) आक्षेप को रोकने के लिये क्लोरोफार्म सुँघाना चाहिये।

(५) निद्रा लाने के लिये क्लोरल हाइड्रेट देना चाहिये।

(६) आवश्यकतानुसार आक्सीजन व्यवस्था और कृत्रिम श्वास क्रिया करनी चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप

(१) पेशियाँ संकुचित होती हैं।

(२) त्वचा के नीचे रक्तसंचय पाया जाता है।

(३) श्वासावरोध के चिह्न मिलते हैं।

चौदहवाँ अध्याय

तमालपत्र (Tobacco)

परिचय

इसके वृक्ष छोटे होते हैं। इनकी पत्तियों को तोड़कर सुखाकर संग्रह कर लिया जाता है। इसमें चूना, सुपारी, इलायची इत्यादि मिलाकर चबाते हैं अथवा इससे सिगार बनाये जाते हैं। कुछ देशों में उचकोटि के तम्बाकू की खेती होती है। और उनसे उत्तम सिगरेट बनाये जाते हैं। इनमें प्रायः किसी प्रकार की मिलावट नहीं होती किन्तु जो सस्ते सिगरेट आते हैं, उनकी तम्बाकू में घोड़े की लीद वा अन्य ऐसे ही निकृष्ट पदार्थ सम्मिश्रित कर दिये जाते हैं जिसके कारण अन्य सिगरेटों की अपेक्षा ये अधिक हानिप्रद होते हैं। साधारण तम्बाकू की पत्तियों में शीरा इत्यादि मिलाकर पीने की तम्बाकू बनाई जाती है। इन्हीं से सुरती, चुरट, इत्यादि भी तैय्यार होते हैं। तम्बाकू सूँघने, पीने और खाने के काम में लायी जाती है किन्तु इनका नित्य प्रयोग करने से स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और फुफ्फुसों तथा रक्तज रोगों के शीघ्र उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। औषधि के रूप में तम्बाकू दन्त शूल के लिये प्रयोग की जाती है।

लक्षण

(१) उत्क्लेश होने लगता है।
(२) वमन होती है।
(३) त्वचा शीतल और स्वेद युक्त होती है।
(४) नाड़ी दुर्बल, मन्द और क्रमहीन हो जाती है।
(५) पुतलियाँ—प्रारम्भ में संकुचित होती हैं किन्तु बाद में प्रसारित हो जाती हैं।
(६) मूर्छा उत्पन्न हो जाती है।
(७) हृदयावसाद होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

जीर्ण विष लक्षण

तम्बाकू का चिर काल तक सेवन करने से अग्निमान्द्य, हृद—दौर्बल्य, इत्यादि उत्पन्न हो जाते हैं।

घातक मात्राः—तम्बाकू की पत्तियों का चूर्ण—३० से ६० रत्ती।
निकोटीन—१ से ३ बूँद तक।

घातक कालः—तम्बाकू—१ घंटा
निकोटीन—३ से ५ मिनट तक।

चिकित्सा

(१) वामक औषधियों के द्वारा वमन कराना चाहिये।

(२) टैनिकाम्ल से आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये।

(३) उत्तेजना के लिये स्ट्रिकनीन आदि के इन्जेक्शन लगाये जा सकते हैं।

(४) आवश्यकतानुसार कृत्रिम श्वास क्रिया और ओषजन-व्यवस्था करनी चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप

(१) आमाशय में तम्बाकू के कण पाये जा सकते हैं।

(२) अन्नप्रणाली, आमाशय और आँतों की श्लेष्मिक कलाओं में शोथ और रक्ताधिक्य हो सकता है।

अश्वमार (Oleander)

पर्यायः—

करवीरः श्वेत पुष्पः शतकुम्भोऽश्वमारकः।
द्वितीयो रक्तपुष्पश्च चण्डातो लगुडस्तथा ॥

(भावप्रकाश)

अर्थात करवीर, श्वेत पुष्प, शतकुम्भ और अश्वमारक—ये सफेद कनेर के नाम हैं। रक्तपुष्प, चण्डात और लगुड—ये लाल कनेर के नाम हैं।

आयुर्वेद के मत से कनेर एक उपविष है, जैसा कि भावप्रकाश में कहा गया है:—

अर्कक्षीरं स्नुहीक्षीरं लांगली करवीरकौ।
गुञ्जाहिफेनो धत्तूरः सप्तोपविषजातयः॥

परिचय

दोनों प्रकार के कनेर बगीचों में सुन्दरता बढ़ाने की दृष्टि से लगाये जाते हैं। इनके पुष्प पूजा के लिये काम में लाये जाते हैं। आयुर्वेदीय चिकित्सा में औषधि के रूप में कनेर का प्रयोग होता है। श्वेत करवीर को अंगरेजी में 'निरीयम ओडोरम' (Nerium Odorum) अथवा 'ह्वाइट ओलियेन्डर' (White Oleander) कहते हैं।

इसके मुख्य अवयव निम्न हैं:—

(१) **नेरीओडोरिन** (Neriodorin)।

(२) **नेरीओडोरीन** (Neriodorein)।

(३) **करांबिन** (Karabin)।

पीत कर्वीर को अंगरेजी में 'थिवेटिआ निरिफोलिआ' (Thevetia nerifolia) अथवा 'यलो ओलियेन्डर' Yellow Oleander) कहते हैं।

इसका मुख्य अवयव **'थिवेटिन'** (Thevetin) है।

कनेर के योगः—करवीराद्य तैल (रसतरंगिनी)।

श्वेत कर्वीर के लक्षण

(१) वमन होती है।

(२) विरेचन भी होते हैं।

(३) नाड़ी दुर्बल हो जाती है।

(४) श्वास क्रिया जल्दी जल्दी होती है।

(५) पेशियों में ऐंठन होने लगती है।

(६) धनुर्वात की भाँति आक्षेपण होते हैं।

(७) मूर्छा होकर मृत्यु हो जाती है।

पीत करवीर के लक्षण

(१) मुँह में दाह होने लगता है ।

(२) जिह्वा में झनझनाहट मालूम होती है ।

(३) वमन होती है ।

(५) पुतलियाँ प्रसारित हो जाती हैं ।

(६) नाड़ी मन्द और दुर्बल होती हैं ।

(७) श्वास क्रिया जल्दी जल्दी होती है ।

(८) हृदयावसाद होकर मृत्यु हो जाती है ।

घातक मात्रा:—

श्वेत करवीर की जड़—१$\frac{3}{4}$ तोले ।

कराबिन—१$\frac{1}{2}$ रत्ती ।

श्वेत करवीर के बीज—३ बीजों का चूर्ण ।

पीत करवीर की जड़--१$\frac{3}{4}$ तोले ।

पीत करवीर के बीज—८ से १० तक ।

घातक काल:—अनिश्चित । कराबिन--१२ से २४ घंटे तक ।

चिकित्सा

(१) पोटाशियम परमैंगनेट के घोल से आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये ।

(२) यदि आमाशय-प्रक्षालन न किया जा सकता हो तो वामक औषधियों द्वारा वमन कराना चाहिये ।

(३) प्रतिविष के रूप में टैनिकाम्ल खिलाना चाहिये ।

मृत्यूत्तर रूप

(श्वेत करवीर):—

(१) आमाशय, अन्त्र, यकृत, प्लीहा, वृक, और फुफ्फुसों में रक्ताधिक्य पाया जा सकता है ।

डिजीटेलिस (Digitalis)

परिचय

डिजीटेलिस के वृक्ष भारतवर्ष में बहुत कम होते हैं, अधिकतर ये पश्चिम के देशों में उत्पन्न होते है। इनकी पत्तियों को तोड़कर संग्रह कर लिया जाता है और बहुत जल्दी ५५ से ६० डिगरी तक के तापक्रम में तीव्रता से सुखाकर एकत्र किया जाता है। ये पत्तियाँ १० से ३० सेन्टीमीटर तक लम्बी और ४से १० सेन्टीमीटर तक चौड़ी होती हैं। पत्तियाँ गोलाकार होती हैं और इसके ऊपर की सतह धुँधले हरे रंग की रोयेंदार होती है किन्तु नीचे की सतह किंचित् पीत वर्ण की होती है। इसमें किसी प्रकार की गंध नहीं होती। इसका स्वाद बहुत कडुवा होता है।

विश्लेषण

इसके निम्नलिखित मुख्य अवयव हैं:--

(१) **डिजीटोक्सिन** (Digitoxin)।
(२) **डिजीटेलिन** (Digitalin)।
(३) **डिजीटोनिन** (Digitonin)।
(४) **डिगाक्सिन** (Digoxin)।
(५) **डिजीटेलीन** (Digitalein)।
(६) **जिटोक्सिन** (Gitoxin)।
(७) **जिटेलिन** (Gitalin)।

डिजीटेलिस के निम्नलिखित योग विशेष महत्व के हैं:—

(१) डिजीटेलिस चूर्ण	मात्रा १/४ से ३/४ रत्ती तक
(२) डिजीटेलिस फाण्ट	मात्रा ६० से ३०० बूँद तक
(३) डिजीटेलिन चूर्ण	मात्रा १/१२० से १/६० रत्ती तक
(४) स्फटिकीय डिजीटेलाइन	मात्रा १/४८० से १/१२०० रत्ती तक
(५) डिजीटाक्सिन	मात्रा १/१२०० से १/१२० रत्ती तक
(६) डिजालेन	मात्रा ५ से १५ बूँद तक

(७) **डिजीटेलिस कम्पाउन्ड वटिका** — **मात्रा १ से २ गोली तक**

(८) **डिगोक्सिन** — **मात्रा $\frac{१}{१२०}$ से $\frac{१}{८०}$ रत्ती तक**

(९) **टिञ्चर डिजीटेलिस** — **मात्रा ५ से १५ बूँद तक**

लक्षण

(१) उत्क्लेश होने लगता है।

(२) वमन होती है।

(३) विरेचन भी होता है।

(४) उदर प्रदेश में शूल होता है।

(५) शिर में भी शूल होता है।

(६) शिरोभ्रम होता है।

(७) पुतलियाँ प्रसारित हो जाती हैं।

(८) नाड़ी मन्द हो जाती है और उसकी गति प्रति मिनट २५ बार होती है।

(९) मूर्छा उत्पन्न हो जाती है।

(१०) त्वचा शीतल और स्वेद युक्त होती है।

(११) मूत्राघात हो जाता है।

(१२) हृदयावरोध होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

घातक मात्रा

(१) डिजीटेलिस चूर्ण	२½ माशे
(२) डिजीटेलिस क्वाथ	१ छिटांक
(३) टिञ्चर डिजीटेलिस	२ से ३ तोले तक
(४) डिजीटेलिन चूर्ण	$\frac{१}{२}$ से $\frac{३}{४}$ रत्ती तक
(५) स्फटिकीय डिजीटेलिस	$\frac{१}{८}$ से $\frac{१}{४}$ रत्ती तक
(६) डिजीटाक्सिन	$\frac{१}{३२}$ से $\frac{१}{८}$ रत्ती तक

घातक कालः—२४ घण्टे।

चिकित्सा

(१) वामक औषधियों के द्वारा वमन कराना चाहिये।

(२) आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये।

(३) प्रतिविष के रूप मे वत्सनाभ अथवा टैनिकाम्ल सावधानी के साथ देना चाहिये।

(४) उत्तेजक औषधियाँ देनी चाहिये।

वत्सनाभ (Aconite)

पर्यायः--

वत्सनाभो वत्सनागः क्ष्वेडोऽस्त्री च विषं मतम्।
अमृतश्च तदेवोक्तं रसतन्त्र विशारदैः॥

(रसतरङ्गिणी)

अर्थात् वत्सनाभ, वत्सनाग, क्ष्वेड, विष और अमृत—ये मीठातेलिया के नाम हैं।

आयुर्वेद के ग्रन्थों में बतलाये गये नौ विषों में से वत्सनाभ भी एक है जैसा कि भावप्रकाश में कहा गया है:—

वत्सनाभः स हारिद्रः शक्तुकश्च प्रदीपनः।
सौराष्ट्रिकः शृङ्गिकश्च कालकूटस्तथैव च।
हालाहलो ब्रह्मपुत्रो विष भेदा अमी नव।

परिचयः--

सिंधुवार सदृक्पत्रो वत्सनाभ्याकृतिस्तथा।
यत्पार्श्वे न तरोर्वृद्धिर्वत्सनाभः सभाषितः॥

(भावप्रकाश)

अर्थात् वत्सनाभ के वृक्ष के पत्ते सँभालू के पत्तों की तरह होते हैं। इसकी जड़ वत्स की नाभि के आकार की होती है और इसके समीप कोई बड़े आकार का वृक्ष नहीं उत्पन्न हो सकता, यह वत्सनाभ के लक्षण हैं।

वत्सनाभ के वृक्ष की जड़ को संग्रह कर सुखाकर काम में लाते हैं। आयु-

वैद के मत से इसको शुद्ध करके तब काम में लाना चाहिये किन्तु एलोपैथी में वत्सनाभ की जड़ को चूर्ण करके विभिन्न प्रकार के योग तैय्यार किये जाते हैं और उनके मत में शोधन की कोई आवश्यकता नहीं होती। इसकी जड़ ४से १०सेन्टीमीटर तक लम्बी होती है। इसका एक सिरा मोटा होता है और उसकी चौड़ाई १से ३सेन्टीमीटर तक होती है। इसका रंग गहरा भूरा होता है। इसके अन्दर एक लसदार पदार्थ होता है। वत्सनाभ में एक विशेष प्रकार की थोड़ी थोड़ी गन्ध होती है। इसमें किंचित् स्वाद भी होता है और जिह्वा में झनझनाहट और अवसुन्नता उत्पन्न कर देता है।

विश्लेषण

इसके निम्नलिखित मुख्य अवयव हैं:—

(१) **एकोनाइटीन** (Aconitine)

(२) **एको नाइन** (Aconine)

(३) **पिक्रेकोनाइटीन** (Picraconitine)

(४) **एकोनाइटिक ऐसिड** (Aconitic acid)

(५) **श्वेत सार** (Starch)

वत्सनाभ के निम्नलिखित योग विशेष महत्व के हैं:—

(१) टिंचर एकोनाइट	मात्रा २से ५बूँद तक।
(२) लिनीमेन्ट एकोनाइट।	
(३) लिनीमेन्ट ए० बी० सी०।	
(४) सञ्जीवनी वटी	मात्रा १से ४गोली तक।
(५) मृत्युञ्जय रस	मात्रा १से २रत्ती।
(६) हिंगुलेश्वर रस	मात्रा १से २रत्ती।
(७) पञ्चामृत रस	मात्रा से २रत्ती।
(८) आनन्द भैरव रस	मात्रा १से २रत्ती।
(९) जया वटी	मात्रा १से २गोली।
(१०) कफकेतु रस	मात्रा १से २रत्ती।
(११) अमृत रसायन	मात्रा २रत्ती।
(१२) शिवताण्डव रस	मात्रा १से२रत्ती।

लक्षण

(१) मुख, ओष्ठ, जिह्वा, गला इत्यादि सम्पर्क में आने वाले सभी भागों में झनझनाहट, दाह और अवसुन्नता उत्पन्न हो जाती है।

(२) अत्यधिक लालास्राव होता है।

(३) वमन होने लगती है।

(४) अतीसार उत्पन्न हो जाता है।

(५) त्वचा शीतल और स्वेद युक्त होती है।

(६) नाड़ी दुर्बल, मन्द और क्रमहीन हो जाती है।

(७) पुतलियाँ प्रारम्भ में संकुचित हो जाती हैं किंतु बाद में प्रसारित होती हैं।

(८) श्वास क्रिया कठिनता से होती है।

(९) पेशियों में अत्यधिक दुर्बलता आ जाती है।

(१०) त्वचा में कँपकपी, झनझनाहट और अवसुन्नता उत्पन्न हो जाती है।

(११) रोगी बहुत बेचैन सा मालूम होता है और उसका चेहरा उतरा हुआ दिखलाई पड़ता है।

(१२) कभी कभी आक्षेपण होते हैं।

(१३) रोगी की मानसिक स्थिति मृत्यु के समय तक ठीक रहती है और उसमें थोड़ी बहुत चेतनता बनी रहती है।

(१४) श्वासावरोध होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

(१५) कभी कभी हृदयावसाद के कारण भी मृत्यु होती है।

घातक मात्राः—

टिंचर एकोनाइट ६० बूँद।

वत्सनाभ की जड़ का चूर्ण ४माशे।

घातक कालः—$\frac{1}{2}$से ४घंटे तक।

चिकित्सा

(१) आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये। एतदर्थ टैनिकाम्ल का

१प्रतिशत का घोल अथवा पाशविक चारकोल (Animal Charcoal) का जलीय विलयन काम में लाया जाता है।

(२) यदि आमाशय-प्रक्षालन न किया जा सकता हो तो वामक औषधियों के द्वारा वमन कराना चाहिये।

(३) शारीरिक उष्मा के रक्षार्थ अभ्यंग अथवा सेंक करना चाहिये।

(४) आवश्यकतानुसार कृत्रिम श्वास क्रिया अथवा ओषजन व्यवस्था करनी चाहिये।

(५) एट्रोपीन का इन्जेक्शन १/२० रत्ती की मात्रा में देना चाहिये। यदि आवश्यकता पडे तो कुछ समय के पश्चात पुनः इन्जेक्शन लगाया जा सकता है।

(६) उत्तेजक औषधियाँ जैसे शराब, डिजीटेलिस, स्ट्रिकनीन इत्यादि देना चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप

आमाशय, यकृत, प्लीहा, वृक, फुफ्फुस, और मस्तिष्क की श्लेष्मिक कलाओं में रक्ताधिक्य और शोथ पाया जा सकता है।

हाइड्रोसियानिकाम्ल (Hydrocyanic acid)

परिचय

ऐसिड हाइड्रोसियानिक डिल एक वर्णरहित तरल पदार्थ है। यह उड़नशील होता है और इसमें एक विशेष प्रकार की गंध होती है। इसका विशिष्ट घनत्व ०.९९७ है। इसमें २ प्रतिशत (मात्रा में) हाइड्रोजन सायनाइड रहता है।

पोटाशियम सायनाइड वर्णरहित अथवा किंचित् श्वेत वर्ण का स्फटिकीय पदार्थ होता है। चित्र बनाने (फोटोग्राफी) और चाँदी वा सोना चढ़ाने के विलयनों में डालकर अधिक प्रयोग किया जाता है। भारतवर्ष के नगरों और शहरों में शिक्षित युवक पोटाशियम सायनाइड खाकर आत्महत्या करते हुये अधिक देखे जाते हैं।

ऐसिड हाइड्रोसियानिक डिल एलोपैथिक चिकित्सा में औषधि के रूप में

२ से ५ बूँद तक की मात्रा में प्रयोग की जाती है। कभी कभी भूल से अधिक मात्रा दे देने से रोगी की मृत्यु हो जाती है।

लक्षण

(१) मुँह में किंचित् उष्ण और कड़ुवा स्वाद मालूम होता है।
(२) शिरः शूल होने लगता है।
(३) शिरोगौरव मालूम होता है।
(४) शिरोभ्रम हो जाता है।
(५) मूर्छा उत्पन्न हो जाती है।
(६) आँखें स्थिर होती हैं।
(७) पुतलियाँ प्रसारित हो जाती हैं।
(८) प्रकाश का परावर्त्तन नष्ट हो जाता है।
(९) नाड़ी दुर्बल, मन्द और क्रमहीन हो जाती है।
(१०) श्वास क्रिया मन्द, गहरी और खड़खडाहट के साथ होती है।
(११) त्वचा शीतल और स्वेद युक्त होती है।
(१२) धनुर्वात की भाँति आक्षेपण होकर मृत्यु हो जाती है।

घातक मात्राः—

ऐसिड हाइड्रोसियानिक डिल	३० बूँद।
पोटाशियम सायनाइड	१½ से २½ रत्ती तक।
एनहाइड्रस प्रूसिक ऐसिड	¼ से ½ रत्ती तक

घातक कालः—२ से १० मिनट तक।

चिकित्सा

अधिक मात्रा में विष-सेवन किये जाने पर चिकित्सा प्रायः असम्भव होती है, किन्तु थोड़ी मात्रा में सेवन करने पर जब विष-प्रभाव मन्द होता है, तब निम्नलिखित चिकित्सा करनी चाहियेः—

(१) सर्व प्रथम वामक औषधियों के द्वारा वमन कराना चाहिये। एतदर्थ एपोमार्फीन का इन्जेक्शन, ज़िंक सल्फेट इत्यादि प्रयोग किये जा सकते हैं।

(२) तदनन्तर 'हाइड्रोजन परआक्साइड' (Hydrogen Perox-

ide) अथवा पोटाशियम परमैंगनेट के तनु विलयन (Dilute Solution) से आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये।

(३) उत्तेजना के लिये एट्रोपीन सल्फेट (Atropine Sulphate) अथवा स्ट्रिकनीन इत्यादि के इन्जेक्शन दिये जाने चाहिये।

(४) श्वासावरोध की अवस्था में कृत्रिम श्वास क्रिया करनी चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप

(क) बाह्यः—

(१) त्वचा नील वर्ण की होगी।

(२) नाखून नीले होंगे।

(३) जबड़े बन्द होंगे।

(४) आँखे खुली होंगी और बाहर की ओर को निकली हुई होंगी।

(५) पुतलियाँ प्रसारित होती हैं।

(६) मुँह पर फेन पाया जा सकता है।

(ख) आभ्यन्तरिकः—

(१) शवच्छेदन करते समय विष की गन्ध आती है।

(२) शिरायें फूली हुई होती हैं और उनमें गहरा लाल या चमकदार लाल खून होता है।

(३) आमाशय, अन्त्र, अन्नप्रणाली और मुख की श्लेष्मिक कलायें क्षतयुक्त होती हैं और उनमें रक्ताधिक्य होता है। कभी कभी कलाओं के नीचे रक्तस्राव भी पाया जाता है।

(४) श्वास नलिकाओं में रक्तमिश्रित फेन पाया जाता है।

(५) यकृत, प्लीहा, वृक्क, फुफ्फुस, मस्तिष्क इत्यादि समस्त आभ्यन्तरिक अङ्गों में रक्ताधिक्य होता है।

गुञ्जा (Arbus Precatorius)

पर्यायः—

गुञ्जा रक्ता रक्तिका च ताम्रिका कृष्णचूडिका।
उच्चटा शीतपाकी च भिल्लभूषणिकारुणा॥

चूडामणिस्ताम्रिका च शिखण्डी कृष्णला तथा।
काकणन्ती च काम्भोजी सैवेह परिकीर्तिता ॥

(रसतरंगिनी)

अर्थात रक्ता, रक्तिका, ताम्रिका, कृष्णचूडिका, उच्चटा, शीतपाकी, भिल्लभूषणिका, अरुणा, चूडामणि, शिखण्डी, कृष्णला, काकणन्ती और काम्भोजी—ये गुंजा के नाम हैं।

भावप्रकाश में भी कहा है:—

श्वेता गुञ्जोच्चटा प्रोक्ता कृष्णा चापि सा स्मृता।
रक्ता सा काकचिञ्ची स्यात्काकणन्ती च रक्तिका ॥
काकादनी काकपीलुः सा स्मृताङ्गारवल्लरी।

(गुडूच्यादि वर्ग)

परिचय

गुञ्जा दो प्रकार की होती है:—श्वेत गुञ्जा और रक्तगुंजा। श्वेत गुंजा का गात्र श्वेत वर्ण का होता है और उस पर एक ओर काला दाग़ होता है, कभी कभी काला दाग़ नहीं भी होता। इसे उच्चटा और कृष्णला भी कहते हैं। रक्त गुंजा लाल रंग का होता है और उसके एक ओर काला दाग़ भी होता है। इसको काकचिञ्ची, काकणन्ती, रक्तिका, काकादनी, काकपीलु और काकवल्लरी भी कहते हैं। अंगरेजी में इसे बीड ट्री (Bead Tree) कहते हैं। यह एक लता जाति की वनस्पति होती है। आयुर्वेद के मतानुसार यह एक उपविष है। भावप्रकाश के धातु वर्ग में कहा भी गया है:—

अर्क क्षीरं स्नुहीक्षीरं लाङ्गली करवीरकौ।
गुञ्जाहिफेनो धत्तूरः सप्तोपविषजातयः ॥

गुञ्जा में ऐब्रिन (Abrin) एक प्रधान अवयव होता है, जो कि सर्पविष के समान ही लक्षण उत्पन्न करता है। गुंजा के बीजों को पीसकर सुई के आकार की तरह बना लिया जाता है। इन सुइयों को शरीर में चुभा देते हैं जिनसे विषके लक्षण उत्पन्न होजाते हैं। गुंजाको खानेपर विषके लक्षण नहीं पैदा होते।

गुञ्जा के आयुर्वेदीय योग

(१) गुञ्जाद्य तैल।
(२) गुञ्जाजीवन रस।
(३) गुञ्जाभद्र रस।

लक्षण

(१) जिस स्थान पर सुई चुभाई जाती है वहाँ पर व्रण बन जाता है।

(२) शोथ उत्पन्न हो जाता है।

(३) जाड़ा मालूम होता है।

(४) तन्द्रा आ जाती है।

(५) रोगी चलने फिरने से असमर्थ हो जाता है।

(६) बेचैनी मालूम होती है।

(७) अन्त में आक्षेपण होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

घातक मात्रा:—२ से ४ रत्ती तक।
घातक काल:—३ से ५ दिन तक।

चिकित्सा

सुई के कणों को निकाल देना चाहिये। इसके अतिरिक्त अन्य सामान्य-उपचार किये जाने चाहियें।

मृत्यूत्तर रूप

(१) क्षत स्थान पर सुई के कण पाये जा सकते हैं।

(२) त्वचा, फुस्फुसावरण, हृदयावरण और उदरावरण के नीचे रक्तस्राव की बुंदियाँ पायी जा सकती हैं।

(३) आमाशय और अन्त्र की श्लेष्मिक कलाओं में रक्ताधिक्य होता है।

अर्क

पर्याय:—

श्वेतार्को गण रूप: स्यान्मन्दारो वसुकोऽपि च।
श्वेतपुष्प: सदापुष्प: स बालार्क: प्रतापस:॥

रक्तोऽपरोऽर्कनामा स्यादर्कपर्णो विकीरणः ।
रक्तपुष्पः शुक्लफलस्तथा स्फोटः प्रकीर्तितः ॥

(भावप्रकाश)

अर्थात श्वेत अर्क, गणरूप, मन्दार, वसुक, श्वेतपुष्प, सदापुष्प, बालार्क और प्रतापस—ये सफेद आक के नाम हैं । इसे केलोट्रापिस जिगान्टी (Calotropis Gigantea) भी कहते हैं । और रक्तार्क, अर्कपर्ण, विकीरण, रक्तपुष्प, शुक्ल फल, स्फेट और सूर्य के सभी नामों को लाल आक कहते हैं । इसको केलोट्रापिस प्रोकेरा (Calotropis Proceria) भी कहते हैं ।

परिचय

आयुर्वेद के अनुसार आक एक उपविष है जैसा कि कहा भी है:—

अर्कक्षीरं स्नुहीक्षीरं लांगली करवीरकौ ।
गुञ्जाहिफेनो धत्तूरः सप्तोपविषजातयः ॥

(भावप्रकाश)

इसके पेड़ ३-११ फीट ऊँचे होते हैं । श्वेतार्क के पत्ते लम्बे, पत्र वृन्त के पास पतले और आगे की ओर चौड़े होते हैं । रक्तार्क के पत्र गोलकार होते हैं । आक के फल २-७ इंच लम्बे होते हैं, उनका व्यास १-२ इंच होता है । फलों के अन्दर मुलायम रूई और कृष्ण वर्ण के बीज होते हैं । अर्क के पत्तों और शाखाओं को तोड़ने पर दूध की तरह श्वेत वर्ण का एक चिपचिपा द्रव निकलता है । औषधि के रूप में आक के पत्ते, फूल, जड़ और दूध प्रयोग में लाये जाते हैं । आक का प्रयोग शिशुहत्या और पशुहत्या के लिये भी किया जाता है । भारतवर्ष की स्त्रियाँ गर्भपात कराने के लिये इसे काम में लाती हैं ।

लक्षण

(१) खाने पर इसका स्वाद कड़ुवा होता है ।
(२) मुख, गला, अन्नप्रणाली और आमाशय में दाहयुक्त पीड़ा होती है।
(३) लालास्राव होता है ।

(४) वमन होती है।

(५) दस्त आने लगते हैं।

(६) आक्षेपण होते हैं।

(७) हृदयावसाद होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

घातक मात्रा:—

अर्क दुग्ध	२-३ माशे।
अर्क मूलत्वक	१ तोला।

चिकित्सा

(१) वमन और विरेचन कराना चाहिये।

(२) एरण्ड तैलादि स्निग्ध पदार्थों का प्रयोग कराना चाहिये।

(३) यदि पीड़ा अधिक हो तो मार्फिया का इन्जेक्शन दिया जा सकता है।

(४) हृदयावसाद रोकने के लिये उत्तेजक औषधियों को देना चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप

(१) आमाशय और आन्त्रों में क्षोभ वा शोथ के चिह्न पाये जा सकते हैं।

(२) यकृत, प्लीहा, वृक्क, फुफ्फुस, मस्तिष्क वा अन्य शरीरावयों में रक्ताधिक्य के चिह्न पाये जा सकते हैं।

भल्लातक (Marking nut)

पर्याय:—

भल्लातकं त्रिषु प्रोक्तमरुष्कोरुष्करोऽग्निकः।
तथैवाग्निमुखी भल्ली वीरवृक्षश्च शोफकृत् ॥

(भावप्रकाश)

अर्थात् भल्लातक , अरुष्क, अरुष्कर, अग्निक, अग्निमुख, भल्ली, वीरवृक्ष और शोफकृत्—ये भिलावे के नाम हैं। इसे सेमीकार्पस एनाकार्डियम (Semicarpus Anacardium) भी कहते हैं।

परिचय

भिलावा के वृक्ष बड़े आकार के होते हैं। यह हरिद्वार, ऋषिकेष, बालेश्वर

हजारी बाग इत्यादि स्थानों पर अधिक संख्या उत्पन्न होते हैं। भिलावा का फल सबसे विषैला भाग होता है। इसके अन्दर एक प्रकार का चिपचिपा तैल पाया जाता है जिसके कारण सम्पर्क में आने वाले अवयवों में शोथ उत्पन्न हो जाता है। औषधि के रूप में भिलावा के फल की मात्रा १ से ३ रत्ती तक है। अधिक मात्रा में खाने पर विष के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

लक्षण

भिलावा के फलों का रस शरीर की त्वचा पर लग जाने से उस प्रान्त में छाले पड़ जाते हैं। क्षत स्थान के समीपस्थ भागों में विस्फोट उत्पन्न होकर व्रण बन जाते हैं जिसके कारण रोगी को बहुत कष्ट होता है और कभी कभी मृत्यु भी हो जाती है। इसके अतिरिक्त रोगी में ज्वर, रक्तमूत्रता, मूत्राघात और कष्टप्रद मलमूत्र त्याग—ये लक्षण भी पाये जाते हैं।

भल्लातक के योग

भल्लातक रसायन।

नोटः—

भिलावा के फलों का प्रयोग वैद्य और हकीम लोग करते हैं। कभी कभी असावधानी करने पर इनका रस शरीर पर पड़ जाता है जिससे उपरोक्त लक्षण पैदा हो जाते हैं। भिलावा के फलों का प्रयोग गर्भपात कराने के लिये भी किया गया है। इससे प्रायः आकस्मिक दुर्घटनायें ही होती हैं।

चिकित्सा

(१) तत्काल वमन करा देना चाहिये।

(२) एरण्ड तैल से विरेचन कराना चाहिये।

(३) छालों पर नारियल का तैल, चूने का पानी, प्लम्बाई सब एसीटास—इन सबको मिलाकर छाले की ही भांति चिकित्सा करनी चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप

(१) आमाशय में भिलावा के कण पाये जा सकते हैं।

(२) व्रण और छाले पाये जा सकते हैं।

पन्द्रहवाँ अध्याय

कार्बन डाइ आक्साइड

(Carbon dioxide)

परिचय

यह वर्णरहित और गन्धरहित वायव्य पदार्थ है। इसका स्वाद किंचित मधुर होता है। वायु की अपेक्षा यह डेढ़ गुनी भारी होती है। श्वास-प्रश्वास के समय जो वायु फुफ्फुसों से बाहर निकलती है, उसमें इस गैस का कुछ अंश रहता है। लकड़ी कागज, कपड़ा वा अन्य ऐन्द्रिक पदार्थों के जलने और सड़ने से यह गैस अधिक परिमाण में उत्पन्न होती है। किण्वीकरण के समय भी यह गैस बनती हैं। आकस्मिक दुर्घटनाओं से जैसे किसी मील, फैक्टरी, मकान, गांव या जंगल में आग लगने से कार्बन डाइ आक्साइड के गैसीय वातावरण में रहने वाले व्यक्तियों को मृत्यु हो जानी है।

लक्षण

(१) शिरः शूल होने लगता है ।
(२) शिर में गुरुता उत्पन्न हो जाती है।
(३) शिरोभ्रम होता है
(४) कर्णनाद होता है।
(५) पेशियों में दुर्बलता आ जाती है।
(६) मुख मण्डल पीत वर्ण का हो जाता है ।
(७) धमनियों में तीव्र स्पन्दन होता है।
(८) श्वास क्रिया जल्दी जल्दी और खड़खड़ाहट के साथ होती है।
(९) आक्षेपण होने लगते हैं और तदनन्तर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा

(१) स्थान परिवर्तन—रोगी को ताज़ी शुद्ध वायु में रखना चाहिये ।
(२) आक्सीजन-व्यवस्था करनी चाहिये।

(३) कृत्रिम श्वास क्रिया करनी चाहिये ।

(४) आवश्यकता पड़नेपर विद्युत-स्पर्श और रक्तमोक्षण भी कराया जा सकता है।

मत्यूत्तर रूप

(क) वाह्यः—

(१) मुखाकृति पीत अथवा नील वर्ण की होती है ।

(२) पुतलियाँ प्रसारित होती हैं ।

(ख) आभ्यान्तरिकः—

(१) हृदय का दाहिना भाग गहरे पतले रक्त से भरा होता है और वाम भाग रिक्त होता है ।

(२) मस्तिष्क और फुफ्फुसों की श्लेष्मिक कलाओं में रक्ताधिक्य होता है ।

कार्बन मानो आक्साइड
(Carbon monoxide)

परिचय

यह एक वायव्य पदार्थ है ज़ो कि अधिकतर कोयले के जलने से उत्पन्न होता है । कार्बन डाइ आक्साइड की अपेक्षा यह अधिक तीव्र और भयङ्कर होती है । जलने से जो धुआं उत्पन्न होता है, उसमें यह अधिक मात्रा में रहती है और इसी कारण से किसी धुयें से भरे हुये बन्द कमरे में कुछ देर तक रहने से व्यक्ति की बहुत जल्दी मृत्यु हो जाती है ।

लक्षण

(१) शिरः शूल होने लगता है ।

(२) शिरोभ्रम होता है ।

(३) पेशियों में दुर्बलता उत्पन्न हो जाती है ।

(४) श्वास-क्रिया जल्दी जल्दी होने लगती है ।

(५) श्वासावरोध होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है ।

चिकित्सा

(१) रोगी को तुरन्त शुद्ध वायु में ले जाना चाहिये ।

(२) आवश्यकतानुसार कृत्रिम श्वास क्रिया और आक्सीजन-व्यवस्था करनी चाहिये ।

(३) उत्तेजक औषधियाँ देनी चाहियें ।

सोलहवाँ अध्याय

सर्प-विष

परिचय

ध्रुव के समीपस्थ कुछ स्थानों को छोड़कर दुनियाँ के शेष सभी जगहों पर सर्प (Snake) मिलते हैं। भारतवर्ष में सर्पों की लगभग ३०० जातियाँ (Species) मिलती हैं जिनमें से कुछ विषैले और कुछ निर्विष होते हैं। साँप के काटने से संसार में प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में लोगों की मृत्यु होती है और भारतवर्ष में भी २०-२५ हज़ार लोगों की प्रतिवर्ष मृत्यु सर्प दंश के कारण ही होती है। सर्प एक ऐसा प्राणी है जिसको देखने से ही भय मालूम होता है और यही कारण है कि निर्विष सर्पों के काटने से, भय के कारण लोगों की मृत्यु होते हुये देखी जाती है। अधिकाँश सर्पों की उत्पत्ति अण्डों से होती है और इन्हें अण्डज सर्प (Oviparous snakes) कहा जाता है। कुछ सर्पों की उत्पति बिना अण्डे के ही होती है और सर्पणी बच्चों को जन्म देती है, अतएव इन्हें जरायुज सर्प (Viviparyus snakes) कहते हैं।

व्यवहारायुर्वेद की दृष्टि से सर्प दंश का कोई विशेष महत्व नहीं है क्योंकि प्रायः इस प्रकार की दुर्घटनायें आकस्मिक ही होती हैं। परहत्या या आत्महत्या से इनका कोई सम्बन्ध नहीं होता किन्तु फिर भी कभी कभी यह देखा गया है कि अपराधी अपने शत्रु के बिस्तर इत्यादि पर सविष सर्पों को पकड़ कर डाल देते हैं जिससे रोगी की मृत्यु हो सकती है।

भारतवर्ष में दो ही प्रकार के सविष सर्प मिलते हैं:—[१] केल्यूब्राइन (Colubrine) और [२] वाइपराइन (Viperine)

[१] कैल्यूब्राइन सर्पों के कुछ उदाहरण:—

(१) नाग (Cobra)
(२) नागराज (King cobra)
(३) करैत या राजिमान (Krait)

[२] वाइपराइन सर्पों के कुछ उदाहरणः—

(१) धोबिया या चन्द्र बोरा (Russell's viper)

(२) फ़ुरसा (Echis carinata)

कैल्यूब्राइन और वाइपराइन सर्पों में भेद

कैल्यूब्राइन	वाइपराइन
(१) इनका गात्र (Body) प्रायः लम्बा होता है ।	(१) इनका गात्र प्रायः छोटा होता है और ग्रीवा संकुचित होती है ।
(२) इनका शिर छोटा होता है और उस पर बड़े बड़े छिलके (Scales) होते हैं ।	(२) इनका शिर गात्र की अपेक्षा अधिक चौड़ा होता है और प्रायः छोटे छोटे छिलकों से ढका रहता है ।
(३) सर्पणी अण्डे देती है ।	(३) सर्पणी बच्चों को जन्म देती है ।
(४) आँखों की पुतलियाँ गोलाकार होती हैं ।	(४) आँखों की पुतलियाँ खड़ी रेखा की तरह होती हैं ।

आयुर्वेदानुसार सर्प के भेद

चरक ने सर्प की तीन जातियाँ बतलायी हैं:—

(१) **दर्वीकरः**—फण वाले वे साँप जो बहुत तेज़ भागते हैं ।

(२) **मण्डलीः**—जिनका फण मण्डलाकार होता है और बहुत धीरे धीर भागते हैं तथा मोटे होते हैं ।

(३) **राजिमानः**—जिनके शरीर पर चित्ती या धारियाँ बनी रहती हैं ।

लक्षण

स्थानिक लक्षणः—

दंश स्थान पर शोथ और दाहयुक्त पीड़ा होती है ।

कैल्यूब्राइन दंश लक्षण

(१) लक्षण प्रायः १५ से ६० मिनट में प्रगट होते हैं।

(२) चलते समय पैर लड़खड़ाते हैं।

(३) बोलने की शक्ति नष्ट हो जाती है।

(४) श्वास क्रिया मन्द पड़ती जाती है और अन्त में पूर्णतया रुक जाती है वा श्वासावरोध हो जाता है।

(५) कभी कभी आक्षेपण, ग्लानि और वमन होकर मृत्यु हो जाती है।

वाइपराइन दंश लक्षण

(१) लक्षण प्रायः १५ मिनट के अन्दर प्रगट होते हैं।

(२) दंश स्थान के चारों ओर शोथ उत्पन्न हो जाता है।

(३) पुतलियाँ प्रसारित हो जाती हैं।

(४) श्वास क्रिया कठिनता के साथ होती है।

(५) रक्त के जमने की शक्ति पूर्णतया नष्ट हो जाती है।

(६) शारीरिक बाह्य छिद्रों जैसे मुख, नासिका, गुदा इत्यादि से अत्यधिक रक्तस्राव होता है।

(७) उत्क्लेश होने लगता है।

(८) वमन होती है।

(९) हृदयावसाद उत्पन्न हो जाता है।

(१०) त्वचा शीतल और स्वेदयुक्त होती है।

(११) नाड़ी दुर्बल हो जाती है।

(१२) रक्त के जमने की शक्ति नष्ट हो जाने के कारण रक्तस्राव होने से मृत्यु धीरे धीरे कुछ समय के बाद होती है किन्तु फुफ्फुसीय धमनी में रक्त के जम जाने पर शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है।

चरक संहिता में सर्प दंश के लक्षण

दर्वीकर	मण्डली	राजिमान
इनका दंश सूक्ष्म और काला होता है, रक्त रुका रहता है, ऊपर को उठा होता है और वात रोगों को उत्पन्न करता है।	इनका दंश गहरा काटा हुआ, शोथयुक्त, पीत अथवा पीत-रक्त वर्ण का और पित्त वा रक्त के विकारों को करता है।	इनका दंश स्थिर, पिच्छिल, शोथयुक्त, स्निग्ध, पाण्डु वर्ण का, घने रक्त वाला और कफ जन्य रोगों को पैदा करता है।

सुश्रुत संहिता में सर्प दंश के लक्षण

दर्वीकर	मण्डली	राजिमान
त्वचा, नेत्र, नाखून, दांत, मूत्र और पुरीष कृष्ण वर्ण के होते हैं। रूक्षता, शिरो गौरव, संधियों में पीड़ा, कमर, पीठ और ग्रीवा में दुर्बलता, जृम्भा, कम्पन, स्वर न निकलना, कण्ठ का घुर घुर करना, जड़ता, सूखी डकार, खांसी, श्वास, हिचकी, शूल, ऐंठन, प्यास, लालास्राव, इत्यादि।	त्वचा, नेत्र, नाखून, दांत, मल और मूत्र पीत वर्ण के होते हैं। शीत की इच्छा, पीड़ा, दाह, प्यास, मद, मूर्छा, ज्वर, मुख, गुदा, आदि से रक्त-स्राव, शोथ, सड़न, सब चीजें पीली दिखलाई पड़ना, इत्यादि।	त्वचा, नेत्र, नाखून इत्यादि श्वेत वर्ण के होते हैं। शीत ज्वर, रोमांच, ऐंठन, दंश स्थान पर शोथ, गाढ़ा कफ मुँह से गिरना, वमन, नेत्रों में खुजली, कण्ठ में शोथ, कण्ठ का घुर घुर करना, श्वासावरोध, इत्यादि।

घातक मात्राः—$\frac{३}{३०}$ से $\frac{४}{८०}$ रत्ती तक।

घातक कालः—(१) कैल्यूब्राइन—½ घण्टे से १ दिन तक।
(२) वाइपराइन—१ दिन से ३ दिन तक।

चिकित्सा

(क) **स्थानिक चिकित्साः—**

(१) दंश स्थान से ऊपर तत्काल एक या दो बन्धन कसकर बांध देना चाहिये।

(२) तदनन्तर दंश स्थान को चीड़ कर समीपस्थ भागों को दबाकर रक्त निकाल देना चाहिये और उसमें पोटाशियम परमैगनेट भर देना चाहिये। इससे सर्प विष निष्क्रिय हो जाता है।

(३) गोल्ड क्लोराइड (स्वर्ण हरिद) के १ से ५ प्रतिशत के घोल का १० से २० सी० सी० तक का इन्जेक्शन दंश स्थान तथा उसके पास के स्थान में लगाना चाहिये।

(४) एन्टीवेनीन (Antivenene) का १०० सी० सी० का इन्जेक्शन लगाना चाहिये।

(ख) सार्वाङ्गिक चिकित्साः—

(१) उत्तेजना के लिये स्ट्रिकनीन, ऐड्रिनेलीन क्लोराइड इत्यादि के इन्जेक्शन लगाने चाहियें।

(२) शरीर के ताप की रक्षा के लिये उष्णोदक से भरी बोतलों से शरीर में उष्णता पहुँचानी चाहिये।

(३) आवश्यकतानुसार ओषजन-व्यवस्था और कृत्रिम श्वास क्रिया करनी चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप

(क) कैल्यूब्राइन दंश मेंः—

(१) सर्प के काटने के स्थान पर सूक्ष्म छिद्र पाये जा सकते हैं। कभी कभी ये छिद्र आँखों से नहीं देखे जा सकते।

(२) रक्त पतला हो जाता है और वह जमता नहीं है।

(ख) वाइपराइन दंश मेंः—

(१) काटने के स्थान पर शोथ और विवर्णता उत्पन्न हो जाती है।

(२) रक्त पतला हो जाता है।

(३) मलाशय, गुदा, मुख इत्यादि शरीर के अन्य अवयवों से रक्त स्राव होता है।

सत्तरहवाँ अध्याय

विषों के गुण

सुश्रुत का मत

रूक्षमुष्णं तथा तीक्ष्णं सुक्ष्माशु व्यवायि च ।
विकाशि विशदं चैव लघ्वपाकि च तत्स्मृतम् ॥ (कल्प स्थान)

अर्थात रूक्ष, उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, आशु, व्यवायि, विकाशी विशद, लघु और अपाकी—ये दस गुण विषों में होते हैं।

चरक का मतः—

लघुरूक्षमाशु विशदं व्यवायि तीक्ष्णं बिकासिसूक्ष्मंच ।
उष्णमनिर्देश्यरसं दश गुणमुक्तं विष तज्ज्ञैः ॥ (चिकित्सा स्थान)

अर्थात् विषों में दस गुण होते हैं जो कि लघु, रूक्ष, आशु, विशद, व्यवायि, तीक्ष्ण, विकासि, सूक्ष्म, उष्ण, और अनिर्देश्य रस हैं।

चरक में सुश्रुत के अपाकी के स्थान पर अनिर्देश्य रस की गणना की गयी है।

विष के गुणों का शरीर पर प्रभाव

इन दस गुणों का शरीर, पर क्या प्रभाव होता है ? इसका भी उल्लेख चरक, सुश्रुत और अष्टाँग संग्रह में किया गया है। अतएव तालिका के रूप में अब उन्हें लिखा जाता है। (पृष्ट १२६ पर देखो)

विषों के वेग और लक्षण

(Different Stages And Symptoms Of Poison)

विष सेवन के बाद उत्पन्न लक्षणों की भिन्न भिन्न अवस्थाओं को 'विषों के वेग' कह सकते हैं। चरक ने विष के वेगों की संख्या आठब तलायी है किन्तु सुश्रुत संहिता और अष्टांग संग्रह में केवल सात ही वेगों का उल्लेख किया गया है। इन वेगों के अनुसार विष सेवन के बाद भिन्न भिन्न लक्षण उत्पन्न होते हैं। चरक, सुश्रुत, अष्टांग संग्रह इत्यादि ग्रन्थों में इन लक्षणों का वर्णन मिलता है किन्तु इनके मतों में परस्पर भेद या अन्तर होने के कारण प्रत्येक का मत तालिका के रूप में अब दिया जाता है:— (पृष्ठ १२७-१२८ पर देखो)

गुण	प्रभाव: चरक का मत	सुश्रुत का मत	अष्टाँग संग्रह का मत
१. लघु	चिकित्सा कठिन है।	चिकित्सा कठिन है।	चिकित्सा कठिन है।
२. रूक्ष	वात प्रकोप होता है।	वात प्रकोप होता है।	वात प्रकोप होता।
३. उष्ण	पित्त प्रकोप होता है।	पित्त और रक्त कुपित होते हैं।	पित्त और रक्त कुपित होते हैं।
४. तीक्ष्ण	मर्मनाशक है।	मूर्छा पैदा करता है।	पित्त और रक्त कुपित होते हैं।
५. सूक्ष्म	रक्त प्रकुपित होता है।	अंगों में प्रवेश कर विकृति उत्पन्न करता है।	दोष, धातु और मल इत्यादि समस्त शरीर के अवयवों में प्रवेश कर जाता है।
६. आशु } ७. व्यवायि }	शीघ्र ही समस्त शरीर में व्याप्त हो जाता है।	शीघ्र ही समस्त शरीर में व्याप्त हो जाता है।	शीघ्र ही समस्त शरीर में व्याप्त हो जाता है।
८. विकासी	प्राण नाशक है	धातु, दोष और मल को नष्ट करता है।	मर्मनाशक है।
९. विशद	विष के दोष किसी एक स्थान पर नहीं टिकते।	शारीरिक शक्ति को नष्ट करता है	बड़े वेग के साथ शरीर में फैलता है।
१०. अव्यक्त रस	कफ प्रकुपित होता है, सब अन्न रसों का अनुवर्त्तन करता है।	*पच न सकने के कारण बहुत देर तक कष्ट देता है।	कफ प्रकुपित होता है, सब अन्न रसों का अनुवर्त्तन करता है।

* यह प्रभाव सुश्रुत के मत से 'अपाकी' गुण के कारण होता है।

वेग क्रम	लक्षण		
	चरक का मत	सुश्रुत का मत	अष्टाँग संग्रह का मत
पहला	रसदुष्टि, मोह, लालास्राव (Salivation), प्यास (Thirst), उत्क्लेश (Nausea), दन्तहर्ष और वमन (Vomiting)	जिह्वा कठोर और कृष्ण वर्ण की हो जाती है, मूर्छा (Insensibility) और श्वास (Respiratory disorders)	रक्तदुष्टि ।
दूसरा	रक्तदुष्टि, विवर्णता (Lividity), शिरोभ्रम (Giddiness), शरीर में कम्पन (Trembling) और चिमचिमाहट (Tingling), जृम्भा (Yawning) और मूर्छा।	स्वेदाधिक्य (Profuse Sweating), हृदप्रदेश में पीड़ा, शरीर में जलन, पीड़ा और कम्पन (Burning Pain And Trembling)	शोथ (Swelling Or Inflamation)
तीसरा	माँस दुष्टि, त्वचा में खुजली (Itching), शोथ (Swelling), मण्डल और चकत्तों का पड़ना (Congestion And Eruption)	गला शुष्क (Dryness of the throat) आमाशय और पक्वाशय में शूल (Gastric [illegible]nd intestinal colic), [illegible] में शोथ और विवर्णता, [illegible]की (Hiccup), कास (Co[illegible]), और आन्त्रकूजन ।	शरीर में चिमचिमाहट (Tingling)

वेग क्रम	लक्षण		
	चरक का मत	सुश्रुत का मत	अष्टाँग संग्रह का मत
चौथा	वातादि दुष्टि, वमन, शरीर में पीड़ा और दाह तथा मूर्छा।	तीव्र शिरोगौरव (Hea[illegible]iness in the head)।	शरीर का तापक्रम बढ़ जाना (ज्वर) और मूर्छा।
पांचवाँ	नेत्रों में रूप विकृति (Visual disorders) और आँखों के सामने अंधेरा मालूम होना।	लालास्राव, विवर्णता, त्रिदोष प्रकोप, संन्धि भेदन (dislocation of Joints) और पक्काशय में शूल	शरीर में पाण्डुता (Anaemia और जिह्वा में शोथ (Redness and swelling in the tongue)
छठवाँ	हिचकी (Hiccup)	बुद्धि का नाश (Mental Confusion) और तीव्र अतीसार (Acute Diarrhoea)	हृदय में पीड़ा।
सातवाँ	स्कन्ध संधि का भग्न।	स्कन्ध, कटि और पृष्ठ की भग्न (Dislocation Of Shoulder, Hip And Vertebral Joints) और श्वासावरोध (Asphyxia)	मृत्यु (Death)।
आठवाँ	मृत्यु।	×	×

दूषी विष

चरक का मतः—

दूषी विषं तु शोणित दुष्टमरुः किटिभ कोठ लिङ्गं च ।
विषमेकैकं दोषं संदूष्य हरत्यसूनेवम् ॥
क्षरति विषतेजसाऽसृक् कखानि निरुध्य मारयति जन्तुम् ।
पीतं मृतस्य हृदि तिष्ठति दष्टविद्ध योर्दंशदेशे स...

(चिकित्सा स्थान अ० २३)

सुश्रुत का मतः—

यत्स्थावरं जंगमकृत्रिमं वा देहादशेषं यदनिर्गतं तत् ।
जीर्णविषघ्नौषधिभिर्हतं वा दावाग्निवाततपशोषितं वा ॥
स्वभावतो वा गुणविप्रहीनं हि दूषी विषतामुपैति ।
वीर्याल्प भावान्न निपातयेत्तत् कफावृतं वर्षगणानुबंधि ॥

(कल्प स्थान अ० २)

इनका तात्पर्य यही है कि विष सेवन के बाद जब चिकित्सा की जाती है तो कभी कभी औषधि के प्रभाव से विष हीन वीर्य होकर शरीर के सूक्ष्म अवयवों या सेलों में कुछ न कुछ रह जाता है और वह महीनों और कभी कभी वर्षों तक शरीर में रहता है, इसी को 'दूषी विष' कहते हैं। यह दूषी विष प्राणनाशक नहीं होता किन्तु यह शरीर को कष्ट पहुँचाता है। इसके परिणाम स्वरूप कभी फोड़े फुन्सियाँ हो जाती हैं और कभी वमन, मूर्छा इत्यादि लक्षण उत्पन्न होते रहते हैं जो कि वास्तव में किसी व्याधि के कारण नहीं होते अपितु शरीर में जो विष रह जाता है उसके प्रभाव से होते हैं। औषधि के अतिरिक्त धूप, वायु इत्यादि के कारण भी कभी कभी विष का कुछ अंश शरीर में रह जाता है, ऐसा आयुर्वेद के महाऋषियों का कथन है।

विष से मृत्यु होने के लक्षण

विष सेवन के बाद एक स्थिति वह आती है जब रोगी की चिकित्सा करने पर भी कोई लाभ नहीं हो सकता अर्थात् रोगी असाध्य हो जाता है। अतएव उस स्थिति को कैसे जाना जाये ? उस स्थिति में रोगी में क्या लक्षण होते हैं ? इसका जानना भी बहुत आवश्यक है। चरक संहिता और सुश्रुत संहिता इन दोनों में इसका वर्णन विस्तार पूर्वक किया गया है। दोनों संहिताओं के वर्णन [illegible]त कुछ साम्यता है किन्तु सुश्रुत में कुछ लक्षण अधिक बतलाये हैं अतएव [illegible] मत प्रथक प्रथक श्लोकों के रूप में नीचे लिखे जायेंगे और तदनन्तर तालिका के रूप में भी हिन्दी में इसका प्रदर्शन किया जायगा ताकि समझने में सहूलियत हो।

चरक का मतः—

नीलौष्ठदन्तशैथिल्य केश पतनाङ्गभङ्ग विक्षेपाः।
शिशिरैर्न लोमहर्षो नाभिहते दण्डराजी च ॥
क्षतजं क्षताच्च नायात्येतानि भवन्ति मरणलिङ्गानि।

(चिकित्सा स्थान अ० २३)

सुश्रुत का मतः—

शस्त्रक्षते यस्य न रक्तमेति राज्यो लताभिश्च न सम्भवन्ति।
शीताभिरद्भिश्च न रोमहर्षो विषाभि भूतं परिवर्जयेत्तम् ॥
जिह्वा सिता यस्य च केशशातो नासावभङ्गश्च सकण्ठभङ्गः।
कृष्णः सरक्तः श्वयथुश्च दंशे हन्वोः स्थिरत्वञ्च विवर्जनीयः ॥
वर्तिर्घना यस्य निरेति वक्त्राद् रक्तं स्रवेदूर्ध्वमधश्च यस्य।
दंष्ट्रानिपाताः सकलाश्च यस्य तं चापि वैद्यः परिवर्जयत्तु ॥
उन्मत्तमत्यर्थमुप द्रुतं वा हीनस्वरं वाप्यथवा विवर्णम्।
सारिष्टमत्यर्थमवेगिनं च जह्यान्नरं तत्र न कर्म कुर्यात् ॥

(कल्प स्थान अध्याय ३)

विष से मृत्यु होने वाले पुरुष के लक्षण

चरक	सुश्रुत
(१) ओठ नील वर्ण के हो जाते हैं।	(१) जिह्वा काली पड़ जाती है और शरीर में विवर्णता होती है।
(२) दाँत शिथिल होते हैं।	(२) सब दाँत गिर पड़ते हैं।
(३) बाल (शिर के) झड़ते हैं।	(३) बाल झड़ते हैं।
(४) अङ्ग टूटते हैं।	(४) मृत शरीर की तरह मालूम होता है।
(५) हाथ, पैर इत्यादि को इधर उधर फेंकता है।	(५) अत्यन्त उन्माद और उपद्रव होते हैं।
(६) लकड़ी से मारने पर शरीर पर आघात के चिन्ह नहीं बनते।	(६) कोड़ा, चाबुक इत्यादि मारने पर आघात के चिन्ह नहीं बनते।
(७) क्षत करने पर रक्त नहीं निकलता।	(७) शस्त्र से काटने पर रक्त नहीं निकलता।
(८) शीत पदार्थों जैसे बर्फ, ठंढा पानी इत्यादि को शरीर पर रखने से लोमाञ्च नहीं होता।	(८) शीत पदार्थों को शरीर पर रखने से रोमाञ्च नहीं होता।
	(९) स्वर नहीं निकलता अथवा स्वर भङ्ग हो जाता है।
	(१०) जबड़ा बंद हो जाता है और नाक मुड़ जाती है।
	(११) मुख, गुदा अथवा लिङ्ग से रक्त निकलता है।
	(१२) वेग मन्द पड़ जाते हैं।
	(१३) दंष्ट्र स्थानपर शोथ होता है।

अन्य जान्तव विष

सांप के अतिरिक्त और भी बहुत से प्राणी हैं जिनके काटने आदि से विष का शरीर पर प्रभाव होता है। बिच्छू, छिपकली, चूहा, मकड़ी, कुत्ता, मेंढक, नेवला, जोंक, मछली, सिंह, बाघ, चीता—ये सविष प्राणियों के उदाहरण हैं। यहाँ पर सविष प्राणियों का वर्णन किया जायगा।

कुक्कुर विष

[illegible], चीता, सियार आदि माँसाहारी प्राणियों के काटने से उनका विष शरीर में व्याप्त होकर नाना प्रकार के लक्षण वा व्यथायें उत्पन्न करता हैं। चरक संहिता और सुश्रुत संहिता दोनों में इसका वर्णन किया गया है, अतएव उनके मतों का नीचे प्रदर्शन किया गया है। इसके अतिरिक्त पाश्चात्य विद्वानों ने भी इस सम्बन्ध में काफी खोज की है, अतएव उनका मत भी आगे दिया जायगा।

चरक का मतः—

श्वा त्रिदोषप्रकोपात्तु तथा धातु विपर्ययात्।
शिरोभिताप लालास्राव्यधोवक्त्रकृदेव च॥
अन्येप्यबंन्विधा व्भालाः कफवात प्रकोपणाः।
वह्छिरोरुग्ज्वर स्तम्भ तृषा मूर्च्छाकरा मताः॥

(चिकित्सा स्थान अ० २३)

अर्थात् कुत्ते के विष से तीनों दोषों (वात, पित्त और कफ) का प्रकोप होता है। शरीर की धातुओं के विपरीत गुण वाला होने से शिरः शूल, लालास्राव और मुख नीचे की ओर लटक जाता है। कुत्ते की तरह अन्य माँसाहारी पशुओं जैसे सियार, चीता इत्यादि के काटने पर भी वात और कफ का प्रकोप होता है और हृदरोग, शिररोग, ज्वर, स्तब्धता, प्यास और मूर्छा को उत्पन्न करते हैं।

सुश्रुत का मतः—

सुप्तता जयते दंशे कृष्णं चापि स्रवेद सृक ।
दिग्ध विद्धस्य लिङ्गेन प्रायश्चोपलक्षितः ।
(कल्प स्थान अ० ६)

अर्थात् कुत्ते आदि उन्मत्त सविष पशुओं के दंश से दं स्थान सुन्न पड़ जाता है और उसमें प्रायः विषयुक्त शस्त्रों के चुभने के लक्षण अर्थात् ज्वर, तृष्णा दाह, मूर्छा इत्यादि भी होते हैं ।

पाश्चात्य मतः—

माँसाहारी पशुओं के मुख में एक प्रकार का तीव्र विष उत्पन्न हो जाता है जि रेबीज़ (Rabries) कहते हैं । जब ये काटते हैं तब रोगी में विष के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं । मन्द मन्द ज्वर, शिरः शूल, बेचैनी, भय, उदासीनता, चिड़चिड़ापन, निद्रानाश, किसी पदार्थ को खाने या पीने से गले में कष्ट होना, दुर्बलता, उन्माद और आक्षेपण—ये लक्षण रोगी में पाये जाते हैं । अंत में पेशियों में पक्षाघात उत्पन्न हो जाता है और फिर हृदयावरोध होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

कुक्कुर विष चिकित्सा

(१) दंश स्थान को चीड़कर उसके समीपस्थ भागों को दबाकर रक्त निकाल देना चाहिये ।

(२) तदनन्तर रसकपूर के .०१ प्रतिशत के बिलयन से दंश स्थान को धोना चाहिये ।

(३) और फिर सिल्वर नाइट्रेट (Silver nitrate) या शोरकाम्ल (Nitric acid) से उस स्थान को जला देना चाहिये ।

सुश्रुत के मत कुक्कुर विष की चिकित्सा—

(१) दंश स्थान के रक्त को निकाल कर गरम घी से उस स्थान को जला देना चहिये ।

(९) रोगी को पुराना घी पिलाना चाहिये।

(३) आक के दूध के साथ विरेचन देना चाहिये।

(४) शरपुंखा की जड़ और धत्तूरे की जड़ को चावल के साथ मिलाकर पीस-कर कल्क बना ले और उसे पका कर रोगी को खाने के लिये देना चाहिये।

वृश्चिक दंश

लक्षण

[illegible]

...वेदना होती है, विष ऊपर को ...ढ़ता हुआ मालूम होता है, अन्त में विष दंश स्थान में आ जाता है और वहीं पर रह जाता है।

सुश्रुत

वेदना होती है जो ऊपर को चढ़ती जाती है, दाह, स्वेद, शोथ, ज्वर, क्षत और भ्रम इत्यादि लक्षण होते हैं।

दहत्यग्निरिवादौ तु भिनेत्तीवार्ध्वमाशु च।
वृश्चिकस्य विषं याति दंशे पश्चातु तिष्ठति॥

(चरक चिकित्सा स्थान अ० २३)

एभिर्दष्टे वेदना वेपथुश्च गात्र स्तभः कृष्णरक्तागमश्च।
शाखार्दष्टे वेदनाश्चोर्द्धमेति दाह स्वेदौ दंशशोफा ज्वरश्च।

सुश्रुत क० स्थान० अ० ८)

चिकित्सा

(१) विषनाशक द्रव्यों से स्वेदन करना चाहिये।

(२) तुलसी की पत्तियों को गोमूत्र अथवा नींबू के रस में पीसकर लेप करना चाहिये।

(३) अपामार्ग की जड़ पानी में घिसकर दंश स्थान पर लगाना चाहिये।

मूषिक दंश

लक्षण

चरक

रक्त पीले रंग का हो जाता है, शरीर पर चकत्ते पड़ जाते हैं, अन्न में रुचि नहीं रहती, ज्वर, दाह और रोमाञ्च हो जाता है।

सुश्रुत

शरीर पर शोथ, चकत्ते, फोड़े, विसर्प इत्यादि पैदा हो जाते हैं, ज्वर, अरुचि, रोमाञ्च, तीव्र पीड़ा, पर्वों में भेद, दुर्बलता, श्वास, कम्प और मूर्छा उत्पन्न हो जाता है।

आदंशाच्छोणितं पाण्डु मण्डलानि ज्वरोऽरुचिः।
लोमहर्षश्च दाहश्चाप्याखुदूषीविषार्दित ॥
(चरक चि० स्थान० अ० २३)

जायन्ते ग्रन्थयः शोफाः कर्णिका मण्डलानि च।
पिडकोपचयश्चोग्रा विसर्पाः किटिभानि च।
पर्वभेदो रुजस्तीव्रा ज्वरो मूर्छा च दारुणा।
दौर्बल्यमरुचिः श्वासो वेपथुर्लोमहर्षणम् ॥
(सु० क० स्थान० अ० ६)

पाश्चात्य मत

चूहों में एक तरह का कर्षिणी-आकार का जीवाणु—स्पाईरोनीमा (Spi-onema) रहता है। जब चूहा मनुष्य को काट खाता है तो ये जीवाणु मनुष्य के शरीर में जाकर निम्नलिखित लक्षण पैदा करते हैं:—

(१) दंश के बाद उस स्थान पर २ से ६ सप्ताह के अन्दर पीड़ा उत्पन्न हो जाती है।

(२) दंश स्थान फट कर व्रण बन जाता है।

(३) दंश स्थान पर शोथ उत्पन्न हो जाती है जो धीरे धीरे समीपस्थ भागों की ओर प्रसारित होने लगती है।

(४) लसिका वाहनियाँ शोथ युक्त होती है।

(५) शोथयुक्त स्थान में रक्ताधिक्य होता है और कुछ समय के अन्दर वहाँ पर छोटी छोटी पिडिकायें निकल आती हैं।

(६) तदनन्तर ज्वर, सन्धि शूल, शिरः शूल, उत्क्लेश, वमन, अंगों में मर्दनवत पीड़ा, दुर्बलता, इत्यादि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

चिकित्सा

(१) पाश्चात्य मतानुसार सल्वर्सान (Salvarsan), न्यूसल्वर्सान ([illegible]n) इत्यादि के इन्जेक्शन लगाये जाते हैं।

(२) आयुर्वेद के मत में वमन, विरेचन, शिरावेधन इत्यादि संशोधन एवम् क्रियायें करनी चाहियें।

(३) चौलाई की जड़ में सिद्ध किया हुआ घृत पिलाना चाहिये।

(४) कैथे के पंचाङ्ग में सिद्ध किया हुआ घृत भी पिलाया जा सकता है।

मक्षिका दंश

मक्खियाँ ६ प्रकार की होती हैं:—

काँतारिका, कृष्णा (काली मक्खी), पिंगलिका (सुनहरी), मधूलिका (गेहूँ के रंग की), काषायी (गुलाबी रंग की) और स्थालिका। ये विषयुक्त मक्खियों के भेद हैं। साधारणतया घरों में पायी जाने वाली मक्खियाँ इनसे प्रथक हैं और वे निर्विष होती हैं।

दंश लक्षण

चरक

(१) दंश स्थान श्याम वर्ण का होता है।

(२) दंश स्थान वा उसके आस पास पिडिकायें निकल आती हैं।

(३) जलन होती है।

(४) ज्वर उत्पन्न हो जाता है।

(५) मूर्छा होती है।

सुश्रुत

(१) दंश स्थान वा उसके आस-पास शोथ उत्पन्न हो जाता है।

(२) पिडिकायें निकल आती हैं।

(३) जलन होती है।

सद्यः प्रस्राविणी श्यावा दाह मूर्छा ज्वरान्विता ।
पिडका मक्षिका दंशे तासां तु स्थगिकाऽसुहृत ॥

(चरक—चि० स्थान० अ० २३)

मक्षिकाः कांतारिका कृष्णा पिङ्गलिका—
मधूलिका काषायी स्थालिकेत्येवं षट् ।
ताभिर्दष्टस्य दाहशोफौ भवतः ।
स्थालिका काषायीभ्यामेतदेव पिडकाश्च सोपद्रवा भवंति

(सुश्रुत क० स्थान० अ० ८)

चिकित्सा

काली मिर्च, सोंठ, सुगन्धबाला और नागकेशर को पीसकर लेप करना चाहिये ।

मशक दंश

सुश्रुत ने पांच प्रकार के मच्छर बतलाये हैं:—

मशकाः सामुद्रः परिमण्डलो हस्तिमशकः—
कृष्णः पार्वतीयः इति पंच ।

(क० स्थान० अ० ८)

अर्थात् मच्छर—सामुद्र (समुद्र के समीप पाये जाने वाले मच्छर), परिमंडल (जो अपने शरीर को मोड़कर रहते हैं और गोलाकार की तरह मालूम होते हैं), हस्तिमशक (मोटे मच्छर), कृष्ण (काले मच्छर) और पार्वतीय (पहाड़ी मच्छर)—ये पाँच प्रकार के होते हैं ।

दंश लक्षण

तैर्दष्टस्य तीव्र कंडूर्दंशशोफश्च पार्वतीयस्तु कीटैः-
प्राणहरैस्तुल्य लक्षणः नखावकृष्टेत्यर्थंपिडकाः सदाहपाकाभवंति ।
(सु० क० स्थान अ० ८)

अर्थात सभी प्रकार के विषैले मच्छरों के काटने से दंश स्थान वा उसके आस (पास) शोथ उत्पन्न हो जाता है और उस स्थान पर तीव्र कण्डू होती है। पार्व... प्राणनाशक कृमियों के समान लक्षण वाले होते हैं, यदि ... के दंश स्थान को नाखून से खुजला दिया जाये तो पिड़िकायें उत्पन्न हो (जा)ती हैं जिनमें जलन होती है और पक जाती हैं।

कण्डू मान्मशकैरीषच्छोथः स्यान्मन्दवेदनः ।
(चरक—चि० स्थान० अ० २३)

अर्थात् मच्छर के काटने पर दंश स्थान वा उसके आसपास शोथ उत्पन्न हो जाता है और उसमें खुजली होती है।

चिकित्सा

इसकी चिकित्सा अन्य विषों की तरह करनी चाहिये।

(१) मकोय और पीलु को मोर के पित्त में मिलाकर लेप करना चाहिये।

(२) शिरीष के फल, मूल, छाल, पुष्प और पत्तों तथा घृत सबको सम-परिमाण में लेकर पीसकर लगाना चाहिये।

(३) अमृत घृत को पिलाना चाहिये तथा उसी से दंश स्थान वा उसके समीपस्थ रुग्ण अवयवों में मालिश करना चाहिये।

मण्डूक दंश

दंश लक्षण

व। विषैले मेढ़कों के काटने से दंश स्थान पर खुजली होती है और मुँह से

पीला झाग आता है। यह सुश्रुत के मत से लक्षण है। चरक संहिता में मेढ़क के काटने पर—दंश स्थान वा उसके आस पास शोथ, पीड़ा और पीत वर्णता-ये लक्षण बतलाये गये हैं।

चिकित्सा

(१) सिरस के बीज को सेहुण्ड के दूध में पीसकर लेप करना चाहिये।

(२) कूठ और अंकोट की जड़ को पीसकर रोगी को पिलाना चाहिये।

शतपदी विष

कनखजूरा एक विषैला प्राणी है जो शरीर में पंजे गाड़कर चिपट जाता है। सुश्रुत संहिता में ८ प्रकार के कनखजूरों का वर्णन मिलता है और इनके विष से शोथ, पीड़ा, दाह, पिडिका और मूर्छा—ये लक्षण उत्पन्न होते हैं। चरक संहिता में कनखजूरे के विष से उत्पन्न लक्षण ये बतलाये गये हैं:—स्वेद, पीड़ा और जलन।

चिकित्सा

स्वर्जिकाऽजशकृत्क्षीरः सुरसोथाक्षिपीडकः।
मदिरा मण्ड संयुक्तो हितः शतपदी विषे॥
(चरक—चि० स्थान अ० २३)

अर्थात् सज्जी का क्षार, बकरी की मींगनी को-जला कर तैयार किया हुआ क्षार, तुलसी और श्वेत शिम्बी को मदिरा के मण्ड के साथ मिलाकर लेप करना चाहिये।

इसके अतिरिक्त जोंक, बर्र, मकड़ी, गिरगिट छिपकली और कीट के

से भी विष क्रिया होती है जिनके लक्षण नीचे दिये जाते है ।

जान्तव विष	लक्षण
(१) मकड़ी	कण्डू, शोथ, ज्वर इत्यादि (सुश्रुत) ।
(२) बर्र	शोथ, शूल, ज्वर, वमन, विसर्पादि (चरक) ।
(३) छिपकली	दाह, शोथ, पीड़ा और स्वेद (चरक) ।
(४) जोंक	कण्डू, शोथ, ज्वर और मूर्छा (चरक) ।
([illegible]) [illegible]	कृष्ण वा श्याम वर्णता, मूर्छा और अतीसार (चरक) ।

चिकित्सा

(१) मकड़ी के विष में:—महुवा, मुलहठी, सारिवा, कूठ, नेत्रबाला, पाटला, नीम की छाल—इनको जल में पीसकर घोलकर शहद में मिलाकर पीना चाहिये । (चरक)

(२) जोंक के विष में:—वच, हींग, सेंधानमक, वायबिडंग, गजपीपल, पाढ़, अतीस और त्रिकटु—इनका चूर्ण या काढ़ा रोगी को पिलाना चाहिये । (चक्रदत्त)

(३) केशर, मैनसिल, केकड़े का मांस, हरताल और कुसुम के फूल का चूर्ण:—इनको पानी में पीसकर गोली बना कर दंश स्थान पर लगावे तो गिरट का विष नष्ट हो जाता है, इसे कुंकुमादि वटिका कहते हैं । यह चक्रदत्त का योग है ।

(४) वंग देश की कूटकराणि औषधि की जड़ के लेप से बर्र का विष नष्ट होता है । (चक्रदत्त)

Printed at the Vidya Vilas Press, Benares.

INDEX

(MEDICAL JURISPRUDENCE)

निज प्रकाशित वैद्यक ग्रन्थाः—

1. १ अभिनवबूटीदर्पण-बूटियों के रंगीन चित्र अनुभूत प्रयोग सहित ६)
2. २ अष्टांगहृदय-भागीरथी बृहद् टिप्पणी सहित २।।)
3. ३ आयुर्वेदीयपरिभाषा-प्रकाशिका-भा.टी. नूतन परिशिष्ट संयोजित ।।।)
4. ४ अनुभूतचिकित्सा-ले० चन्द्रदत्त ।।।)
5. ५ आयुर्वेदविज्ञानसार-सटिप्पण विद्योतिनी भाषा टीका सपरिशिष्ट १)
6. ६ काकचण्डीश्वरकल्पतन्त्र-अति प्राचीन ग्रन्थ ।।=)
7. ७ चक्रदत्तः-'भावार्थसंदीपिनी' भाषा टीका टिप्पणी परिशिष्ट सहित ८)
8. ८ चरकसंहिता-भागीरथी बृहद् टिप्पणी सहित ४)
9. ९ नाडीपरीक्षा—'वैद्यप्रिया भाषा टीका सहित ≡)
10. १० नाडीविज्ञान-विबोधिनी भाषा टीका सहित तृतीय संस्करण ।-)
11. ११ [illegible]वैद्यकं और विषतन्त्र-ले० कविराज अत्रिदेव ४)
12. १२ भावप्रकाश-'विद्योतिनी' भाषा टीका परिशिष्ट सहित पूर्वार्द्ध ६)
13. १३ भावप्रकाश-ज्वराधिकार । विद्योतिनी भाषा टीका सहित)
14. १४ भावप्रकाशनिघण्टु-आमयिकप्रयोगादि विस्तृत विवरण सहित ।)
15. १५ माधवनिदान-'सुधालहरी' संस्कृतटीका अभिनव परिशिष्ट संयोजित ।।)
16. १६ माधवनिदान-परिशिष्ट । अभिनव प्रकाशित ।।=)
17. १७ मन्थरज्वरविवेचन भा.टी. १) १८ योग[illegible]त्नाकर-(गुटका) ३)
18. १९ रसेन्द्रसारसंग्रह-सचित्र 'बालबोधिनी' भागीरथी टिप्पणी सहित १।)
19. २० रसेन्द्रसारसंग्रह-सचित्र-सटिप्पण 'रसचन्द्रिका' भाषा टीका ३।।)
20. २१ रसेन्द्रसारसंग्रहः-गूढार्थसंदीपिका संस्कृत टीका सहित ३।।)
21. २२ रसरत्नसमुच्चय-'सुरत्नोज्ज्वला' भाषा टीका परिशिष्ट सहित ६)
22. २३ रसरत्नसमुच्चय-सटिप्पण (गुटका संस्करण) २।।)
23. २४ रसार्णवं नाम रसतन्त्रम्-भागीरथी टिप्पणी सहित २)
24. २५ रसाध्याय सटीक ।।=) २६ रसायनखण्ड-(रसरत्नाकर का च. खंड) ।।)
25. २७ वैद्यकपरिभाषाप्रदीप-'प्रदीपिका' भाषा टीका सहित १।)
26. २८ शार्ङ्गधरसंहिता-'सुबोधिनी' भाषा टीका टिप्पणी परिशिष्ट सहित ४।।)
27. २९ सुश्रुतसंहिता-'सुधा' संस्कृत टीका सहित ६)
28. ३० सुश्रुत-शारीरस्थान-'दर्पण'-'प्रभा' भाषा टीका द्वयोपेत २)